एम.ए. उत्तरार्द्ध

समाजशास्त्र, तृतीय प्रश्नपत्र

भारत में नगरीय समाज

(URBAN SOCIETY IN INDIA)

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Shailja Dubey
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Madhavi Lata Dubey
   Professor
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukharjee Science and Commerce College, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Archana Chauhan
   Assistant Professor
   Govt. S.N. (P.G.) Autonomous College, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. L.P. Jharia
   Director,
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Shailja Dubey
   Professor
   Institute for Excellence in Higher Education, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Madhavi Lata Dubey
   Professor
   Govt. Dr. Shyama Prasad Mukharjee Science and Commerce College, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Archana Chauhan
   Assistant Professor
   Govt. S.N. (P.G.) Autonomous College, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITER

Dr. Huma Hassan, Former Faculty, Department of Social Sciences, B.S. Anangpuria, Rohtak, Haryana
Units (1-5)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

भारत में नगरीय समाज

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 शास्त्रीय समाजशास्त्रीय परंपराएं नगरीय एवं शहरी आयाम : एमिल दुर्खीम, कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर, फर्डिनैंड टोनीज शहरी समुदाय और स्थानिक आयाम : पार्क, बर्गेस एवं मैकेंजी महानगर, नगर तथा गांव व शहर का तारतम्य जॉर्ज सिमेल : महानगर, लुईस वर्थ : नगरीय, रेडफील्ड : सांस्कृतिक संरचना के रूप में गांव और शहर का तारतम्य	**इकाई 1** : शास्त्रीय समाजशास्त्रीय परंपराएं : नगरीय आयाम **(पृष्ठ 3–26)**
इकाई–2 भारत में नगरीय समाजशास्त्र का उदय और विकास भारत में शहरीकरण के उभरते रुझान शहरी विकास के संघटक शहरीकरण के सामाजिक आयाम समाज पर शहरीकरण के प्रभाव	**इकाई 2** : भारत का नगरीय समाजशास्त्र **(पृष्ठ 27–60)**
इकाई–3 शहरी केंद्रों और नगरों का वर्गीकरण शहरीकरण और औद्योगिकीकरण शहरीकरण : उद्योग केंद्रित विकास नगरों के सीमित आकार एवं विशेषज्ञता ग्रामीण–शहरी विभाजन	**इकाई 3** : शहरी केंद्रों, शहरों और नगरों का वर्गीकरण **(पृष्ठ 61–86)**
इकाई–4 व्यावसायिक संरचना : एक परिशीलन भारत की व्यावसायिक संरचना व्यावसायिक संरचना की असफलता के कारक सामाजिक स्तरण (श्रेणी) पर प्रभाव भारत में नगरों का विकास आवास और झुग्गियों के विकास की समस्या भारत की शहरी पर्यावरण से संबंधित समस्याएं शहरी गरीबी	**इकाई 4** : बदलती व्यावसायिक संरचना और इसके प्रभाव **(पृष्ठ 87–120)**
इकाई–5 भारत में नगर योजना महानगर प्रबंधन एवं नगर–प्रेरित क्षेत्र योजना सामाजिक क्षेत्र नीति एवं शहरी विकास क्षेत्रीय एवं स्थानिक योजना महानगर योजना एवं शासन का अभाव आधारभूत संरचना विकास : नई चुनौतियां भारत में शहरी परिदृश्य	**इकाई 5** : भारत में नगरीय योजना एवं नगर प्रबंधन की समस्याएं **(पृष्ठ 121–158)**

विषय–सूची

परिचय **1**

इकाई 1 शास्त्रीय समाजशास्त्रीय परंपराएं : नगरीय आयाम **3–26**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 शास्त्रीय समाजशास्त्रीय परंपराएं
  1.2.1 नगरीय एवं शहरी आयाम : एमिल दुर्खीम
  1.2.2 कार्ल मार्क्स
  1.2.3 मैक्स वेबर
  1.2.4 फर्डिनैंड टोनीज
1.3 शहरी समुदाय और स्थानिक आयाम : पार्क, बर्गेस एवं मैकेंजी
1.4 महानगर, नगर तथा गांव व शहर का तारतम्य
  1.4.1 जॉर्ज सिमेल : महानगर
  1.4.2 लुईस वर्थ : नगरीय
  1.4.3 रेडफील्ड : सांस्कृतिक संरचना के रूप में गांव और शहर का तारतम्य
1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.6 सारांश
1.7 मुख्य शब्दावली
1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 भारत का नगरीय समाजशास्त्र **27–60**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 भारत में नगरीय समाजशास्त्र का उदय और विकास
2.3 भारत में शहरीकरण के उभरते रुझान
2.4 शहरी विकास के संघटक
2.5 शहरीकरण के सामाजिक आयाम
2.6 समाज पर शहरीकरण के प्रभाव
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 शहरी केंद्रों, शहरों और नगरों का वर्गीकरण **61–86**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 शहरी केंद्रों और नगरों का वर्गीकरण
3.3 शहरीकरण और औद्योगिकीकरण

3.4 शहरीकरण : उद्योग केंद्रित विकास
3.4.1 नगरों के सीमित आकार एवं विशेषज्ञता
3.4.2 ग्रामीण–शहरी विभाजन
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 4 बदलती व्यावसायिक संरचना और इसके प्रभाव **87–120**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 व्यावसायिक संरचना : एक परिशीलन
4.2.1 भारत की व्यावसायिक संरचना
4.2.2 व्यावसायिक संरचना की असफलता के कारक
4.3 सामाजिक स्तरण (श्रेणी) पर प्रभाव
4.4 भारत में नगरों का विकास
4.5 आवास और झुग्गियों के विकास की समस्या
4.6 भारत की शहरी पर्यावरण से संबंधित समस्याएं
4.7 शहरी गरीबी
4.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.9 सारांश
4.10 मुख्य शब्दावली
4.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.12 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 5 भारत में नगरीय योजना एवं नगर प्रबंधन की समस्याएं **121–158**

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 भारत में नगर योजना
5.3 महानगर प्रबंधन एवं नगर–प्रेरित क्षेत्र योजना
5.4 सामाजिक क्षेत्र नीति एवं शहरी विकास
5.5 क्षेत्रीय एवं स्थानिक योजना
5.5.1 महानगर योजना एवं शासन का अभाव
5.5.2 आधारभूत संरचना विकास : नई चुनौतियां
5.5.3 भारत में शहरी परिदृश्य
5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'भारत में नगरीय समाज' विश्वविद्यालय द्वारा समाजशास्त्र विषय में एम.ए. उत्तरार्द्ध के लिये निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप तैयार की गयी है।

भारतीय समाज प्राथमिक रूप से ग्रामीण समाज ही है, हालांकि यहां नगरीकरण बढ़ रहा है। भारत के बहुसंख्यक लोग गांव में ही रहते हैं। 2001 की जनगणना के अनुसार उनका जीवन कृषि अथवा उससे संबंधित व्यवसायों से चलता है। इसका अर्थ यह हुआ कि बहुत से भारतीयों के लिये भूमि उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है। शहरी क्षेत्रों का भौतिक विस्तार (क्षेत्रफल, जनसंख्या आदि में) नगरीकरण कहलाता है। यह एक वैश्विक परिवर्तन है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की परिभाषा के अनुसार, ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों का शहरों में जाकर रहना और काम करना भी 'नगरीकरण' है। नगरीकरण या शहरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत एक समाज के समुदाय के आकार और शक्ति में वृद्धि होती रहती है, जब तक कि वे सम्पूर्ण जनसंख्या के अधिकांश भाग को सम्मिलित नहीं कर लेते हैं और सम्पूर्ण समाज पर प्रकार्यात्मक और सांस्कृतिक आधिपत्य स्थापित नहीं कर लेते। किसी राष्ट्र की जनसंख्या का बढ़ता हुआ आकार जब शहर की तरफ निवास के लिये जमा होता है, तो उसे नगरीकरण या शहरीकरण कहते हैं।

इस पुस्तक में स्वाध्याय प्रणाली का उपयोग किया गया है, जिसमें प्रत्येक इकाई का आरंभ उस इकाई के परिचय से होता है, तत्पश्चात इकाई के उद्देश्य आते हैं। पाठ के बीच–बीच में अपनी प्रगति जांचिए के प्रश्न समाविष्ट किये गए हैं। प्रभावी पुनर्कथन के लिये प्रत्येक पाठ के अंत में सारांश, मुख्य शब्दावली और स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास दिये गये हैं।

पुस्तक में पांच इकाइयों को समायोजित किया गया है, जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

पहली इकाई में शास्त्रीय समाजशास्त्रीय परंपराओं का अध्ययन किया गया है तथा नगरीय आयामों का विश्लेषण किया गया है। इस इकाई में दुर्खीम, कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर तथा टोनीज जैसे विद्वानों के विचारों को भी प्रस्तुत किया गया है।

दूसरी इकाई में भारत के नगरीय समाजशास्त्र के स्वरूप एवं प्रभाव को स्पष्ट करने के साथ–साथ शहरीकरण के संघटकों, कारकों व सामाजिक आयामों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।

तीसरी इकाई में शहरी केंद्रों, शहरों तथा नगरों के वर्गीकरण को समझने का प्रयास किया गया है। इस क्रम में शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण का विस्तारपूर्वक विश्लेषण भी किया गया है।

चौथी इकाई में बदलती व्यावसायिक संरचना और इसके प्रभावों का विस्तार से अध्ययन किया गया है।

पांचवीं एवं अन्तिम इकाई में भारत में नगरीय योजना एवं नगर प्रबंधन की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए नगर प्रेरित क्षेत्र योजना, सामाजिक क्षेत्र नीति एवं शहरी विकास तथा स्थानिक योजना के विभिन्न आयामों को समझने का प्रयास किया गया है।

टिप्पणी

हमें विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिये अध्ययन में उपयोगी साबित होगी।

इकाई 1 शास्त्रीय समाजशास्त्रीय परंपराएं : नगरीय आयाम

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय

1.1 उद्देश्य

1.2 शास्त्रीय समाजशास्त्रीय परंपराएं

- 1.2.1 नगरीय एवं शहरी आयाम : एमिल दुर्खीम
- 1.2.2 कार्ल मार्क्स
- 1.2.3 मैक्स वेबर
- 1.2.4 फर्डिनैंड टोनीज

1.3 शहरी समुदाय और स्थानिक आयाम : पार्क, बर्गेस एवं मैकेंजी

1.4 महानगर, नगर तथा गांव व शहर का तारतम्य

- 1.4.1 जॉर्ज सिमेल : महानगर
- 1.4.2 लुईस वर्थ : नगरीय
- 1.4.3 रेडफील्ड : सांस्कृतिक संरचना के रूप में गांव और शहर का तारतम्य

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1.6 सारांश

1.7 मुख्य शब्दावली

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

शहरी समाजशास्त्र महानगरीय क्षेत्रों के जीवन और मनुष्य की परस्पर क्रिया का समाजशास्त्रीय अध्ययन है। यह समाजशास्त्र का एक सुस्थापित उपक्षेत्र है जो शहरी क्षेत्रों की संरचनाओं, प्रक्रमों, परिवर्तनों और समस्याओं के अध्ययन का और तदनंतर योजना व नीति निर्माण का ज्ञान प्रदान करने का प्रयास करता है। दूसरे शब्दों में, यह शहरों और समाज के विकास में उनकी भूमिका का समाजशास्त्रीय अध्ययन है। समाजशास्त्र के ज्यादातर क्षेत्रों की समान, प्रवासन, आर्थिक और जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियों तथा गरीबी, जाति संबंधों, अपराध, काम–भावना और गतिशील शहरों में होने वाली कई अन्य घटनाओं समेत विभिन्न विषयों के अध्ययन के लिए शहरी समाजशास्त्र के विद्वान सांख्यिकीय विश्लेषण, अवलोकन या नृजातिविज्ञान, सामाजिक सिद्धांत, साक्षात्कारों और अन्य विधियों का उपयोग करते हैं।

प्रस्तुत इकाई में शास्त्रीय समाजशास्त्रीय परंपराओं तथा नगरीय आयामों पर एमिल दुर्खीम, कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर तथा टोनीज के विचारों को प्रस्तुत किया गया है तथा नगरीय समुदाय के संबंध में अन्य विशेषज्ञों के विचारों को भी प्रस्तुत किया गया है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- शास्त्रीय समाजशास्त्रीय परंपराओं से परिचित हो पाएंगे;

टिप्पणी

- दुर्खीम, कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर तथा टोनीज के विचारों को जान पाएंगे;
- नगरीय आयामों के बारे में जानकारी ग्रहण कर पाएंगे;
- नगरीय समुदाय के संबंध में विभिन्न विशेषज्ञों के विचारों को समझ पाएंगे।

1.2 शास्त्रीय समाजशास्त्रीय परंपराएं

मैक्स वेबर और जॉर्ज सिमेल जैसे समाजशास्त्रियों ने औद्योगिक क्रांति के बाद शहरीकरण की तीव्र प्रक्रिया और सामाजिक विराग और दुराव की भावनाओं पर उसके प्रभावों पर ध्यान देना शुरू किया। खास कर, 1903 में प्रकाशित जॉर्ज सिमेल की पुस्तक 'दि मेट्रोपॉलिस एंड मेंटल लाइफ' के रूप में इस क्षेत्र को उनके योगदान के लिए उन्हें शहरी समाजशास्त्र का जनक माना जाता है।

यांत्रिक एकजुटता : इसका तात्पर्य समानता पर निर्मित सामाजिक बंधनों और बहुत हद तक जनास्था, रीति–रिवाज, अनुष्ठान और पूजा–पाठ, दिनचर्याओं तथा प्रतीक पर निर्भरता से है, लोग कई मुख्य मामलों में समान होते हैं और इस तरह लगभग स्वतः एकजुट, आत्मनिर्भर होते हैं; किसी समाज के लोगों के बीच समता और समानताओं पर आधारित सामाजिक एकजुटता। प्रागैतिहासिक और प्राक्–कृषि समाजों के बीच आम, और उत्तरोत्तर बढ़ती आधुनिकता के साथ–साथ प्रभुत्व और महत्व में उत्तरोत्तर कमी आती जाती है।

जैविक (अवयविक/कर्मणा) एकजुटता : समाज में व्याप्त असमानताओं पर आधारित समाज की व्यवस्था, श्रम, जिसमें कई अलग–अलग लोगों की अलग–अलग व्यवसायों में विशेषज्ञता होती है, के जटिल विभाजन, शहर के निवासियों को मिली अधिक स्वतंत्रता और विकल्प के फलस्वरूप स्वीकृत अवैयक्तिकता, दुराव, असहमति और संघर्ष के बावजूद परंपरागत सामाजिक तानाबाना कमजोर हुआ किंतु, इससे रेचक के रूप में परस्पर निर्भरता पर आधारित सामाजिक एकजुटता के एक नए रूप, अपेक्षाकृत अधिक उन्नत समाज के लोगों की एक दूसरे पर निर्भरता पर आधारित समाज के तानेबाने का निर्माण हुआ। श्रम के बढ़ते विभाजन के चलते यह तथ्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों में आम तौर पर देखा जाता है। हालांकि लोग अलग–अलग कार्य करते हैं और अक्सर उनके अलग–अलग मूल्य व स्वार्थ होते हैं, किंतु समाज की व्यवस्था और अस्तित्व उनके निर्दिष्ट कार्य को पूरा करने में उनके एक–दूसरे पर भरोसे पर निर्भर करता है।

1.2.1 नगरीय एवं शहरी आयाम : एमिल दुर्खीम

एमिल दुर्खीम का मानना है कि आधुनिकीकरण या शहरीकरण की प्रक्रिया में कुछ खो जाता है, किंतु उससे कहीं ज्यादा कुछ प्राप्त होता है। उनके इस विचार का तात्पर्य यह है कि शहरीकरण से यांत्रिक एकजुटता और समुदाय या सामूहिक समरसता की भावना का ह्रास होता है, किंतु दुर्खीम आगे कहते हैं कि आधुनिकीकरण या शहरीकरण एक–नए प्रकार के बंधन को जन्म देता है, जिसे उन्होंने जैविक (अवयिक/कर्मणा) एकजुटता की संज्ञा दी। विशेषज्ञता और परस्पर निर्भरता का यह नया रूप, जिसके फलस्वरूप आर्थिक गतिविधियों और उत्पादन के आधुनिक रूपों वाले औद्योगिक शहरों या शहरी केंद्रों की संवृद्धि होती है, क्योंकि रीति–रिवाजों और मानदंडों पर बल में कमी

टिप्पणी

आती है। इस प्रकार उनके अनुसार आधुनिक समाज में बहुत–सी सकारात्मक बातें दिखाई देती हैं। किंतु, यदि दुर्खीम की धारणा पर गौर करें, तो इस धारणा को आधुनिकीकरण के फलस्वरूप खोए और पाए के दो वर्गों में विभाजित कर देखा जाना चाहिए। परंपरागत समाज से आधुनिकता में प्रवेश के दौरान बहुत कुछ खो गया था। इस प्रकार दुर्खीम की कुछ खो जाने की धारणा बहुत हद तक उचित है, क्योंकि आधुनिकता के कारण गतिविधियों और कार्यों, शांति, अपनेपन (संबंध) में मानकों, मूल्यों, नियमों, समरूपता आदि का ह्रास हुआ है, जबकि संघर्ष, रोगों, दुराव, दफ्तररशाही, जनजातीय संघटन, जातिवाद और उपनिवेशवाद जैसी नकारात्मक स्थितियों ने समाज में आधुनिकीकरण से हुए जीवन स्तर में सुधार, संचार की बेहतर व्यवस्था और परस्पर निर्भरता जैसी लाभ की स्थितियों को लील–सा लिया है। प्रस्तुत निबंध में दुर्खीम के दृष्टिकोण के औचित्य पर औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के रूप में आधुनिकीकरण के आलोक में विचार किया जाएगा।

दुर्खीम के अनुसार शहरीकरण से पहले परंपरागत समाज में कार्यों और कार्यकलापों के रूप में जो समरूपता विद्यमान थी, वह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में धीरे–धीरे दम तोड़ रही है। दुर्खीम की दृष्टि में यांत्रिक एकजुटता, जो समता से आती है और तब अपने चरम पर होती है, जब हमारा सामूहिक विवेक हमारे समग्र विवेक को पूरी तरह से ढंक लेता है और सभी स्थितियों में इसके समान होता है। दुर्खीम का मानना है कि यह प्राचीन समाजों में दिखाई देता है, जिनमें श्रम का बहुत अधिक विभाजन नहीं होता था और जीवित रहने के लिए समाज समान कार्यकलाप करते थे। ये समाज अपेक्षाकृत एक समान होते थे, पुरुष और महिलाएं समान कार्य और दैनिक कार्यकलाप करते थे, लोगों का ज्ञान एक–सा होता था। दुर्खीम का यह दृष्टिकोण आधुनिक समाजों में स्पष्ट दिखाई देता है, जब आधुनिकीकरण और फिर शहरीकरण के उदय से कार्य और गतिविधियां समाज के सामूहिक कार्यकलाप की बजाय परिवार और व्यक्तिगत स्तर पर अधिक केंद्रित हुई हैं। यह शहरी क्षेत्रों में आजीविका के अलग–अलग रूपों के माध्यम से अलग–अलग परिवारों की आजीविका की अलग–अलग गतिविधियों में देखा जा सकता है, जिनसे विविधता पनपती है। आजीविका के विविधीकरण का अर्थ किसी की क्षमताओं और संसाधनों के अनुरूप विभिन्न कार्यों में और न कि समाज आधारित किसी कार्य में लगे रहना है (स्कून्स, 1986)। आजीविकाओं के विविधीकरण के कई आयाम होते हैं, जिनमें भोजन और आय के उत्पादन के जरिए लोगों को जीवनयापन के वैकल्पिक अवसर मुहैया कराने के लिए आय अर्जन की एक मुख्य गतिविधि को छोड़कर अन्य रास्तों का विकल्प होता है। इसका अर्थ यह भी है कि यदि विकल्प सीमित हों अथवा यदि परिवार उत्पादन जारी न रख सकें, तो जीवनयापन के वैकल्पिक माध्यमों की खोज कर सकते हैं और इन माध्यमों में श्रम के जरिए एक दूसरे पर निर्भरता शामिल है जैसे अपने लिए जीविकोपार्जन हेतु लोगों का दूसरे लोगों के घरों में सेवक या सेविका के रूप में काम करना। किंतु, हूजी (2015) आजीविका की विविधता और परस्पर निर्भरता को कोई रोजगार प्राप्त करने के लिए आजीविका की महत्वपूर्ण विविधता और परस्पर निर्भरता के रूप में देखते हैं। इस तरह यदि हम इस पर गौर करें कि आजीविका की विविधता ने समरूपता पर कैसे प्रभाव डाला है और कैसे इसने लोगों के जीवन में सुधार लाकर समाज को बेहतर किया है,

टिप्पणी

तो हम देख सकते हैं कि दुर्खीम के इस कथन में दम है कि आधुनिकीकरण से कुछ खोता है तो बहुत कुछ प्राप्त भी होता है।

जैसा कि दुर्खीम का मानना है, ''हम में से हर कोई समाज पर जितना अधिक घनिष्टता से निर्भर करता है श्रमिक वर्ग उतना ही अधिक विभाजित होता है।'' समाज परस्पर निर्भरता से संगठित रहता है और संव्यावसायी वर्ग पूर्व के खंडित संगठन का स्थान ले लेते हैं। श्रम के बढ़ते विभाजन के साथ, जिसे दुर्खीम ने केवल औद्योगिक या व्यावसायिक अर्थों में नहीं देखा, बल्कि उनके अनुसार, परिवार और दैनिक जीवन के अन्य क्षेत्रों (जैसे प्रशासन) में भी श्रम का यह विभाजन होता है। इस तरह इसे एक सार्वभौमिक घटना के रूप में देखा जा सकता है, समाज ''एक दूसरे से संचालित और एक दूसरे के अधीनस्थ विभिन्न अवयवों की प्रणाली'' का रूप ले लेता है (दुर्खीम 132)। आदान–प्रदान और इसके साथ ''आदान–प्रदान के प्रतीक'' के रूप में अनुबंध परस्पर व्यवहार का सामान्य रूप हो जाता है (वही : 80; 150)। श्रम के विभाजन से एक 'संविदात्मक समाज' का निर्माण होता है, जहां लोगों के बीच का बंधन मजबूत, प्रत्यक्ष और प्रत्येक व्यक्ति व समाज के बीच का बंधन अप्रत्यक्ष होता है (ऑल्पर्ट, 1961 : 182)। इसी प्रकार व्यक्ति अधिक विशिष्ट हो जाता है, इसलिए 'सामूहिक मानस' कमजोर हो जाता है (दुर्खीम, 1984 : 106, 117) : ''व्यक्ति बहुत कम प्रभावित महसूस करता है; वह स्वतः प्रवर्तित गतिविधि का बृहत्तर स्रोत बन जाता है'' (वही : 120)। वस्तुतः, ''सामाजिक एकजुटता में पूर्ण जैविक एकजुटता बनने की प्रवृत्ति दिखाई देती है'' (वही : 123, 85), केवल श्रम विभाजन के फलस्वरूप बनीं सुदृढ़ परस्पर निर्भरताओं का एक परिणाम। हालांकि औद्योगिक समाजों में भी एकजुटता के विभिन्न प्रकार साथ–साथ दिखाई देते हैं, किंतु सामूहिक मानस अभी भी प्रत्येक व्यक्ति का हिस्सा है और वहीं यांत्रिक एकजुटता, जैविक एकजुटता और व्यक्तिगत चेतना भी पर्याप्त हैं।

इसके अतिरिक्त दुर्खीम के अनुसार आधुनिकीकरण और शहरीकरण के कारण मूल्य और मानदंड लुप्त हो चुके हैं। परंपरागत समाज में जहां यांत्रिक एकजुटता व्याप्त थी, दुर्खीम का मानना है कि ''समाज के सभी लोगों के आम विचार और प्रवृत्तियां उन लोगों के विचारों व प्रवृत्तियों से अधिक और गहन थीं, जो व्यक्तिगत स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति से संबद्ध थे।'' समाज (या सामूहिक मानस) के मानदंड, मूल्य और विश्वास इस कदर समरूप हैं और इस अत्यधिक तीव्र और अटल शक्ति से व्यक्ति का सामना करते हैं कि इन समाजों में वैयक्तिकता अथवा इस सामूहिक मानस से पथांतरण की गुंजाइश कम है। सामूहिक मानस और निजी विवेक दर असल समान हैं। किंतु, दुर्खीम ने आधुनिक व्यक्ति का चित्रण सामाजिक मानदंडों से ग्रस्त के रूप में किया जो कमजोर अथवा बहुधा परस्पर विरोधी होते हैं (कोसर, 1997)। एकाकीपन (Anomie) की परिभाषा दुर्खीम ने किसी समग्र समाज अथवा उसके किसी वर्ग में सापेक्ष मानदंड की कमी की एक स्थिति के रूप में की है। सामाजिक नियमों के बिखर जाने की स्थिति में व्यक्तिगत आकांक्षाओं और हितों को नियंत्रित करने वाला प्रभाव बेअसर हो जाता है; लोगों को उनके अपने ही साधनों–योजनाओं के सहारे छोड़ दिया जाता है। मानकीय नियमों और नैतिक मार्गदर्शन के अभाव के फलस्वरूप विचलन और तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है। दुर्खीम के अनुसार एकाकीपन के दो मुख्य कारण हैं : श्रम का विभाजन और समाज में तेजी से हो रहे परिवर्तन। इन दोनों का संबंध निस्संदेह आधुनिकता और शहरीकरण से है।

इसके अतिरिक्त, आधुनिक समाज में व्यक्ति का सामना नानारूप समूहों से होता है, जिनके अलग–अलग मूल्य और लक्ष्य होते हैं। इन मूल्यों और लक्ष्यों में से प्रत्येक व्यक्ति की निष्ठा प्राप्त करने का प्रयास करता है। यह आधुनिकता में लोगों और समूहों पर जनसंचार माध्यमों के प्रभाव से देखा जा सकता है जो किसी शहरीकृत परिवेश की विशेषता है। श्रम विभाजन के कारण जनसंचार माध्यमों का प्रभाव खासकर बच्चों के आदर्शों पर अनिवार्य रूप से पड़ता है, जहां माता–पिता अपने बच्चों को ऐसी सामग्री देखने या सुनने से रोक नहीं पाते, जिनका प्रभाव बच्चों के मूल्यों–मानकों पर पड़ सकता है। जनसंचार माध्यमों का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रबोधन पर निर्भर करता है। जोर सामग्री की प्रेरक शक्ति पर दिया जाता है, जो निजी मूल्यों और मान्यताओं में सुधार लाते हुए सीखने की किसी व्यक्तिगत प्रक्रिया को प्रेरित करती है (डेला विग्ना एवं जेंत्सको, 2010; स्टॉब एवं पर्लमैन, 2009)। यह 'व्यक्तिगत शैक्षिक प्रक्रिया' सामाजिक शिक्षण सिद्धांत में प्रस्तुत तर्कों के समान है, जहां मीडिया का शैक्षिक प्रभाव शैक्षिक मानदंडों के सहारे काम करता है (बांडुरा, 1986)। ये शैक्षिक मानदंड शिक्षण के किसी कार्य को पूरा करने में सहायक होते हैं और ज्ञान, मूल्यों तथा आचार–विचारों का संचार करते हैं। हालांकि मानदंड जनसंचार माध्यमों से गायब हो चुके हैं, किंतु इन माध्यमों से बहुत कुछ प्राप्त भी हुआ है। ये जनसंचार माध्यम किसी सामाजिक तंत्र के सहारे भी प्रभाव डाल सकते हैं (बॉल, 2010)। इस दृष्टांत में जनसंचार माध्यमों का प्रभाव इस तथ्य में निहित है कि इन माध्यमों से इस प्रकार की जानकारी मिल सकती है, जिससे सामान्य ज्ञान के विकास से किसी आदर्श या कार्यकलाप पर तालमेल में वृद्धि होती है (श्वे, 2001)। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जनसंचार माध्यमों के वितरण की विधि सार्वजनिक होती है। सार्वजनिक रूप से उपलब्ध होने के लिए जानी जाने वाली जानकारी लोगों के साझा मान्यता की समझ कायम करने उनकी में सहायता करती है (मत्ज, 1998)। सार्वजनिक जानकारी लोगों को न केवल उनके निजी विचारों में सुधार लाने के लिए प्रेरित करती है, बल्कि उन्हें इससे यह अवसर भी मिलता है कि वे इसके प्रति अपने विचारों में सुधार लाएं कि ये मान्यताएं किस प्रकार व्यापक स्तर पर साझा की जाती हैं (मॉरिस एवं शिन, 2002)। यानी सार्वजनिक जानकारी का उपयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि अन्य लोगों को यह जानकारी मिली, और यह कि जिस किसी ने यह जानकारी प्राप्त की, वह जानता है कि हर किसी को इसका ज्ञान है, और इस प्रकार सामान्य ज्ञान का सृजन होता है। इस प्रकार दुर्खीम के सिद्धांत का एक मुख्य बिंदु यह है : श्रम के उत्तरोत्तर होते विभाजन से विस्तृत समुदाय के भीतर पहचान की भावना के साथ–साथ मानव आचरण पर नियंत्रण कमजोर होते हैं। इन स्थितियों के फलस्वरूप समाज में 'टूटन' पैदा होती है, लोगों का आचरण परिवेश केंद्रित हो जाता है, वे मानकों का उल्लंघन करने लगते हैं तथा सत्ता नियमों से विचलित हो जाती है।

1.2.2 कार्ल मार्क्स

व्यक्तिवाद, स्थिति निर्धारण, नृजातीयता, संपत्ति पूंजी और सरकार का हस्तक्षेप – उन शब्दों को चुनौती देते हैं, जिनमें मार्क्सवाद का चित्रण किया जाता है। बीती पीढ़ी के दौरान सामाजिक सिद्धांत में श्रमशक्ति के बदलते अभिविन्यास, राज्य योजना और शहरीकरण पर ध्यान रखा गया। 'शहरीकृत (नगरीय)' समाजों में भी शहरीकरण एक

टिप्पणी

ज्वलंत मुद्दा बना हुआ है। श्रमिक अंतरणीयता (गतिशीलता) पर कानूनी व सांस्थानिक रोक और आर्थिक विकास की धीमी गति के बावजूद श्रमिकों के शहरों को पलायन के साथ–साथ ग्रामीण समाज को शहर के पाश में फांसना जारी है। इसके अतिरिक्त आर्थिक पुनर्संरचना से शहरी क्षेत्रों का नए सिरे से व्यवस्थापन और गठन होता है। कुछ अपेक्षाकृत अधिक प्रबल राजनीतिक मुद्दे शहरीकरण के इस अनुभव से संबद्ध हैं। ब्रिटेन में जारी प्रतिनगरीकरण (अनगरीकरण) के साथ भीतरी नगरों का उपनगरीकरण (परिधि निर्धारण) हमारे सामने है; फ्रांस में नगर की समस्या फ्रांस के कस्बों की संख्या में विस्फोटक वृद्धि और उसके कारण राज्य योजना के समक्ष चुनौती पर केंद्रित रही। मार्क्सवाद की समस्या एक जटिल समस्या है : मार्क्स या एंगेल्स के लेखन में शहरीकरण का कोई व्यस्थित उपचार तो नहीं ही है, सच पूछिए तो ऐतिहासिक विश्लेषण के लिए उनके द्वारा निर्धारित शर्तों में इस विषय पर कोई चर्चा भी नहीं है। जैसी कि लॉजकीन ने टिप्पणी की है : 'यह देखा जा सकता है कि उत्पादन के पूंजीवादी सरोकारों के लिए 'शहरी क्रांति' के अर्थ का कोई विश्लेषण उनके सैद्धांतिक क्षेत्र से परे है।' राजनीतिक कार्रवाई की एक शर्त के रूप में शहरीकरण की उपेक्षा की गई; उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली के वर्णन में जमीन व मालगुजारी की समस्याएं गौण थीं; समाज कैसे रहता था यह उसकी राजनीतिक स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण नहीं था; उन शर्तों में विश्लेषण करना सामाजिक कार्य–कारण संबंध के प्रचलित मानदंड को स्वीकार करना था। इसलिए बीते 25 वर्षों में मार्क्सवादी परंपरा में लेखकों (और यहां लेफेब्रे, मार्क्स, विलियम्स, कैस्टेल्स, लॉजकीन और हार्वे जैसे उग्र विद्वानों के नाम जोड़े जा सकते हैं) के 'शहरी समस्या' पर लेखन की तात्विक गुणवत्ता मार्क्सवाद के राजनीतिक और बौद्धिक पुनरावेदन का परिसाक्ष्य है। सामंजस्य की नीतियां मार्क्सवाद की क्रांतिकारी राजनीति के रूप में एक अशुद्ध व्याख्या करने, इसे संरचनावादी व्यवस्था के रूप में ग्रहण करने या मार्क्स के सिद्धांतों का परिष्कार और पुनर्व्याख्या का प्रयास करने के लिए अपनाई गई हैं। और, उदाहरण के लिए, लॉजकिन इस प्रकार इस आधार पर शहरीकरण के एक सिद्धांत का विरचन करते हैं कि 'जब मार्क्स इस शब्द का उपयोग करते हैं, तो वह वस्तुतः इसे कोई ऐसा अर्थ नहीं देते जो इसे इस योग्य बनाए कि इसे मार्क्सवादी दृष्टि से जोड़ा जा सके।' शहरीकरण के अनिश्चित सिद्धांत में रद्दोबदल करने के लिए मार्क्सवादी साहित्य के गहन उत्खनन को सामान्यतः शहरी शोधों में मूलभूत परिवर्तन के रूप में देखा जाता है। हालांकि पूर्व में मार्क्सवाद के सरोकारों में समाजशास्त्र, सामाजिक मानवशास्त्र अथवा इतिहास की तकनीकों को मिलाने के लिए इनके साथ कार्य करने वाले समाज विज्ञानियों को किसी प्रत्यक्ष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा है, किंतु इन्हें कभी भी स्पष्ट नहीं किया गया। हैमंड्स की पुस्तक मार्क्सवाद के शहरी इतिहास लेखन का एक अति उत्कृष्ट उदाहरण थी। संरचनात्मक विश्लेषण से सार–संक्षेप और एक समाकलनात्मक कार्यपद्धति का संकेत मिलता है – संस्थाओं और सिद्धांतों में संबंध कायम करने का एक सरोकार। हैमंड्स को यह औद्योगिक शहर के एक निर्माण के साथ बाध्यकारी व आडंबरपूर्ण पूंजीवाद की 'अजनबी और अनियोजित शक्ति' के रूप में मिली। किंतु समुदाय के अनुवर्ती शोधों में, और 'नए तथ्य, तथ्यों के बीच नए संबंध' कायम करने में दैनिक जीवन की बारीकियों के साथ एक मनोग्रस्ति से अधिक विषयों को स्थान दिया गया। स्थानीय अध्ययन का मुख्य

सरोकार लोगों की गतिविधि बन गया, इसके अर्थों का श्रेय नाटकीय घटना, रीतिरिवाज, पौराणिक कथा और लोकसाहित्य को दिया गया। शोध की इस परंपरा को 'समाज – उसके सत्ता और अन्य संसाधनों के वितरण, संभावनाओं पर संरचनागत अंकुश या अवरोध और समाज के स्वरूप में निहित आदर्शों व कार्यविधियों' के अध्ययन में शामिल नहीं किया गया।

पारिस्थितिक–जनसांख्यिकीय विशेषताएं : नगर अपेक्षाकृत बंद और घनी बस्ती होता था। केवल यूरोपीय नगरों पर शोध करने वाले पूर्ववर्ती सिद्धांतकारों के विपरीत विश्व भर के विभिन्न नगरों का सर्वेक्षण किया।

शहरी समुदाय की व्याख्या की, एक आदर्श प्रकार, आवश्यक–

1. व्यापार अथवा वाणिज्य संबंध, जैसे बाजार
2. न्यायालय और उसका अपना कानून
3. आंशिक राजनीतिक स्वायत्तता
4. आत्मरक्षा के लिए सामरिक दृष्टि से आत्मनिर्भर
5. संघों अथवा सहभागिता के स्वरूप जो लोगों को सामाजिक संबंधों और संगठनों में भाग लेने के लिए प्रेरित करें

संकेत दिया कि नगरों का संबंध बृहत्तर प्रक्रियाओं से है, जैसे आर्थिक अथवा राजनीतिक अभिविन्यास, स्वयं नगरों के शहरी जीवन की विशिष्ट गुणवत्ताओं का कारण होने की बजाय, यानी अलग–अलग नगरों में अलग–अलग सांस्कृतिक व ऐतिहासिक स्थितियां बनेंगी, मार्क्स और एंगेल्स के साथ भी ऐसा ही है जिनका मानना है कि नगरों की मानवीय स्थिति आर्थिक संरचना का परिणाम थी।

1.2.3 मैक्स वेबर

वेबर का सामान्य दृष्टिकोण विश्व इतिहास के साक्ष्यों के संदर्भ में नगर की अवधारणा पर विचार करना था। इस आधार पर उन्होंने शहरी समुदाय के सिद्धांत की कल्पना की। किसी शहरी समुदाय समेत कोई भी समुदाय कार्यकलापों अथवा गतिविधियों का कोई असंगठित समूह नहीं बल्कि मानव जीवन का एक विशिष्ट व सीमित ढांचा होता है। यह साम्यावस्था में शामिल की गई जीवन शक्तियों के एक संपूर्ण तंत्र को दर्शाता है। शक्तियों के एक विशिष्ट तंत्र के रूप में शहरी समुदाय विश्व में कहीं भी आकार नहीं ले सकता था। वेबर दृढ़ता से कहते हैं कि इसका उदय एशिया में नहीं बल्कि निकट पूर्व (मेसोपोटामिया) में खंडों में हुआ, जिसका कारण यह था कि नगर राज्य प्रशासन का एक केंद्र था। यहां एकतंत्रीय सत्तावाद (Patrimonialism = शासन का एक रूप, जिसमें सभी शक्तियां उसके प्रधान से निःसृत होती हैं) और शहरी विकास के बीच संबंध की समस्या सामने आती है। इस बिंदु पर वेबर का तर्क वाशिंगटन, लंदन और पैरिस (बांग्लादेश का ढाका और भारत की दिल्ली क्यों नहीं) जैसे कुछ राजधानी नगरों के लिए आज भी प्रासंगिक है, निस्संदेह इसलिए क्योंकि वे देश के शासन के केंद्र हैं, उनमें सामान्य नगरों की कुछ राजनीतिक स्वायत्तता की कमी है। उन्हें पूर्ण शहरी समुदाय बनने से रोका जाता है। क्या इसका अर्थ यह है कि सामान्य नगरों की राजनीतिक स्वायत्तता केवल व्यापार और वाणिज्य के केंद्रों पर होगी? यह पुनः नगर

टिप्पणी

की एक संकीर्ण अवधारणा है। संभवतः, मैक्स वेबर स्वयं इस तथ्य को स्वीकार करते हैं जब वह उल्लेख करते हैं कि पाश्चात्य मत में एशिया में 'नगर' अंशतः संबंध शक्ति (Sib Power) के कारण, जो अटूट था, और अंशतः जाति संक्रमण के कारण वर्जित या सीमित था। उनके अनुसार, एशियाई प्रज्ञा के हित मुख्यतः राजनीतिक दिशा से इतर अन्य दिशाओं में निहित थे। पूर्व की नदी–घाटी सभ्यताओं में राजनीति और प्रशासन केवल उनकी (कन्फ्यूशियसवादियों जैसे राजनीतिक बुद्धिजीवियों की) याजक–वृत्ति का निरूपण करते थे; व्यवहार में इन सब का संचालन सामान्यतः अधीनस्थ सामाजिक समूह करते थे (वेबर 1958 : 338)। मैक्स वेबर की नगरों की संकल्पना और वर्गीकरण गैर–कानूनी शासन के संदर्भ में स्वभावतः उनकी नागरिकता की धारणा को शामिल कर लेते हैं, जिनमें तीन विशिष्ट विशेषताएं भी हैं अर्थात् आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक अथवा सांस्कृतिक। पहला, नागरिकता में कुछ खास सामाजिक श्रेणियां या वर्ग आ सकते हैं, जिनका कुछ विशिष्ट आर्थिक हित होता है। दूसरा, राजनीतिक संदर्भ में, नागरिकता का तात्पर्य राज्य की सदस्यता से है, जिसमें व्यक्ति के कुछ राजनीतिक अधिकारों का संकेत होता है। अंत में, वर्ग के संदर्भ में नागिरकों का तात्पर्य नौकरशाही या सर्वहारा तथा उनके समुदाय से इतर अन्य समुदायों के विपरीत, उन वर्गों से है, जो 'संपदा और संस्कृति के लोगों', उद्यमियों, निधिक आयों के लाभार्थियों, और सामान्य रूप में, शैक्षिक संस्कृति के सभी लोगों, रहन–सहन के एक खास वर्ग स्तर, और एक विशिष्ट सामाजिक मार्यादा के रूप में एक दूसरे के निकट हों। नागरिकता की तीसरी विशेषता मुख्यतः एक मिश्रित विशेषता है। यानी संपत्ति और सांस्थानिक शिक्षा किसी व्यक्ति को नागरिकता की पहचान दिला सकती हैं। वस्तुतः वेबर की नागरिकता की संकल्पना का तात्पर्य सामाजिक स्तर के तीन आयामों से है : वर्ग (आर्थिक), स्थिति (सामाजिक या सांस्कृतिक), शक्ति या दल (राजनीतिक)। किंतु पहले और तीसरे तत्वों का उनका अभिनिर्धारण स्पष्ट नहीं बल्कि धूमिल है। उनके अनुसार, नागरिकता का पहला प्रकार (आर्थिक) पश्चिमी सभ्याता की आम विशेषता है, जहां नगरों का विकास मुख्यतः व्यापार एवं वाणिज्य केंद्रों के रूप में हुआ। राजनीतिक संदर्भ में नागरिकता के पूर्वगामी लक्षण प्राचीन काल में और फिर मध्य युग के नगरों में दिखाई देते हैं। यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि हालांकि प्राचीन यूनान और रोम के दास राजसनीतिक दृष्टि से स्वायत्त नगर राज्यों में रहते थे, किंतु उन्हें नागरिकता निश्चयात्मक रूप से प्राप्त नहीं थी। मैक्स वेबर ने नागरिकता के अपने मत के संदर्भ में दासों की स्थिति का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया। किंतु, उनके अनुसार इस्लामिक देश और भारत तथा चीन राज्य के नागरिकों की धारणा से अवगत नहीं थे। इसी प्रकार, संपदा व संस्कृति के लोगों के रूप में नागरिक की धारणा विशेष रूप से आधुनिक है और यह बुर्जुआ (मध्य वर्ग) की तरह पश्चिमी संकल्पना है। इसका अर्थ यह है कि नागरिकता की संकल्पना के विभिन्न पूर्वी लक्ष्यार्थ हैं। नगर ने दल और दलपति की संकल्पना को जन्म दिया। नगर ने ही कला के इतिहास विषय को जन्म दिया। आधुनिक संदर्भ में इसी ने विज्ञान को भी जन्म दिया। बेबीलोनिया वासियों की नगर संस्कृति का खगोल के मूल सिद्धांत से एक समरूप संबंध है (वेबर 1961 : 233–34)। वेबर की नागरिकता की संकल्पना व्यावहारिक दृष्टि से शासन के दो अलग–अलग रूपों के रूप में एकतंत्रवादी (Patrimonial) राज्य और नगर की संकल्पना के समान है। अंत में, कहा जा सकता

है कि यदि हम आज के युग में किसी देश के सभी वयस्क लोगों पर प्रजातांत्रिक संसद के सदस्यों को चुनने के उनके अधिकार के मद्देनजर विचार करें, तो पाएंगे कि उनकी नागरिकता की संकल्पना पूरी तरह से उपयुक्त नहीं है।

टिप्पणी

1.2.4 फर्डिनैंड टोनीज

फर्डिनेंड टोनीज ने मानव संबंध (मानव संघ) के संयोजन के दो बुनियादी सिद्धांतों या मनुष्य के सामाजिक जीवन के दो विपरीत प्रकारों की व्याख्या और वर्णन किया।

1. **गेमाइनशाफ्ट (समुदाय)** : विशिष्ट या चिह्नित कस्बा, गांव के लोगों के उद्देश्य की एक तात्विक एकता होती है, वे लोकहित के लिए साथ मिलकर काम करते हैं, परिवार (रक्त–संबंध) के बंधनों में आबद्ध और पड़ोसियों से जुड़े रहते हैं, ग्रामवासी जमीन पर सामुदायिक रूप से कार्य करते हैं, सामाजिक जीवन की विशेषता यह है कि लोग अंतरगता, अपनेपन और अनन्यता के साथ मिलकर रहते हैं, लोगों की एक आम भाषा और अपनी–अपनी परंपराएं होती हैं, जिनसे वे बंधे होते हैं, सर्वमान्य लोक हित होते हैं, आम मित्र और शत्रु होते हैं, वहीं हम या हमारा की मानवोचित भावना होती है।
2. **गेसेलशाफ्ट (समाज)** : विशिष्ट बड़ा नगर, नगर का जीवन एक यांत्रिक समुच्चय होता है, जिसमें एकता का अभाव, असीम व्यक्तिवाद और स्वार्थपरता दिखाई देती है, अस्तित्व का अर्थ समूह से हटकर व्यक्ति, तर्कपरकता, धूर्तता तक सीमित था, प्रत्येक व्यक्ति इस संदर्भ में देखा जाता है कि उसकी एक विशेष भूमिका प्रदत्त सेवा होती है; मानवजाति के एक समुच्चय की कृत्रिम बनावट का सामना करता है, जो ऊपर–ऊपर से गेमाइनशाफ्ट के समान ही होता है, जब तक लोग शांतिपूर्वक एक साथ रहते हैं। किंतु जहां गेमाइनशाफ्ट के लोग सभी अलगावकारी कारकों के बावजूद इकट्ठे रहते हैं, वहीं गेसेलशाफ्ट के लोग तमाम एकजुटकारी कारकों के बावजूद अलग–अलग रहते हैं।

गेमाइनशाफ्ट संबंधों के निम्न प्रकार होते हैं : सगोत्रता (रक्त–संबंध), मित्रता और पड़ोस या स्थान।

1. सगोत्र समुदाय (Kinship Gemeinschaft) परिवार पर आधारित होता है; सर्वाधिक मजबूत संबंध मां और बच्चे के बीच होता है, उसके बाद पति और पत्नी के बीच और फिर सगे भाई–बहनों के बीच। गेमाइनशाफ्ट संबंध पिता और बच्चे के बीच भी होता है, किंतु यह संबंध मां और बच्चे के बीच संबंध से कम जन्मसिद्ध (instinctual/जन्मज) होता है। किंतु, पिता–शिशु संबंध गेमाइनशाफ्ट संबंध में सत्ता का मूल रूप होता है।
2. सगोत्रता का विकास होता है और यह स्थान के गेमाइनशाफ्ट में अंतर करती है, जो किसी सामूहिक आवास क्षेत्र पर आधारित होता है।

फिर मित्रता, अथवा मन का गेमाइनशाफ्ट भी होता है, जिसके लिए एक आम बौद्धिक या मानसिक संप्रदाय (जैसे धर्म) की आवश्यकता होती है।

उन्हें सामाजिक जीवन के तानेबाने के दुर्बल होने का भय था।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

1. जॉर्ज सिमेल की पुस्तक 'दि मेट्रोपॉलिस एंड मेंटल लाइफ' कब प्रकाशित हुई थी?

   (क) 1900 में (ख) 1901 में

   (ग) 1902 में (घ) 1903 में

2. यह किसका मानना है कि आधुनिकीकरण या शहरीकरण की प्रक्रिया में कुछ खो जाता है, किंतु उससे कहीं ज्यादा कुछ प्राप्त होता है?

   (क) एमिल दुर्खीम का (ख) कार्ल माक्स का

   (ग) मैक्स वेबर का (घ) जॉर्ज सिमेल का

1.3 शहरी समुदाय और स्थानिक आयाम : पार्क, बर्गेस एवं मैकेंजी

शहरी समाजशास्त्र के विकास का श्रेय रॉबर्ट ई पार्क, लुई विर्थ, अर्नेस्ट डब्ल्यू बर्जेस और आर डी मैकेंजी को जाता है, जिन्हें शिकागो स्कूल कहा जाता है, जिन्होंने शिकागो विश्वविद्यालय में इस विषय का अध्यापन शुरू किया। हालांकि शहर या नगर पर अध्ययन समाज विज्ञान की विधाओं में शिक्षा के विषय के रूप में शिकागो स्कूल के लेखन के आधार पर शुरू हुआ, किंतु कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर और दुर्खीम जैसे सामाजिक चिंतकों की सैद्धांतिक संकल्पनाएं नगरों अथवा शहरों पर केंद्रित थीं। तथापि इसका पहला विभाग सन् 1892 में संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में शुरू किया गया। इस विभाग के अध्यक्ष अलिबयॉन थे। डब्ल्यू. स्मॉल और चार्ल्स आर. हेंडरसन, डब्ल्यू. आई. टॉमस और जॉर्ज ई. विंसेंट जैसे विद्वान इस विभाग के सदस्य थे। सन् 1920 के आरंभ में समाजशास्त्रियों ने नगरों के विकास और संरचना व मानव स्वभाव तथा उनके संस्थाओं से संबद्ध सैद्धांतिक मतों के दिशा निर्देशों के अनुरूप शिकागो में शहरी जीवन के तथ्यों के संग्रह का श्रमसाध्य कार्य शुरू किया।

शहरी या नगरीय समाजशास्त्र के उद्‌भव का शिकागो नगर के विस्तार के साथ गहरा संबंध है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में इस नगर का तेजी से वाणिज्यीकरण और औद्योगिकीकरण हुआ। यूरोप, फ्रांस, स्वीडन, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया आदि विश्व के कई हिस्सों से लोग यहां आए और इस प्रकार यह बहुसांस्कृतिक तथा बहुभाषायी हो गया, जहां संपत्ति का असमान वितरण था (फ्रेडरिक क्रेसी 1971)। शिकागो की आबादी सन् 1898 से बढ़कर सन् 1930 तक दोगुनी हो गई। तेजी से हुए इस विकास के साथ–साथ नगर की जनसंख्या के वितरण में अनेकानेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। आबादी का विस्तार केवल एक विशाल क्षेत्र में ही नहीं बल्कि अन्य हिस्सों की तुलना में नगर के कई हिस्सों का तेजी से विकास हुआ। शिकागो के साथ–साथ विकास विश्व के कई अन्य हिस्सों में भी हुआ। नगर का यह तीव्र विकास शिकागो के समाजशास्त्रियों के अध्ययन का मुख्य विषय बन गया। यह महानगर, यह विशाल शहरी क्षेत्र जो यहां रह रहे लोगों के सामाजिक जीवन और विश्व भर के राष्ट्रों के सांस्कृतिक, राजनीतिक

व आर्थिक जीवन में अहम भूमिका निभाता है, शिकागो स्कूल का एक समेकित विषय बन गया। सन् 1920 तक आते–आते शिकागो स्कूल को भान हुआ कि प्राकृतिक क्षेत्रों का दो पक्षों में सारगर्भित ढंग से अध्ययन किया जा सकता है :

(क) **स्थानिक स्वरूप** : इसमें स्थानीय समुदाय की स्थलाकृति और भौतिक व्यवस्था आती हैं, जिनमें न केवल भूक्षेत्र बल्कि लोगों द्वारा निर्मित भवन और घर भी होते हैं, जो शहर के बाशिंदों को आश्रय देते और उनके लिए काम करने व खेलने के स्थान मुहैया कराते हैं।

(ख) **सांस्कृतिक जीवन** : रहन–सहन के तरीके और रीतिरिवाज व मानदंड सांस्कृतिक जीवन के अंतर्गत आते हैं। स्थानिक स्वरूप ने पारिस्थितिक शोधों–अध्ययनों को बढ़ावा दिया, उन सभी विषयों के अध्ययन को बढ़ावा दिया जिनका वर्णन किया जा सकता है, जैसे वितरण, भौतिक संरचनाएं, संस्थाएं, किसी क्षेत्र के समूह और लोग।

पार्क, बर्गेस एवं मैकेंजी के विचार

शहरी समाजशास्त्र में एक बुनियादी बदलाव आया है। नए शहरी समाजशास्त्र ने मानव पारिस्थितिकी को चुनौती दी है और बड़े पैमाने पर उसकी जगह ले ली है। कुछ विद्वान नए शहरी समाजशास्त्र की बुनियादी धारणाओं के आलोक में कुछ पुराने पारिस्थितिक लेखन का पुनर्मूल्यांकन करते हैं। रॉडरिक मैकेंज़ी नए शहरी समाजशास्त्र के सिद्धांतों के लिए एक महत्वपूर्ण संबंध दिखाते हैं; अमोस हॉले का अमूर्त वैचारिक ढांचा सैद्धांतिक पुल निर्माण का अवसर प्रदान करता है। शहरी पारिस्थितिकीविदों के दावों को उनके अपने बौद्धिक पूर्वजों द्वारा चुनौती दी जाती है, और वैचारिक निरंतरता और ओवरलैप के क्षेत्रों में अधिक संवाद और कम सैद्धांतिक ध्रुवीकरण होना चाहिए।

शिकागो स्कूल (कभी–कभी पारिस्थितिक स्कूल के रूप में जाना जाता है) शिकागो विश्वविद्यालय में उत्पन्न समाजशास्त्र और अपराध विज्ञान में विचार के एक स्कूल को संदर्भित करता है जिसका काम 20 वीं शताब्दी की शुरुआत में प्रभावशाली था। यहां पार्क, बर्गेस एवं मैकेंजी के विचारों को क्रमशः इस प्रकार समझाया गया है–

रॉबर्ट ई, पार्क

अमेरिकी समाजशास्त्री रॉबर्ट ई. पार्क समाजशास्त्र के "शिकागो स्कूल" में एक प्रमुख व्यक्ति थे। उनका जन्म 14 फरवरी, 1864 को पेंसिल्वेनिया के हार्वेविले में हुआ था। उन्होंने अपनी पीएच.डी. 1904 में हीडलबर्ग में अपने शोध प्रबंध, "मासे एंड पब्लिकम" (द क्राउड एंड द पब्लिक) के साथ पूरी की।

पार्क एक विपुल लेखक नहीं थे, लेकिन उन्होंने कई किताबें और कई लेख तैयार किए। उनके लेख रॉबर्ट ई. पार्क के कलेक्टेड पेपर्स, वॉल्यूम के रूप में उनके छात्रों द्वारा तीन खंडों में प्रकाशित किए गए हैं। 1. रेस एंड कल्चर (1950), वॉल्यूम, 2. मानव समुदाय : शहर और मानव पारिस्थितिकी (1952), और वॉल्यूम, 3. सोसायटी (1955)। शायद उनका सबसे प्रभावशाली प्रकाशन 1921 में अर्नेस्ट डब्ल्यू बर्गेस के साथ प्रकाशित समाजशास्त्र के विज्ञान का पथप्रदर्शक परिचय था, जिसे संयुक्त राज्य अमेरिका में अब तक की सबसे प्रभावशाली समाजशास्त्रीय पाठ्यपुस्तक के रूप में वर्णित किया गया।

टिप्पणी

पार्क के विचार में, समाज को परंपराओं और मानदंडों द्वारा नियंत्रित व्यक्तियों की बातचीत के रूप में सबसे अच्छी तरह से देखा जाता है। पार्क को सामाजिक मनोविज्ञान में गहरी दिलचस्पी थी, और उनके पसंदीदा विषय सामूहिक व्यवहार, समाचार, नस्ल संबंध, शहर और मानव पारिस्थितिकी थे। पार्क ने समाजशास्त्र को "सामूहिक व्यवहार का विज्ञान" के रूप में परिभाषित किया, जो अधिक तरल सामाजिक प्रक्रियाओं के अध्ययन के साथ सामाजिक संरचनाओं के विश्लेषण की आवश्यकता का सुझाव देता है।

इन प्रक्रियाओं को चार प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया गया हैः प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, समायोजन और आत्मसात। पार्क ने कहा कि "प्रतिस्पर्धा सामाजिक संपर्क का प्राथमिक सार्वभौमिक और मौलिक रूप है।" यह मानव समाज में उतना ही सार्वभौमिक और निरंतर है जितना कि यह प्रकृति में है, और यह व्यक्तियों को श्रम विभाजन में उनकी स्थिति प्रदान करता है। संघर्ष रुक–रुक कर और व्यक्तिगत है। प्रतियोगिता समुदाय में व्यक्ति की स्थिति निर्धारित करती है; संघर्ष समाज में अपना स्थान निर्धारित करता है। आवास संघर्ष की समाप्ति है। एसिमिलेशन "इंटरपेनेट्रेशन और फ्यूजन की एक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति और समूह अन्य व्यक्तियों और समूहों की यादों, भावनाओं और दृष्टिकोणों को प्राप्त करते हैं, और अपने अनुभवों और इतिहास को साझा करके, उनके साथ एक आम संस्कृति में शामिल होते हैं।" फिर जब आत्मसात हो जाता है तो इसका मतलब यह नहीं है कि व्यक्तिगत मतभेद समाप्त हो जाते हैं या प्रतिस्पर्धा और संघर्ष समाप्त हो जाता है, लेकिन अनुभव की पर्याप्त एकता है ताकि "उद्देश्य और कार्रवाई का समुदाय उभर सके"। सामाजिक दूरी से तात्पर्य "समूहों और व्यक्तियों के बीच घनिष्ठता की डिग्री" से है। अंतरंगता की डिग्री उस प्रभाव को मापती है जो प्रत्येक का दूसरे पर होता है"। व्यक्तियों और समूहों के बीच जितनी अधिक सामाजिक दूरी होती है, वे एक दूसरे को उतना ही कम प्रभावित करते हैं।

हालांकि पार्क का सिद्धांत उनके समय के प्रचलित आत्मसातवादी दृष्टिकोण के साथ फिट बैठता है, लेकिन उनके जाति–संबंध चक्र की कई आलोचनाएं हैंः (1) पार्क ने आत्मसात प्रक्रिया को पूरा करने के लिए समय सीमा निर्धारित नहीं की– इसे अनिवार्य रूप से अप्राप्य बना दिया; (2) पार्क किसी भी नस्लीय समूह का हवाला नहीं दे सकता था जो उसके चक्र के सभी चार चरणों से गुजरा था – इसके बजाय, उसने और अन्य आत्मसात सिद्धांतकारों ने प्रक्रिया में हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप आत्मसात की कमी की व्याख्या की; (3) पार्क ने आत्मसात करने की प्रक्रिया का अधिक विस्तार से वर्णन नहीं किया।

अर्नेस्ट वॉटसन बर्गेस

अर्नेस्ट वॉटसन बर्गेस (16 मई, 1886 – 27 दिसंबर, 1966) एक कनाडाई–अमेरिकी शहरी समाजशास्त्री थे, जिनका जन्म ओंटारियो के टिलबरी में हुआ था। उन्होंने ओक्लाहोमा के किंगफिशर कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की और शिकागो विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र में स्नातक की पढ़ाई जारी रखी। 1916 में, वे एक संकाय सदस्य के रूप में शिकागो विश्वविद्यालय में लौट आए। बर्गेस को शिकागो विश्वविद्यालय में शहरी समाजशास्त्री के रूप में नियुक्त किया गया था। बर्गेस ने अमेरिकन सोशियोलॉजिकल एसोसिएशन (एएसए) के 24वें अध्यक्ष के रूप में भी कार्य किया।

टिप्पणी

1921 में शिकागो विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के रूप में कार्यरत रहने के पांच साल बाद, अर्नेस्ट बर्गेस ने अपनी सबसे प्रसिद्ध रचनाओं में से एक को प्रकाशित किया। उन्होंने समाजशास्त्री रॉबर्ट पार्क के साथ मिलकर समाजशास्त्र के विज्ञान का परिचय (पार्क एंड बर्गेस, 1921) नामक एक पाठ्यपुस्तक लिखी। यह अब तक लिखे गए सबसे प्रभावशाली समाजशास्त्र ग्रंथों में से एक था। उस समय कई लोगों ने इस पुस्तक को "समाजशास्त्र की बाइबिल" के रूप में संदर्भित किया था। यह पुस्तक उन पुरुषों के अवलोकन और प्रतिबिंब का प्रतिनिधित्व करती है जिन्होंने जीवन को बहुत अलग दृष्टिकोण से देखा है। पुस्तक में समाजशास्त्र का इतिहास, मानव स्वभाव, समस्याओं की जांच, सामाजिक संपर्क, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष, आत्मसात और बहुत कुछ जैसे कई विषयों पर चर्चा की गई है।

अभी भी बढ़ते युगीन आंदोलन के तर्कों को उलटते हुए, बर्गेस और पार्क ने तर्क दिया कि सामाजिक अव्यवस्था, आनुवंशिकता नहीं, बीमारी, अपराध और स्लम जीवन की अन्य विशेषताओं का कारण है।

समाजशास्त्र के विज्ञान का परिचय इतना सुव्यवस्थित और व्यापक था कि शिकागो विश्वविद्यालय के पूर्व छात्रों द्वारा पढ़ाए जाने वाले अधिकांश स्नातक छात्रों को इसे पढ़ना आवश्यक था। यह पुस्तक इतनी जानकारीपूर्ण थी कि अर्नेस्ट बर्गेस की मृत्यु के दशकों बाद भी इसका उपयोग किया जा रहा था।

बर्गेस के अभूतपूर्व शोध ने अपने सहयोगी रॉबर्ट ई. पार्क के साथ मिलकर द शिकागो स्कूल की नींव रखी। द सिटी (पार्क, बर्गेस, और मैकेंज़ी, 1925) में उन्होंने शहर को केंद्रीय व्यापार जिले, संक्रमणकालीन (औद्योगिक, बिगड़ते आवास), कामकाजी वर्ग के आवासीय (किराये), आवासीय सहित संकेंद्रित क्षेत्रों (कंसेंट्रिक ज़ोन मॉडल) में अवधारणाबद्ध किया।

इकाई–भारित प्रतिगमन की बर्गेस विधि

अपराध विज्ञान के क्षेत्र में, बर्गेस ने पैरोल पर कैदियों की सफलता या विफलता की भविष्यवाणी करने पर काम किया। उन्होंने पैरोल पर सफलता से जुड़े 21 उपायों की पहचान की, इन उपायों को पैरोल की सफलता से जुड़े एक के स्कोर के साथ शून्य या एक के स्कोर में परिवर्तित किया। उदाहरण के लिए, नौकरी कौशल में कमी वाले व्यक्ति का अंक शून्य होगा, जबकि नौकरी कौशल वाले व्यक्ति के पास एक अंक होगा। इसके बाद उन्होंने स्कोर को एक ऐसा पैमाना प्राप्त करने के लिए जोड़ा जिसमें उच्च स्कोर ने पैरोल पर सफलता की अधिक संभावना की भविष्यवाणी की (बर्गेस, 1928)।

परिणामों से पता चला कि पैमाने ने अच्छा काम किया। उदाहरण के लिए, 14 से 21 तक के उच्चतम स्कोर वाले पुरुषों के लिए, पैरोल की सफलता की दर 98% थी; 4 या उससे कम स्कोर वाले पुरुषों के लिए पैरोल की सफलता की दर केवल 24% थी। अंकों के संयोजन की इस पद्धति को इकाई–भारित प्रतिगमन की बर्गेस विधि कहा जाने लगा है।

अर्नेस्ट बर्गेस ने परिवार और विवाह की संस्थाओं का अध्ययन करने में भी काफी समय बिताया। वह एक वैज्ञानिक उपाय विकसित करने में रुचि रखते थे जो विवाह

टिप्पणी

में सफलता दर की भविष्यवाणी करेगा। 1939 में लियोनार्ड कॉटरेल के साथ लिखी गई अपनी पुस्तक प्रेडिक्टिंग सक्सेस या फेल्योर इन मैरिज में उन्होंने सिद्धांत दिया कि विवाह में सामंजस्य के लिए पति और पत्नी दोनों के दृष्टिकोण और सामाजिक व्यवहार में एक निश्चित मात्रा में समायोजन की आवश्यकता होती है। बर्गेस और कॉटरेल ने वैवाहिक सफलता की भविष्यवाणी के लिए एक चार्ट विकसित किया। इस चार्ट में उन्होंने कई अलग–अलग चर जोड़े जो उनका दावा है कि विवाह में स्थिरता को प्रभावित करते हैं। हालांकि, बर्गेस और कॉटरेल की अक्सर इस काम के लिए आलोचना की जाती थी, क्योंकि उन्होंने वास्तविक के बिना शादी को मापने का प्रयास किया था।

रॉडरिक डी. मैकेंजी

समाजशास्त्र में रॉडरिक डी. मैकेंजी के कई योगदानों में से दो विचार मुख्य हैं जो आधुनिक समाज को समझने में अभी भी उपयोगी हैं। सबसे पहले, शिकागो स्कूल के मानव पारिस्थितिकी के मुख्य प्रस्तावक और सिद्धांतकार के रूप में, मैकेंज़ी समाज की एक वैकल्पिक अवधारणा के लिए सुझाव प्रदान करते हैं, जो अन्य बातों के अलावा सामाजिक संबंधों के भौतिक आधार पर जोर देते हैं। दूसरे, मैकेंजी की रचनाएं विभिन्न तरीकों से सुझाव देती हैं कि आधुनिक समाज को भौतिक एकीकरण में वृद्धि की विशेषता है। इस तर्क का पहला पहलू सामाजिक संबंधों के विश्लेषण में संस्थाओं की केंद्रीयता की उनकी चर्चा में मिलता है। दूसरा पहलू "महान एकीकृत एकता" का उनका विस्तृत विवरण और विश्लेषण है जिसे उन्होंने ग्रेट सोसाइटी या वर्ल्ड सोसाइटी कहा। समाजशास्त्रियों ने "वैश्वीकरण" के बारे में लिखना शुरू करने से कई दशक पहले, मैकेंज़ी वैश्विक समाज और वर्तमान वैश्वीकरण बहस में कई मुद्दों का विस्तृत विवरण और व्यापक विश्लेषण प्रदान करता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. शहरी या नगरीय समाजशास्त्र के उद्‌भव का किस नगर के विस्तार के साथ गहरा संबंध है?

   (क) न्यूयार्क (ख) लंदन

   (ग) शिकागो (घ) दिल्ली

4. शिकागो की आबादी सन 1898 से बढ़कर सन 1930 तक कितनी हो गई?

   (क) आधी (ख) दोगुनी

   (ग) डेढ़ गुनी (घ) तिगुनी

1.4 महानगर, नगर तथा गांव व शहर का तारतम्य

शिकागो विश्वविद्यालय में शोधों–अध्ययनों का आरंभ नगर की सामाजिक समस्याओं के प्रति एक चिंता को लेकर हुआ। नगरीय प्रतिवेश की सामाजिक समस्याओं के वर्णन के स्पष्ट उप–उत्पादों में से एक संसाधन प्रबंधन की क्षमता थी, सेवाओं को उस दिशा में ले जाने और केंद्रित करने की क्षमता, जहां समस्याएं अत्यधिक हों। कुछ पारिस्थितिक क्षेत्रों में अपराध और आत्महत्या जैसी समाज की विकृतियां जब–तब

देखने में आती रहती हैं। इस प्रकार, पारिस्थितिक सिद्धांत पथांतरण और नियंत्रण के अपेक्षाकृत अधिक विशिष्ट सिद्धांतों का आधार प्रदान करते हैं।

1.4.1 जॉर्ज सिमेल : महानगर

टिप्पणी

महानगर हमेशा मुद्रा अर्थव्यवस्था का केंद्र रहे हैं। महानगरों में आर्थिक विनिमय की बहुतायत और सघनता के कारण आदान–प्रदान के साधनों का एक विषेश महत्व होता है, जिसकी गुंजाइश गांव के कमजोर वाणिज्य में नहीं होती। मुद्रा अर्थव्यवस्था और बुद्धिजीवियों के वर्चस्व में सहज संबंध होता है। लोगों और विषयों के साथ व्यवहार करने में उनकी एक एक साझा भौतिक प्रवृत्ति होती है; और इस प्रवृत्ति में एक औपचारिक तटस्थता के साथ बहुधा एक संवेदनाशून्य शुष्कता होती है। बौद्धिक रूप से प्रभावशाली लोग सभी वास्तविक वैयक्तिकता के प्रति उदासीन होते हैं, क्योंकि इससे संबंध और प्रतिक्रियाएं पनपती हैं, जिन्हें तर्कपरक कार्यों से कमजोर नहीं किया जा सकता। इसी तरह, तथ्य की वैयक्तिकता आर्थिक सिद्धांत के अनुरूप नहीं होती। मुद्रा का संबंध केवल आम विषयों से होता है : यह विनिमय मूल्य की मांग करती है, यह समस्या की समस्त गुणवत्ता और वैयक्तिकता को कम करती है : कितना? लोगों के बीच तमाम अंतरंग संवेगात्मक संबंध उनकी वैयक्तिकता पर आधारित होते हैं, जबकि बौद्धिक संबंधों में व्यक्ति को एक संख्या की तरह, एक मूलवस्तु की तरह समझा जाता है, जो स्वयं ही तटस्थ होती है। महत्व केवल वस्तुपरक औसत दर्जे की उपलब्धि को दिया जाता है। इस प्रकार महानगर के लोग अपने महाजनों और ग्राहकों की, अपने घरेलू सेवक की परवाह करते हैं। वहीं, इनके अतिरिक्त वे अकसर उन लोगों का ध्यान भी रखते हैं, जो उन्हें समाज में मेल–जोल का अवसर दिलाते हैं। बौद्धिकता की ये विशेषताएं उस लघु परिमंडल के स्वभाव के विपरीत होती हैं, जिसमें वैयक्तिकता का अपरिहार्य ज्ञान अनिवार्य रूप से आचरण का एक प्रचंड राग पैदा करता है, एक आचरण जो सेवा और प्रतिलाभ के महज वस्तुपकर संतुलन के परे होता है। लघु समूहों के आर्थिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक है कि प्राचीन स्थितियों में उत्पादन उन ग्राहकों की अपेक्षा पूरी करता है, जो सामान का आदेश देते हैं, ताकि उत्पादक और उपभोक्ता एक दूसरे से परिचित हों। किंतु, आधुनिक महानगरों को बाजार के लिए, लगभग सारे उत्पादों की आपूर्ति की जाती है, यानी सभी अज्ञात खरीदारों के लिए, जो उत्पादक के वास्तविक दृष्टि क्षेत्र में व्यक्तिगत रूप से कभी नहीं आते। इस अनामिता के कारण प्रत्येक पक्ष के स्वार्थों में एक निष्ठुर उदासीतनता या तटस्थता आ जाती है; और व्यक्तिगत संबंधों के अतिसूक्ष्म कारकों के कारण दोनों पक्षों के आर्थिक अहंभावों की बौद्धिक रूप से गणना करने में किसी तरह के विचलन का भय नहीं होना चाहिए। मुद्रा अर्थव्यवस्था महानगरों पर हावी रहती है; इसने घरेलू उत्पादन के अंतिम अवशेषों और वस्तु के प्रत्यक्ष विनिमय का स्थान ले लिया है, यह रोज ग्राहकों की मांग के कार्य की मात्रा को कम करती है। महानगरों में हावी मुद्रा अर्थव्यवस्था (नकदी अर्थव्यवस्था) से यह निश्चल भाव स्पष्टतः इतनी अंतरंगता से परस्पर संबद्ध है कि कोई नहीं कह सकता कि इस बौद्धिक मानसिकता ने मुद्रा अर्थव्यवस्था (नकदी अर्थव्यवस्था) को पहले प्रोत्साहित किया अथवा मुद्रा अर्थव्यवस्था ने बौद्धिक मानसिकता का निर्धारण किया। महानगरीय जीवन–पद्धति निश्चय ही इस विनिमय या आदान–प्रदान की अति उपजाऊ जमीन है, एक तथ्य जिसे मैं संविधान के प्रख्यात अंग्रेज इतिहासकार

की सूक्ति के हवाले से दर्ज करूंगा : इंग्लैंड के इतिहास की समस्त शृखला में, लंदन ने इंग्लैंड के दिल के रूप में कभी नहीं बल्कि बहुधा इंग्लैंड की मेधा के रूप में और हमेशा उसके खजाने के रूप में कार्य किया!

टिप्पणी

1.4.2 लुईस वर्थ : नगरीय

समाजशास्त्र के शिकागो स्कूल के एक प्रमुख शिक्षक के रूप में वर्थ ने नगरीय जीवन (कोई अल्पसंख्यक समूह नहीं), आचरण (आचार–व्यवहार) और जनसंचार माध्यमों को अपने अध्ययन के विषयों में स्थान दिया और उन्हें प्रमुख शहरी समाजवादियों में से एक माना गया है। सन् 1938 में 'अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियॉलॉजी' में प्रकाशित उनका निबंध 'अर्बैनिज्म ऐज ए वे ऑव लाइफ' शहरी क्षेत्र के सामाजिक सिद्धांत को वर्थ की मुख्य देन है। किसी तारतम्य (अटूट शृंखला) के दो विपरीत सिरों पर समुदाय के दो विशिष्ट प्रकारों का निर्माण करने वाले शहरी और ग्रामीण को ध्यान में रखते हुए इस निबंध में वर्थ ने आदर्श प्रकार के प्रति वेबर के मत का उपयोग किया।

उनका शोध अधिकांशतः इस तथ्य से संबद्ध था कि यहूदी आप्रवासियों ने किस प्रकार शहरी अमेरिका में जीवन और नगरीय जीवन की विशिष्ट सामाजिक रीतियों और कार्यविधियों से सामंजस्य कायम किया। वर्थ अनुप्रयुक्त समाजशास्त्र के समर्थक थे, और उनकी विधा से दी जाने वाली शिक्षा ग्रहण करने तथा समाज की यथार्थ समस्याओं के समाधान में उसका उपयोग करने में विश्वास रखते थे।

वर्थ लिखते हैं कि नगरवाद (शहरीकरण) सामाजिक संगठन का एक स्वरूप है, जो संस्कृति के लिए अहितकर है। नगर का वर्णन उन्होंने एक "प्रधान संबंधों के स्थान पर गौण, सगोत्रता (रक्त–संबंध) के बंधनों की दुर्बलता, परिवार के सामाजिक महत्व के ह्रास, अड़ोस–पड़ोस के लोप और समाज की एकजुटता के पारंपरिक आधार की दुर्बलता के रूप में किया है।" वर्थ को परिवार की एकता पर नगर के प्रभावों को लेकर चिंता थी, और उनका मानना था कि शहरीकरण के कारण 'जनन की दरों में गिरावट आती है ... न्यून और घटती दरें ... परिवार अपेक्षाकृत छोटे होते हैं और देश की तुलना में अधिकांश परिवारों में बच्चे नहीं होते'। वर्थ के अनुसार, लोग विवाह की उपेक्षा करते या करना नहीं चाहते हैं और अविवाहित लोगों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही है, जिससे वे एकाकी रहते हैं तथा उनमें आपसी बातचीत का अभाव देखा जाता है।

किंतु, वर्थ शहरी जीवन के सकारात्मक प्रभावों की वकालत भी करते हैं : ''हमारी सभ्यता में हम जिस विशिष्ट आधुनिक की बात करते हैं उसकी शुरुआत के लक्षण महान नगरों के विकास में देखे जा सकते हैं''; ''महानगरीय सभ्यता निर्विवाद रूप से सर्वोत्तम सभ्यता है जिसका विकास मानवजाति ने किया है''; ''नगर सर्वत्र स्वतंत्रता व सहिष्णुता का केंद्र रहा है, प्रगति का, आविष्कार का, विज्ञान का, विवेक का केंद्र रहा है'' अथवा : ''सभ्यता के इतिहास का लेखन नगरों के इतिहास के संदर्भ में किया जा सकता है''।

अमेरिका में एक यहूदी आप्रवासी के रूप में वर्थ को अल्पसंख्यक समूहों की जो प्रचुर सामाजिक जानकारी मिली उसका उपयोग समान रूप से समाज के अन्य अल्पसंख्यक समूहों के लिए किया जा सकता है, जैसे नृजातीय अल्पसंख्यकों, असक्तों, समलैंगिकों, महिलाओं और वृद्धों के समूह, जिनमें से सभी लोग किसी पोषक समाज

के लोगों के पक्षपात, भेदभाव और मताधिकार से वंचन का शिकार रहे और/या अभी भी हैं। इसी संदर्भ में वर्थ का पथप्रवर्तक और सूक्ष्म सिद्धांत उनके मूल अन्वेषणों सत्तर वर्षों के बाद आज भी विस्तृत अध्ययन में सहायता करता है।

टिप्पणी

सन् 1964 में प्रकाशित वर्थ पुस्तक 'ऑन सिटीज एंड सोशल लाइफ' उनके लेखन का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें एक विस्तृत संदर्भग्रंथ सूची शामिल है।

1.4.3 रेडफील्ड : सांस्कृतिक संरचना के रूप में गांव और शहर का तारतम्य

इस अखंड पैमाने का एक सिरा गांव है : दूसरा नगर है। इन दोनों सामाजिक विन्यासों के बीच पारस्परिक क्रिया अनवरत चलती रहती है।

यही कारण है कि ग्रामीणों पर नगर के जीवन का प्रचुर प्रभाव दिखाई देता है और गांवों के कुछ खास सांस्कृतिक विशेषताओं का नगरों में विकास होता है। यह तारतम्य यह भी दिखाता है कि विकास गांव से शहर में होता है। इस क्रम में अंततः गांव शहरों (कसबों) और नगरों का रूप ले लेते हैं।

समाजशास्त्र के शोधों–अध्ययनों में यह माना गया कि शहरी और ग्रामीण समाजों में एक स्पष्ट अंतर था। आगे चलकर कई समाजशास्त्रियों ने यह संकेत देना शुरू किया कि जनसंख्या का महज एक ग्रामीण–शहरी वर्गीकरण पर्याप्त नहीं है। बीतते समय के साथ यह स्पष्ट हो गया है कि यह वर्गीकरण या विभाजन अपर्याप्त और अति एकांगी भी है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की अपनी–अपनी श्रेणियां हैं।

लोक, ग्रामीण और शहरी तारतम्य के सिद्धांत के विकास में रॉबर्ट रेडफील्ड की देन महत्वपूर्ण है। उन्होंने छोटे गांवों से बड़े नगरों तक एक शृंखला की रचना की है। अधिक शहरी का अर्थ यह है कि जनसंख्या अपेक्षाकृत अधिक धर्मनिरपेक्ष (सांस्कारिक) है, अपेक्षाकृत अधिक व्यक्तिवादी है और जहां श्रम का बड़े पैमाने पर विभाजन होता है।

ग्रामीण–शहरी तारतम्य की अवधारणा की व्याख्या लोक, ग्रामीण एवं शहरी संगठन में निरंतरता के रूप में सरल तरीके से की जा सकती है। शहरीकरण की धुआंधार प्रक्रिया, ग्रामीण क्षेत्रों में (शहरी केंद्रों के निकट) तकनीकी दृष्टि से विकसित नए उद्योगों का ग्रामीण जीवन पर पर्याप्त असर पड़ा है।

आधुनिक उद्योगों की विशेषताओं के विस्तार के फलस्वरूप दोनों के बीच अंतरों में यथेष्ट कमी आई है, जो दिखाई नहीं देती। इस प्रकार, गांव और शहर की अगोचर सांस्कृतिक सीमाओं के कारण एक विभेदक रेखा खींचना कठिन हो चला है। ऐसे में, उपांतीय क्षेत्रों में दोनों समाजों की सांस्कृतिक विशेषताओं का समामेलन और अविच्छिन्नता दिखाई देते हैं।

भारत में, बीते तीन दशकों के दौरान परिवहन व सड़क यातायात के विकास के फलस्वरूप दूरवर्ती आदिवासी क्षेत्रों, गांवों और शहरों (शहरी केंद्रों) के बीच बहुत कम समय में तेजी से संपर्क कायम हुआ है। नए व्यवसायों और शिक्षा की आधुनिक संस्थाओं ने ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को आकर्षित किया है।

इस प्रकार गांव से शहर को पलायन होने लगा है। फलतः आदिवासी क्षेत्रों, गांवों और नगरों के बीच दूरी कम हुई है। दूरस्थ आदिवासी क्षेत्रों में शहरीकरण (नगरवाद),

आदिवासी और ग्रामीण संस्कृति की विशेषताएं दिखाई देती हैं। आदिवासी–ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों को पलायन के चलते, नगरों में इन सांस्कृतिक विशेषताओं का मिश्रण और समामेलन देखे जा सकते हैं।

टिप्पणी

ग्रामीण और शहरी समाजों को दोनों के बीच अंतरों के मद्देनजर नहीं देखा जाना चाहिए। वे एक दूसरे से पूरी तरह से विपरीत नहीं हैं। वे एक ही शृंखला की कड़ी हैं। ग्रामीण और शहरी समाज के अंतर को लेकर भारत में 60 और 70 के दशकों में यथेष्ट साहित्य का प्रकाशन हुआ। ग्रामीण शहरी अंतर पर तर्क–वितर्क सन् 1938 में प्रकाशित लुई वर्थ की पुस्तक 'अरबैनिज्म ऐज ए वे ऑफ लाइफ' से शुरू हुए।

इस प्रकार ग्रामीण–शहरी तारतम्य के विश्लेषण से दो महत्वपूर्ण विषय सामने आते हैं :

(क) ग्रामीण समाज और शहरी समाज के बीच परंपरागत विभाजन पर एक मतभेद है।

(ख) ग्रामीण व शहरी समुदाय के बीच अंतर एक स्थिति की सीमा का विषय है।

तारतम्य (Continuum) विमर्श

1. ग्रामीण और शहरी दोनों अवधारणाओं की वांछित व्याख्या नहीं की गई है। वे प्रचलित, चिर–परिचित अवधारणाएं हैं, किंतु उनकी व्याख्या अस्पष्ट है। पश्चिमी विचार खास तौर पर भारत की यथार्थता से मेल नहीं खाते। यदि ग्रामीण और शहरी समाज के बीच परंपरागत भेद को लेकर लोग फिर भी ऐसा सोचते हैं, तो फिर यह या तो पश्चिम के प्रति कोई पूर्वाग्रह है या फिर भारतीय समाज पर पश्चिमी सिद्धांत का थोपा जाना। गांव अथवा शहर की सार्वभौम व्याख्या का अभाव है।

(क) कभी कभी जनसंख्या को किसी गांव से किसी नगर के तादात्मय के आधार के रूप में देखा जाता है। किंतु अलग–अलग देशों में यह मापदंड अलग–अलग होता है।

अमेरिका 2500 लोगों के किसी क्षेत्र विशेष को शहरी मानता है, फ्रांस और जापान में यह संख्या क्रमशः 2000 और 30,000 तय की गई है, जबकि भारत में 5000 से कम आबादी वाला कोई नगर निगम क्षेत्र शहरी नहीं हो सकता। किंतु, हमें ऐसे कई गांव मिल जाते हैं, जहां की आबादी 25000 से अधिक है। वहीं पूर्वोत्तर भारत में ऐसे कुछ रेलवे शहर भी हैं, जहां की आबादी 5000 से कम है। अति विशाल गांवों और छोटे कसबों या शहरों के बीच अंतर को समझना कठिन हो जाता है।

(ख) कभी कभी जीवन प्रणाली अथवा पद्धति को किसी शहरी क्षेत्र, जैसे परिवहन, यातायात, बिजली, अट्टालिकाओं आदि के निर्धारण का आधार माना जाता है। किंतु दूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों में अट्टालिकाओं के मद्देनजर यह मापदंड सही नहीं है और इन क्षेत्रों के जीवन को शहरी जीवन नहीं कहा जा सकता। वहीं, शहरी क्षेत्रों में सुख–साधनों से वंचित फूस के घरों को ग्रामीण जीवनशैली से जोड़कर नहीं देखा जा सकता।

(ग) दोनों के बीच कोई सुस्पष्ट सीमांकन नहीं है। यह समझना बहुत कठिन हो जाता है कि कोई शहरी क्षेत्र कहां शुरू और कोई गामीण क्षेत्र कहां समाप्त होता है।

इसलिए, इन दोनों के बीच संबंध विभाजन की बजाय विलय का अधिक दिखाई देता है।

टिप्पणी

दोनों के बीच ये कुछ आम विषेशताएं हैं। ग्रामीण जीवन की विषेशताएं शहरी क्षेत्रों में भी देखी जाती हैं, जैसे संयुक्त परिवार, अड़ोस–पड़ोस (प्रतिवेश), जाति, मंदिरों में पूजापाठ। इसी प्रकार शहरी जीवन की विशेषताएं भी ग्रामीण क्षेत्रों में दिखाई देती हैं।

2. भारत में शहरीकरण की गति बहुत धीमी है। जहां औद्योगिकीकरण के बिना शहरीकरण की स्थितियां हैं, वहां लोगों पर ग्रामीण विशेषताओं का प्रभाव कायम है। कोलकाता नगर के अपने शोध में राम कृष्ण मुखर्जी ग्रामीण–शहरी विभाजन या तीन पहलुओं के संदर्भ में तारतम्य की पुष्टि करते हैं।

(1) शहरी क्षेत्रों को प्रवासन (पलायन)

(2) परिवार संयोजन का स्वरूप और

(3) जाति संयोजन

मुखर्जी ने देखा कि प्रवासन (पलायन) का स्वरूप तारतम्य से अधिक विभाजन को आसान बनाता है। किंतु, प्रवासन के कारण होने वाले विभाजन की क्षमता परिवार और जाति संयोजन के लक्षणों के मद्देनजर क्षीण है। शहरी परिवार अनिवार्य रूप से एकल नहीं है और आगे उन्होंने देखा कि जाति संयोजन और कार्यकलाप मात्रात्मक दृष्टि से नगरों, कसबों और ग्रामों के समान ही हैं। अपनी पुस्तक ''पॉलिटिक्स ऑव अनटचेबिलिटी'' में ओ. एम. लिंच ने एक शोध किया है। उन्होंने देखा कि गांवों की तरह आगरा शहर में भी जाति पंचायत थी, जिसमें तारतम्य की विशेषताएं थीं।

3. ग्रामीण समुदाय और शहरी समुदाय दोनों में परिवर्तन होते रहते हैं, जिसका कारण ग्रामीण समुदाय और शहरी समुदाय के बीच का ठोस अंतर निरंतर लुप्त होता जाना है। गांवों के आधुनिकीकरण के प्रभाववश अनेकानेक परिवर्तन हुए हैं।

एक की आंतरिक विशेषताओं का दूसरे में परस्पर प्रवेश होता रहा है। इसलिए ग्रामीण और शहरी समाज के बीच अंतर कम होते गए हैं।

ग्रामीण–शहरी तारतम्य नीचे के रेखाचित्र में प्रस्तुत किया जा सकता है :

↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓
दूरवर्ती गांव Remote Village	अल्प विकसित गांव (Under Developed Village)	विकसित गांव (Developed Village)	सीमांत (Fringe)	शहर (Towns)	नगर (Cities)	महानगर (Metropolis)

चरम बिंदु दूरवर्ती गांव और महानगरों को दर्शाते हैं। ग्रामीण–शहरी आवासों में तारतम्य के दो भाग होते हैं। क्रमिक परिवर्तन और दूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों से महानगरों में विलय दोनों के बीच सघन विलय को सरल बनाते हुए इसे अगली उच्चतर अवस्था के और करीब ले जाते हैं।

4. शहरी सीमांत क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र होता है जो ग्रामीण और शहरी समुदायों के बीच मजबूत कड़ी का काम करता है। शहरी सीमांत क्षेत्र कालांतर में एक शहर का रूप ले लेता है।

5. शहरों (शहरी केंद्रों) में नाई, धोबी, सुनार, मोची, भंगी आदि जैसे उद्यमियों के परंपरागत उद्यमों के अनुसरण से परिवेश के अनुकूल होने के साथ–साथ तारतम्य

टिप्पणी

कायम होता है। यह स्थिति शहरी दीर्घकालिक रोजगार के अभाव में रोजगार सुनिश्चित कराने के एक स्रोत के रूप में कार्य करती है।

शहरी क्षेत्र में मंदिरों (पूजा स्थलों) का निर्माण होता है और ग्रामीण पूजापाठ और आनुष्ठानिक क्रियाओं का पालन करते तथा ग्रामीण और शहरी समुदायों को एक दूसरे के करीब लाते हुए उनका रखरखाव किया जाता है। इसी प्रकार, धार्मिक नगरों और तीर्थस्थलों में ग्रामीण विन्यास और संस्थाओं का तारतम्य देखा जाता है।

6. शहरी क्षेत्रों में रह रहे लोग स्थानीय परिवारों से नियमित संपर्क (ग्रामीण क्षेत्रों में संबंध) बनाए रखते हैं। सेवा से निवृत्त होने अथवा शहरी रोजगारों से छंटनी के बाद लोग अपने पैतृक गांव लौट आते हैं। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण क्षेत्रों में रहने की सुदीर्घ परंपरा और समाज में एक दूसरे के साथ घुल–मिलकर रहने (समाजीकरण) की प्रक्रिया उन्हें बोलने और खाने–पीने के अभ्यासों, शैलियों और तौर–तरीकों को जारी रखने को प्रेरित करती है।

7. नगरों में अंतर्वैयक्तिक तंत्र मूल स्थान की सहयोजिता (Commensality) के आधार पर स्थापित होता है, जिससे नगर में गांव की अवधारणा को बल मिलता है।

8. इसके अतिरिक्त ग्रामीण और शहरी क्षेत्र परस्पर निर्भर होते हैं। विश्लेषण में विभाजन की बजाय दोनों के बीच कड़ी पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

(क) शहर पर निर्भर गांव (शहरी पर निर्भर ग्रामीण)

(ख) गांव पर निर्भर शहर (ग्रामीण पर निर्भर षहरी)

(क) शहर पर निर्भर गांव (शहरी पर निर्भर ग्रामीण) :

(1) किरॉसन, दिया सलाई, दमकल और खाद आदि जैसी उपभोज्य वस्तुएं खरीदने के लिए व्यवसाय केंद्रों के रूप में शहरी क्षेत्र।

(2) शहरी क्षेत्र मनोरंजन और शिक्षा के केंद्र होते हैं।

(3) उद्योग की स्थापना के लिए गांव की जमीन के अधिग्रहण की स्थिति में क्षतिपूर्ति, पुनर्वास औ रोजगार के अवसर। आवास की मांग से गांव को आर्थिक बढ़ावा मिलता है।

(ख) गांव पर निर्भर शहर (ग्रामीण पर निर्भर शहरी)

(1) शाक–सब्जियों और कृषि उत्पादों के लिए।

(2) उद्योग गन्ना, पटसन, गेहूं, कपास आदि जैसे कच्चे माल पर निर्भर करते हैं।

(3) मजदूरों, कुशल राजमिस्त्रियों आदि के लिए

(4) जाति आधारित व्यवसाय जैसे धोबी, सफाईकर्मी, नाई और सुनार आदि के कार्य।

इस प्रकार शहरों और गांवों ने सभ्यता के विकास की प्रक्रिया में महती भूमिका निभाई– इस क्रम में दोनों के बीच संरचनात्मक तारतम्य और सांगठनिक अंतर बने रहे। फिर इसका तात्पर्य शहरीकरण के सकारात्मक प्रभावों को अमान्य करना नहीं है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. यह किसने लिखा है कि– "नगरवाद (शहरीकरण) सामाजिक संगठन का एक स्वरूप, जो संस्कृति के लिए अहितकर है।"

   (क) वर्थ ने (ख) वेबर ने

   (ग) दुर्खीम ने (घ) सिमेल ने

6. 'अरबैनिज्म ऐज ए वे ऑफ लाइफ' पुस्तक के लेखक कौन हैं?

   (क) रामकृष्ण मुखर्जी (ख) रेडफील्ड

   (ग) पार्क (घ) वर्थ

1.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (क)
3. (ग)
4. (ख)
5. (क)
6. (घ)

1.6 सारांश

समाज में व्याप्त असमानताओं पर आधारित समाज की व्यवस्था, श्रम, जिसमें कई अलग–अलग लोगों की अलग–अलग व्यवसायों में विशेषज्ञता होती है, के जटिल विभाजन, शहर के निवासियों को मिली अधिक स्वतंत्रता और विकल्प के फलस्वरूप स्वीकृत अवैयक्तिकता, दुराव, असहमति और संघर्ष के बावजूद परंपरागत सामाजिक तानाबाना कमजोर हुआ किंतु, इससे रेचक के रूप में परस्पर निर्भरता पर आधारित सामाजिक एकजुटता के एक नए रूप, अपेक्षाकृत अधिक उन्नत समाज के लोगों की एक दूसरे पर निर्भरता पर आधारित समाज के तानेबाने का निर्माण हुआ। श्रम के बढ़ते विभाजन के चलते यह तथ्य औद्योगिक प्रतिष्ठानों में आम तौर पर देखा जाता है। हालाँकि लोग अलग–अलग कार्य करते हैं और अक्सर उनके अलग–अलग मूल्य व स्वार्थ होते हैं, किंतु समाज की व्यवस्था और अस्तित्व उनके निर्दिष्ट कार्य को पूरा करने में उनके एक–दूसरे पर भरोसे पर निर्भर करता है।

एमिल दुर्खीम का मानना है कि आधुनिकीकरण या शहरीकरण की प्रक्रिया में कुछ खो जाता है, किंतु उससे कहीं ज्यादा कुछ प्राप्त होता है। उनके इस विचार का तात्पर्य यह है कि शहरीकरण से यांत्रिक एकजुटता और समुदाय या सामूहिक समरसता की भावना का ह्रास होता है, किंतु दुर्खीम आगे कहते हैं कि आधुनिकीकरण या शहरीकरण एक नए प्रकार के बंधन को जन्म देता है, जिसे उन्होंने जैविक (अवयिक / कर्मणा) एकजुटता की संज्ञा दी। विशेषज्ञता और परस्पर निर्भरता का यह

टिप्पणी

नया रूप, जिसके फलस्वरूप आर्थिक गतिविधियों और उत्पादन के आधुनिक रूपों वाले औद्योगिक शहरों या शहरी केंद्रों की संवृद्धि होती है, क्योंकि रीति–रिवाजों और मानदंडों पर बल में कमी आती है। इस प्रकार उनके अनुसार आधुनिक समाज में बहुत–सी सकारात्मक बातें दिखाई देती हैं। किंतु, यदि दुर्खीम की धारणा पर गौर करें, तो इस धारणा को आधुनिकीकरण के फलस्वरूप खोए और पाए के दो वर्गों में विभाजित कर देखा जाना चाहिए। परंपरागत समाज से आधुनिकता में प्रवेश के दौरान बहुत कुछ खो गया था। इस प्रकार दुर्खीम की कुछ खो जाने की धारणा बहुत हद तक उचित है, क्योंकि आधुनिकता के कारण गतिविधियों और कार्यों, शांति, अपनेपन (संबंध) में मानकों, मूल्यों, नियमों, समरूपता आदि का ह्रास हुआ है, जबकि संघर्ष, रोगों, दुराव, दफ्तररशाही, जनजातीय संघटन, जातिवाद और उपनिवेशवाद जैसी नकारात्मक स्थितियों ने समाज में आधुनिकीकरण से हुए जीवन स्तर में सुधार, संचार की बेहतर व्यवस्था और परस्पर निर्भरता जैसी लाभ की स्थितियों को लील–सा लिया है। प्रस्तुत निबंध में दुर्खीम के दृष्टिकोण के औचित्य पर औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के रूप में आधुनिकीकरण के आलोक में विचार किया जाएगा।

शहरी समाजशास्त्र के विकास का श्रेय रॉबर्ट ई पार्क, लुई विर्थ, अर्नेस्ट डब्ल्यू बर्जेस और आर डी मैकेंजी को जाता है, जिन्हें शिकागो स्कूल कहा जाता है, जिन्होंने शिकागो विश्वविद्यालय में इस विषय का अध्यापन शुरू किया। हालांकि शहर या नगर पर अध्ययन समाज विज्ञान की विधाओं में शिक्षा के विषय के रूप में शिकागो स्कूल के लेखन के आधार पर शुरू हुआ, किंतु कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर और दुर्खीम जैसे सामाजिक चिंतकों की सैद्धांतिक संकल्पनाएं नगरों अथवा शहरों पर केंद्रित थीं। तथापि इसका पहला विभाग सन् 1892 में संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में शुरू किया गया। इस विभाग के अध्यक्ष अलिबयॉन थे। डब्ल्यू. स्मॉल और चार्ल्स आर. हेंडरसन, डब्ल्यू. आई. टॉमस और जॉर्ज ई. विंसेंट जैसे विद्वान इस विभाग के सदस्य थे। सन् 1920 के आरंभ में समाजशास्त्रियों ने नगरों के विकास और संरचना व मानव स्वभाव तथा उनके संस्थाओं से संबद्ध सैद्धांतिक मतों के दिशा निर्देशों के अनुरूप शिकागो में शहरी जीवन के तथ्यों के संग्रह का श्रमसाध्य कार्य शुरू किया।

शिकागो विश्वविद्यालय में शोधों–अध्ययनों का आरंभ नगर की सामाजिक समस्याओं के प्रति एक चिंता को लेकर हुआ। नगरीय प्रतिवेश की सामाजिक समस्याओं के वर्णन के स्पष्ट उप–उत्पादों में से एक संसाधन प्रबंधन की क्षमता थी, सेवाओं को उस दिशा में ले जाने और केंद्रित करने की क्षमता, जहां समस्याएं अत्यधिक हों। कुछ पारिस्थितिक क्षेत्रों में अपराध और आत्महत्या जैसी समाज की विकृतियां जब–तब देखने में आती रहती हैं। इस प्रकार, पारिस्थितिक सिद्धांत पथांतरण और नियंत्रण के अपेक्षाकृत अधिक विशिष्ट सिद्धांतों का आधार प्रदान करते हैं।

1.7 मुख्य शब्दावली

- **जनक** : पिता, उत्पादक।
- **तात्पर्य** : आशय, मतलब।
- **तानाबाना** : लंबाई और चौड़ाई के बल बुने जाने वाले तागे।
- **अस्तित्व** : वजूद।

टिप्पणी

- **सकारात्मक** : सहमतिसूचक, निश्चित मानवाला।
- **विकल्प** : विभिन्नता, उपाय।
- **घनिष्ठता** : गहरी दोस्ती।
- **परस्पर** : आपसी, एक–दूसरे के साथ।
- **प्रत्यक्ष** : जो आंखों के सामने हो।

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. शहरी समाजशास्त्र का जनक किसे माना जाता है?
2. यांत्रिक एकजुटता क्या है?
3. गेमाइनशाफ्ट संबंधों के कितने प्रकार होते हैं?
4. स्थानिक स्वरूप से आप क्या समझते हैं?
5. महानगर, नगर, गांव व शहर का तारतम्य क्या है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिकीकरण या शहरीकरण की प्रक्रिया के बारे में एमिल दुर्खीम का क्या कहना है?
2. शहरीकरण से उत्पन्न समस्याओं के बारे में कार्ल मार्क्स के क्या विचार हैं?
3. मैक्स वेबर के नगरवाद की समीक्षा कीजिए।
4. शहरी समुदाय और स्थानिक आयाम के संदर्भ में पार्क, बर्जेस एवं मैकेंजी के क्या मत हैं?
5. लोक ग्रामीण और शहरी तारतम्य के सिद्धांत के विकास में रॉबर्ट रेडफील्ड की क्या देन है?

1.9 सहायक पाठ्य सामग्री

DeFilipps, James, *Unmarking Goliath: Community Control in the Face of Global Capital.* New York, NY: Routledge, 2003.

King, Anthony D., *Global Cities: Post-imperialism and the Internationalization of London.* New York, NY: Routledge, 1991.

Gans, Herbert J., *Urban Villagers: Group and Class in the Life of Italian-Americans.* New York, NY: The Free Press, 1982.

Gans, Herbert, *The Levittowners.* New York, NY: Columbia University Press, 1982.

Levitt, Peggy, *The Transnational Villagers.* Berkeley, CA: University of California Press, 2001.

Mollenkopf, John Hull, *The Contested City.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 1983.

टिप्पणी

Burgess, Ernest W., and Robert E. Park, *The City.* Chicago, IL: University of Chicago Press, 1984.

Sassen, Saskia, *The Global City: New York, London, Tokyo.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 2001.

Sugrue, Thomas J., *The Origins of the Urban Crisis: Race and Inequality in Postwar Detroit.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 2005.

Castells, Manuel, *The Castells Reader on Cities and Social Theory.* Edited by Ida Susser. Malden, MA: Blackwell Publishing Limited, 2002.

Wellman, Barry, *Networks in the Global Village: Life in Contemporary Communities.* Boulder, CO: Westview Press, 1999.

Whyte, William Foote, *Street Corner Society: The Social Sructure of an Italian Slum.* Chicago, IL: University of Chicago Press, 1993.

इकाई 2 भारत का नगरीय समाजशास्त्र

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 भारत में नगरीय समाजशास्त्र का उदय और विकास
2.3 भारत में शहरीकरण के उभरते रुझान
2.4 शहरी विकास के संघटक
2.5 शहरीकरण के सामाजिक आयाम
2.6 समाज पर शहरीकरण के प्रभाव
2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

भारत में शहरीकरण कोई नया विषय नहीं है। भारत में शहरीकरण की एक अति समृद्ध परंपरागत प्रक्रिया रही है, जिसकी जड़ें बहुत पहले सिंधु घाटी की सभ्यता (2500 ई. पू.) में देखी जा सकती हैं। शहरी विकास में कुछ सांसारिक और स्थानिक व्यतिरेक के बावजूद शहरीकरण की प्रक्रिया का देश के अन्य भागों में प्रसार हुआ। भारत में शहरीकरण का प्रसार प्राचीन, मध्य और आधुनिक युगों में अनेकानेक कारकों के प्रभाववश हुआ। हालांकि इस प्रकार भारत में शहरीकरण और शहर के प्रसार का एक लंबा इतिहास रहा, किंतु भारत में शहरीकरण के विषय पर कोई सुव्यवस्थित अध्ययन 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में ही शुरू हुआ – एक ऐसे समय में जब संयुक्त राज्य अमेरिका और पश्चिम के अन्य देशों में समाजशास्त्र की एक विशिष्ट शाखा के रूप में शहरी (नगरीय) समाजशास्त्र को मान्यता दी जाने लगी थी।

प्रस्तुत इकाई में भारत के नगरीय समाजशास्त्र की विधिवत विवेचना की गई है तथा शहरीकरण के संघटकों, कारकों व सामाजिक आयामों का अध्ययन किया गया है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारत में नगरीय समाजशास्त्र को समझ पाएंगे;
- भारत में शहरीकरण के उभरते रुझानों के बारे में जान पाएंगे;
- शहरी विकास के संघटकों का अवलोकन कर पाएंगे;
- शहरीकरण के सामाजिक आयामों का विश्लेषण कर पाएंगे;
- समाज पर पड़ने वाले शहरीकरण के प्रभावों की व्याख्या कर पाएंगे।

टिप्पणी

2.2 भारत में नगरीय समाजशास्त्र का उदय और विकास

भारत में शहरी (नगरीय) समाजशास्त्र के उदय और विकास की गति अपेक्षाकृत धीमी थी। इसके कई कारण थे। यदि हम भारत के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के भूभाग की भौगोलिक विशेषता पर ध्यान दें, तो हम देख सकते हैं कि भारत की आबादी का अधिकांश हिस्सा तथाकथित ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है। उन क्षेत्रों की आबादी, जिनका वर्गीकरण शहरी के रूप में किया जाता है, 30 प्रतिशत से कम है (2001 की जनगणना)। यह उन मुख्य कारकों में से एक है, जो भारत में शहरी विषय के अध्ययन के लिए एक वैज्ञानिक विधा के विकास के मार्ग में बाधक रहे। किंतु, बहुसंख्य का यह मानदंड शहर के संदर्भ में लोगों के सांस्थानिक और सांगठनिक आचरण में महत्वपूर्ण विविधताओं को मिटा नहीं सकता (राव, 1991)। प्रसिद्ध समाजशास्त्री राव का मानना है कि भारतीय समाज की व्यापक सैद्धांतिक समस्याओं के संदर्भ में शहरी सामाजिक संरचना और संगठन का अध्ययन प्रासंगिक है।

वर्तमान में शहरी क्षेत्र बहुविषयक शोध के अधीन है, जिसमें समाजशास्त्र के अतिरिक्त अर्थशास्त्र, भूगोल, इतिहास, राजनीति विज्ञान और जनसांख्यिकी विज्ञान आते हैं। राव के अनुसार, नगरवाद और शहरीकरण के किसी समाजशास्त्रीय अध्ययन का एक अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष स्रोत शहरी सामाजिक जीवन के और शहरी आबादी के वर्गों के प्रवासन (पलायन), जाति प्रथा, उपजीविकाजन्य खंड विन्यास, परिवार संयोजन, राजनीति और धर्म आदि से जुड़े समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रासंगिक पक्षों के अध्ययन से आता है। भारत में समाजशास्त्र की विधा की एक विशिष्ट शाखा के रूप में शहरी समाजशास्त्र के उदय और विकास, और स्थिति की जांच शहरी सामाजिक विन्यास पर उन शोध–अध्ययनों की परख कर किया जा सकता है, जिन्होंने इस विधा के विकास में योगदान दिया। समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रासंगिक सभी शहरी शोधों–अध्ययनों को इस इकाई में शामिल करना संभव नहीं है, इसलिए हम अपनी चर्चाओं को कुछ चुनिंदा क्षेत्रों तक सीमित रखेंगे, जो शहरी समाजशास्त्र में आते हैं।

भारत में शहरी समाजशास्त्र का अध्ययन

भारत में शहरी सामाजिक जीवन के पक्षों पर शहरों और नगरों के पर्याप्त अध्ययन नहीं हुए हैं। भारत में शहरी समाजशास्त्र का विकास समाजशास्त्र की एक शाखा के रूप में हुआ, जो स्वयं तुलनात्मक दृष्टि से समाज विज्ञान की एक नई विधा है। एक प्रख्यात नगर योजनाकार और समाजशास्त्री प्रोफेसर पैट्रिक गेड्डेस ने सन् 1920 में बंबई विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के पहले विभाग की स्थापना उस समय की जब शिकागो विश्वविद्यालय के प्रयासों से नगरों और शहरी जीवन के प्रति शोधों–अध्ययनों पर अत्यधिक ध्यान दिया जाने लगा था। पैट्रिक गेड्डेस के अनुसार, नगर सभ्यता की ठोस छवि होते हैं। भारत में उन्होंने शहरी विषय पर कुछ शोधों का संचालन शुरू किया। गेड्डेस देश के रीति–रिवाजों को फिर से जीवित कर भारत में आधुनिक शहर योजना में उनका उपयोग करना चाहते थे। उनका मानना था कि सामाजिक प्रक्रियाएं और स्थानिक स्वरूप एक दूसरे से जुड़े हैं और इसलिए स्थानिक स्वरूप में परिवर्तन लाकर

टिप्पणी

समाज की संरचना में भी परिवर्तन लाना संभव है। विभिन्न संस्थाओं और सरकारी अभिकरणों के आग्रह पर गेड्डेस ने सन् 1914 से 1924 के बीच भारत में लगभग बयालीस प्रतिवेदन लिखे, जो टाउन प्लैनिंग टुवर्ड्स सिटी डिवेलपमेंट पुस्तक में शामिल हैं। इनमें न केवल भारत के शहरी केंद्रों को सुरक्षित रखने और उनका पुनरुद्धार करने के नए विचार प्रस्तुत किये गए हैं बल्कि ये बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों के भारत के नगरों की स्थिति का एक महत्वपूर्ण पुरालेख भी हैं (मेलर, हेलेन, 1990)।

हालांकि पैट्रिक गेड्डेस ने भारत में शहरी क्षेत्रों पर शोध शुरू किए, पर इस विषय को अध्ययन के एक क्षेत्र के रूप स्थापित होने में कुछ और दशक लग गए। एम. एस. ए. राव के अनुसार इस उपेक्षा का कारण समाजशास्त्रियों का यह विचार हो सकता है कि इसके शहरीकरण के निम्न स्तर के कारण ग्रामीण और शहरी समाजशास्त्र में यह अंतर अर्थपूर्ण नहीं है, और इस अवगम के कारण भी कि परंपरागत नगर और गांव में कोई भेद नहीं था क्योंकि दोनों एक ही सभ्यता के अंग थे।

भारतीय समाज विज्ञान शोध परिषद् द्वारा संचालित तीन प्रवृत्ति प्रतिवेदनों (डी'सूजा 1974, 1985; कोसांबी 1994) में भारत में सन् 1950 से शहरी क्षेत्रों के अध्ययनों के साहित्य की समीक्षा की गई है। इससे भारत में शहरी सामाजिक विन्यास पर किये गए कार्य की एक ठोस धारणा प्राप्त होती है। इन प्रतिवेदनों में समाजशास्त्र का सर्वेक्षण करने के ध्येय से शहरी समाजशास्त्र के क्षेत्र को यह समझने के लिए कई विषय क्षेत्रों में बांटा गया है कि प्रत्येक क्षेत्र में कितने शोध हुए हैं। ये क्षेत्र हैं शहरीकरण, नगर और क्षेत्र, शहरी कार्यकलाप, शहर की आंतरिक संरचना, उभरती शहरी प्रणालियां, शहरी सामाजिक संयोजन, शहरी समुदाय का विकास, शहरी सामाजिक समस्याएं और शहर योजना।

भारत में शहरीकरण और नगरवाद ने सन् 1950 के दशक से यदाकदा विद्वानों का ध्यान खींचा। डी'सूजा (1974) मानते हैं कि समाज विज्ञानियों ने सन् 1951 की जनगणना रिपोर्ट के बाद शहरी क्षेत्रों के अध्ययन में रुचि लेना शुरू किया, जिसके अनुसार भारत की शहरी आबादी में भारी वृद्धि हुई थी। इन विद्वानों में मैक्स वेबर, आरनॉल्ड टॉयनबी, मिल्टन सिंगर, रॉबर्ट रेडफील्ड, जी. एस. घुर्ये, राधाकमल मुखर्जी, डी. एन. मजुमदार और गिडियन जोबर्ग कुछ मुख्य हैं, जिन्होंने भारत में शहरी क्षेत्र को अपने अध्ययन का विषय बनाया। बंबई विश्वविद्यालय में पैट्रिक गेड्डेस के परवर्ती प्रॉफेसर जी. एस. घुर्ये ने भारत में शहरी स्थिति के अध्ययन में गहरी रुचि ली। उन्होंने शहरीकरण के तुलनात्मक और ऐतिहासिक पहलुओं पर कार्य और ग्रामीण–शहरी संबंधों पर शोध किया। उन्होंने सभ्यता के संदर्भ में प्राचीन और मध्य युगीन नगरों के पारिस्थितिकीय, राजनीतिक व सांस्कृतिक पक्षों पर ध्यान केंद्रित किया। यह तथ्य सन् 1953 में प्रकाशित उनके आलेख सिटीज ऑव इंडिया में दिखाई देता है। मैक्स वेबर (1962) ने नगरों का एक तुलनात्मक ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है, जिसमें उन्होंने भारतीय नगरों के संदर्भ में जाति की संस्था पर विशेष ध्यान दिया है। उनका मानना है कि जाति प्रथा में एक तरफ जहां परंपरागत भारतीय नगरों की मुख्य विशेषताओं की निरंतरता के लक्षण दिखाई देते हैं, वहीं दूसरी तरफ यह नागरिक वर्ग, सामाजिक और कानूनी समानता, मित्रता तथा आधुनिक भारतीय नगरों की स्वायत्तता के विकास में बाधा भी खड़ी करती है।

टिप्पणी

औद्योगिकीकरण को मुख्य कारक मानते हुए जोबर्ग (1964) भारतीय नगरों का प्राक् औद्योगिक और औद्योगिक के रूप में वर्गीकरण करते हैं। किंतु राव (1974) का मत है कि भारत में शहरीकरण की प्रक्रिया जटिल है और यह कि किसी एक कारक के आधार पर भारत के नगरों का वर्गीकरण नितांत एकतरफा होगा, हालांकि वह मानते हैं कि ब्रिटिश उपनिवेशवाद भारत में शहरीकरण के इतिहास में एक निर्दिष्ट सीमा है। टॉयनबी राजधानी नगरों के स्थान और स्थान–परिवर्तन का अध्ययन करते हैं। रेडफील्ड और सिंगर ने भारत के नगरों में महान परंपरा के संयोजन और भारतीय नगरों की सांस्कृतिक भूमिका के संदर्भ में उनके पावन भूगोल व कार्यकलापों का अध्ययन किया।

प्रोफेसर राधाकमल मुखर्जी ने लखनऊ विश्वविद्यालय में भारत के नगरों के सामाजिक–पारिस्थितिक अध्यापन की शुरुआत की। समाजशास्त्रियों के अतिरिक्त, भूगोलविदों ने भी शहरों और नगरों के सामाजिक–पारिस्थितिक शोधों–अध्ययनों में योगदान दिया है। संभव है कि समाजशास्त्रियों के लिए पारिस्थितिक अध्ययनों का अधिक महत्व न हो, पर ये पारिस्थितिक विषय की सामाजिक प्रक्रियाओं और निहितार्थों दोनों के अनुवर्ती अनुशीलन की एक महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री हैं (राव 1991)।

वर्ष 1971 की जनगणना में शहरी आबादी में एक उच्च वृद्धि दर दर्ज की गई, और इसने भी नगरों और संबद्ध मुद्दों के अध्ययन के प्रति विद्वानों का ध्यान खींचा, जिसके फलस्वरूप भारत में शहरी समाजशास्त्र का तेजी से विकास होने लगा (डी'सूजा 1974)। गांवों से शहरों को प्रवासन की समस्याएं, शहरों के विकास और जनसांख्यिकी विज्ञान, प्रतिवेश, मलिन बस्तियों (झुग्गियों), स्तर–विन्यास, शिक्षा, जातीय संघर्ष और आंदोलनों, रक्त–संबंध (सगोत्रता), धर्म, राजनीति, अर्थव्यवस्था, सामाजिक समस्याओं और ग्रामीण क्षेत्रों पर शहरीकरण के प्रभाव ने कई समाजशास्त्रियों और समाज मानवविज्ञानियों का ध्यान खींचा (राव 1982)। इस प्रकार, 1970 के दशक में भारतीय नगरवाद पर कुछ अच्छे शोध हुए (घोष (1973), डिमॉक एवं इंदेन (1970), हैंबली (1968), किंग (1978), सबरवाल (1978)। शहरों और नगरों में शहरीकरण से संबद्ध सामाजिक समस्याओं पर अनेकानेक महत्वपूर्ण शोध हुए हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं और शहरी समजाशास्त्रियों ने शहरी संदर्भ की देहव्यापार, भिक्षावृत्ति, किशोर अपराधवृत्ति और मलिन बस्तियों (झुग्गियों) जैसी समस्याओं पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से संबद्ध अध्ययन किये। इस अवधि के दौरान मलिन बस्तियों (झुग्गियों) पर कई उल्लेखनीय शोध किये गए (देसाई एवं पिल्लई, 1970, 1972, वीब, 1975, डी'सूजा 1978, 1979)। शहरी मुद्दों को समर्पित जर्नलों के विशेषांकों के एक सम्मेलन की कार्यवाहियों के रूप में शहरी विषयों पर शोध प्रबंधों के कई संपादित खंडों का प्रकाशन किया गया (संधू, 2003)। जनगणना रिपोर्टों और राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षणों के आधार पर शहरों और नगरों के जनसांख्यिकीय शोध किये गए हैं। शहरी जनसांख्यिकी के विश्लेषण में किंग्सले डेविस, आशीष बोस, सोवानी और अन्य विद्वानों का योगदान उल्लेखनीय है। ये शोध–अध्ययन हमारे देश में शहरीकरण के महत्व और विस्तार को समझने में हमारी सहायता करते हैं। डी'सूजा का मानना है कि 1950, 60 और 70 के दशकों की अवधियों के दौरान संचालित अधिकांश शोध–अध्ययन शहरी विषय के प्रति बहुत हद तक अनुभवाश्रित साधारणीकरण हैं, जिनमें से अधिकांश में वैज्ञानिक पद्धति का घोर अभाव है (डी'सूजा, 1985)।

टिप्पणी

वर्ष 1980 के दशक के दौरान और उसके बाद शहरी विषयों को शोधों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, हालांकि शोध में कुछ खास क्षेत्रों (जैसे शहरीकरण के प्रतिमान और रुझान, पलायन से संबद्ध शोध, शहरी क्षेत्रों में सामाजिक समस्याएं और सरोकार) पर अधिक ध्यान दिया गया, जबकि अन्य क्षेत्रों (नगरों का महानगरीकरण, क्षेत्रीय योजना, स्थानिक संरचना) पर पर्याप्त शोध नहीं हुआ। वर्ष 1980 के दशक में मलिन बस्तियों (झुग्गियों) और अवैध बस्तियों की समस्याओं पर (मिश्र एवं गुप्ता 1981, राव एवं राव 1984, झा 1986, कालदाते, 1989, संधू 1989) और 1990 के दशक के दौरान (राव, आर. एन., 1990, दास 1993, देसाई 1995, डे विट 1996, पुरेवल 2000, लोबो एवं दास 2001) अनेकानेक अध्ययनों का संचालन किया गया। वर्ष 1980 और 1990 के दशकों में सरकार ने शहरी विषयक शोधों के संचालन के कुछ और प्रयास किए। राष्ट्रीय शहरीकरण आयोग ने पांच खंडों के अपने प्रतिवेदन का प्रकाशन किया। इसमें जमीनी, उप–राज्य और राज्य स्तर पर शहरीकरण की समस्या को सामने रखा गया है। संयुक्त राष्ट्र मानव अधिवासन (UN's Center for Human Settlement / (यूएनसीएचएस) केंद्र द्वारा वर्ष 1996 में आवास पर आयोजित इस्ताम्बुल सम्मेलन (इस्ताम्बुल कॉन्फेरेंस ऑन हैबिटैट) के एक परिणाम के रूप में भारतीय नगरों की स्थिति पर एक राष्ट्रीय प्रतिवेदन तैयार करने के ध्येय से भारत सरकार ने नगरों के शोधों को बढ़ावा दिया। इसके अतिरिक्त यूएनसीएचएस के दिशानिर्देशों और सुझावों के अनुरूप भारत सरकार द्वारा स्थानीय नगरीय वेधशालाओं के एक अंग के रूप में स्थापित राष्ट्रीय नगरीय वेधशाला नगर स्तर पर नगर से संबद्ध आंकड़ा कोषों के प्रोन्नयन की एक योजना बनाई जा रही है। संधू (2002) का मानना है कि इन सभी प्रयासों से भारत में शहर विषयक शोध–अध्ययनों के लिए एक अनुकूल परिवेश का निर्माण होगा।

सन् 1920 से अब तक शहर से संबद्ध विषयों पर हुए शोधों की समीक्षा करते हुए भारत में शहरी समाजशास्त्र के विकास पर विमर्श किया गया था। भारत में शहर विषयक शोध नगर और नगरीय जीवन के विकास के विभिन्न पहलुओं पर केंद्रित थे। इन अलग–अलग परिप्रेक्ष्यों के आधार पर आईए हम शहर और शहरीकरण से संबद्ध शोधों–अध्ययनों का एक विस्तृत वर्गीकरण करें और इनमें से प्रत्येक में कुछ शोधों–अध्ययनों पर विचार करें।

अपनी प्रगति जांचिए

1. यह किसका मानना है कि भारतीय समाज की व्यापक सैद्धांतिक समस्याओं के संदर्भ में शहरी सामाजिक संरचना और संगठन का अध्ययन प्रासंगिक है?

   (क) राव का (ख) दुर्खीम का

   (ग) मार्क्स का (घ) वेबर का

2. प्रोफेसर राधाकमल मुखर्जी ने किस विश्वविद्यालय में भारत के नगरों के सामाजिक–पारिस्थितिक अध्यापन की शुरुआत की?

   (क) दिल्ली (ख) लखनऊ

   (ग) मेरठ (घ) कानपुर

टिप्पणी

2.3 भारत में शहरीकरण के उभरते रुझान

हाल में, शहरीकरण के प्रति नीति निर्धारकों के विचार में एक परिवर्तन आया है। ग्यारहवीं पंच वर्षीय योजना में कहा गया कि शहरीकरण को समग्र विकास में एक सकारात्मक कारक के रूप में देखा जाना चाहिए क्योंकि सकल घरेलू उत्पाद में शहरी क्षेत्र का लगभग 62 प्रतिशत योगदान है। एक विचार यह भी उभरकर सामने आ रहा है कि सकल घरेलू उत्पाद में 9 से 10 प्रतिशत वृद्धि का एक महत्वाकांक्षी लक्ष्य मूलतः एक स्पंदनशील शहरी क्षेत्र पर निर्भर करता है (योजना आयोग 2008)। क्योंकि देश बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) तैयार करने जा रहा है, इसलिए शहरी संक्रमण को एक मुख्य चुनौती माना जा रहा है, जिसके लिए शहरी आधारभूत संरचना और सेवाओं के एक व्यापक विस्तार की जरूरत है। इस पृष्ठपट के मद्देनजर, देश में शहरीकरण के स्तरों और गति के गुरुत्व, संवृद्धि और अंतरराज्यीय अंतर की हमारी समझ के संवर्धन में 2011 की जनगणना के परिणामों का अत्यंत महत्व है।

जनसांख्यिकी दृष्टि से कहें, तो शहरीकरण का मूल्यांकन शहरी क्षेत्रों में रह रहे लोगों के प्रतिशत के आधार पर किया जाता है। शहरीकरण की प्रक्रिया की एक बेहतर समझ के लिए, यह देखना उचित होगा कि भारत की जनगणना में किन बस्तियों को शहरी माना गया है। शहरी की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है; अलग–अलग देशों में इसकी परिभाषा अलग–अलग होती है (संयुक्त राष्ट्र, 2009)। भारत के शहरी क्षेत्रों की व्याख्या दो मानदंडों के आधार पर की जाती है। पहला, राज्य सरकार किसी बस्ती को पौर का दर्जा (municipal status) देती है – निगम, नगर परिषद्, अधिसूचित शहर क्षेत्र समिति या नगर पंचायत आदि। शहरी क्षेत्रों की जनगणना की व्याख्या में इन बस्तियों को वैधानिक अथवा पौर शहर (municipal town) कहा जाता है। दूसरा, यदि किसी बस्ती का कोई शहरी पौर का दर्जा नहीं हो, किंतु वह 5000 से अधिक आबादी, 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर की सघनता और गैर–कृषि क्षेत्र में 75 प्रतिशत पुरुष कामगार जैसे जनसांख्यिकीय और आर्थिक मानदंडों को पूरा करती हो, तो उसे शहरी कहा जा सकता है।

इन शहरी क्षेत्रों को जनगणना शहर कहा जाता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शहरी की भारत की व्याख्या का आधार अति विस्तृत है और इसमें कई अन्य विकासशील देशों के विपरीत विकास के स्तरों पर गहराई से विचार किया जाता है। उदाहरण के लिए, दक्षिण एशिया में नेपाल शहरी क्षेत्रों की व्याख्या केवल जनसंख्या के आकार के आधार पर करता है : 9000 से अधिक की आबादी वाली किसी बस्ती को शहरी की संज्ञा दी जाती है। दूसरी ओर, बांग्लादेश, श्री लंका और पाकिस्तान जैसे देश किसी बस्ती को शहरी का दर्जा देने के लिए केवल पौर की स्थिति के मानदंड का उपयोग करते हैं (संयुक्त राष्ट्र, 2009)।

प्रत्येक जनगणना में, शहरी की ऊपर वर्णित व्याख्या के अनुरूप ग्रामीण–शहरी ढांचा तैयार किया जाता है। कई नए शहर जोड़े जाते हैं और मानदंडों को पूरा नहीं करन पाने वाले कुछ मौजूदा शहरों को वापस ग्रामीण का दर्जा दे दिया जाता है। इस प्रकार भारत में प्रयुक्त ग्रामीण–शहरी वर्गीकरण एक सशक्त प्रक्रिया है, हालांकि इस व्याख्या की कुछ सीमाएं हैं (भगत 2005)।

टिप्पणी

भारत के महापंजीयक और जनगणना आयुक्त कार्यालय ने वर्ष 2011 के लिए 368 मिलियन शहरी आबादी का अनुमान लगाया, और आकलन किया कि शहरी आबादी की वृद्धि दर वर्ष 1991–2001 के सालाना 2.75 प्रतिशत तथा वर्ष 2001–2011 के 2.23 प्रतिशत से नीचे आ जाएगी (महापंजीयक एवं जनगणना आयुक्त, 2006)। शहरी विशेषज्ञ भी मानते हैं कि भारत के असमावेशी स्वरूप और गांव से शहर को प्रवासन को बढ़ावा देने में इसकी अक्षमता के कारण यहां शहरीकरण की गति धीमी होगी (कुंडू 2007, 2011)। किंतु, 2011 की जनगणना में कुछ अप्रत्याशित परिणाम सामने आए हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, शहरी आबादी में 377 मिलियन की वृद्धि हुई जिससे ज्ञात होता है कि वर्ष 2001 से 2011 के दौरान वृद्धि दर सालाना 2.76 प्रतिशत रही।

देश में शहरीकरण के स्तर में कुल मिलाकर वर्ष 2001 में 27.7 से 2011 में 31. 1 प्रतिशत की वृद्धि हुई – वर्ष 1991 से 2001 के दौरान हुई 2.1 प्रतिशत वृद्धि की तुलना में 2001 से 2011 के दौरान 3.3 प्रतिशत। यहां देखा जा सकता है कि वर्ष 1990 के दशक के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में सालाना लगभग 6 प्रतिशत की और 2000 के पहले दशक के दौरान लगभग 8 प्रतिशत की वृद्धि हुई (अहलूवालिया 2001)। इससे वर्ष 2001 से 2011 के दौरान कुल आबादी के लगभग 18 प्रतिशत के शहरीकरण को तेजी से पूरा करने में आर्थिक विकास की शक्ति स्पष्टतः दिखाई देती है।

वर्ष 1951 से 61 के दौरान शहरी आबादी की औसत वृद्धि दर 2.32 प्रतिशत थी, जो वर्ष 1971 से 81 के दौरान बढ़कर 3.79 प्रतिशत हो गई। यह आजादी के बाद से शहरी आबादी की उच्चतम वृद्धि थी। वर्ष 1981 के बाद, वर्ष 1981 से 91 के दौरान शहरी वृद्धि दर घटकर 3.09 हो गई और फिर 1991 से 2001 के दौरान इसमें और कमी आई और यह 2.75 प्रतिशत रह गई। किंतु, 2001 से 2011 के दौरान घटती वृद्धि दर में किंचित तेजी आई। यहां यह ध्यान देना उचित है कि केवल शहरी आबादी में वृद्धि से ही शहरीकरण में तेजी नहीं आ सकती। यदि शहरीकरण होना है, तो शहरी आबादी की वृद्धि दर ग्रामीण आबादी की वृद्धि दर से अधिक होनी चाहिए। इस प्रकार, शहरीकरण की प्रक्रिया के लिए शहरी–ग्रामीण आबादी की वृद्धि में अंतर महत्वपूर्ण है। सारणी 2 से पता चलता है कि वर्ष 1991 से 2001 के दौरान शहरी–ग्रामीण अंतर प्रति वर्ष 1 प्रतिशत था, जो 2001 से 2011 के दौरान बढ़कर प्रति वर्ष 1.61 प्रतिशत हो गया। सारणी 2 से यह भी स्पष्ट है कि वर्ष 2001 से 2011 के दशक के दौरान ग्रामीण आबादी की वृद्धि दर में उसके पूर्व के दशकों की तुलना में तेजी से गिरावट आई है। ध्यातव्य है कि शहरी और ग्रामीण आबादी में अंतर ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के बीच वास्तविक वृद्धि (जन्म–मृत्यु) का परिणाम है, शुद्ध ग्रामीण–शहरी वर्गीकरण और गांव से शहर का शुद्ध प्रवासन (पलायन)।

वर्ष 1991–2000 से 2001–2011 के दौरान शहरी–ग्रामीण वृद्धि के वास्तविक अंतर लगभग स्थिर रहे। इसलिए, शुद्ध ग्रामीण–शहरी वर्गीकरण और गांव से शहर को प्रवासन (पलायन) के फलस्वरूप वर्ष 2001 से 2011 के दौरान शहरी–ग्रामीण वृद्धि के उच्च अंतर और शहरीकरण में तेजी आई।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. किस पंच वर्षीय योजना में कहा गया कि शहरीकरण को समग्र विकास में एक सकारात्मक कारक के रूप में देखा जाना चाहिए?

(क) सातवीं (ख) आठवीं

(ग) दसवीं (घ) ग्यारहवीं

4. सकल घरेलू उत्पाद में शहरी क्षेत्र का लगभग कितना योगदान है?

(क) 52 प्रतिशत (ख) 70 प्रतिशत

(ग) 62 प्रतिशत (घ) 40 प्रतिशत

2.4 शहरी विकास के संघटक

स्वाभाविक वृद्धि, ग्रामीण–शहरी का शुद्ध वर्गीकरण और गांव से शहर को प्रवासन (पलायन) शहरी आबादी की वृद्धि के संघटक हैं। शहरी आबादी की वृद्धि के बदलते पहलुओं को समझने के लिए उनके सापेक्ष योगदानों का मूल्यांकन बहुत जरूरी है। वर्ष 1991 से 2001 में प्रवासन की दर 42 प्रतिशत से बढ़कर 2001 से 2011 के दौरान 56 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2011 की जनगणना से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर अभी दोनों कारकों को अलग नहीं किया जा सकता, किंतु इससे यह अवश्य ज्ञात होता है कि वर्ष 2011 में नए शहरों की संख्या में भारी वृद्धि हुई। संपूर्ण देश के स्तर पर 2001 की जनगणना की तुलना में वर्ष 2011 में शहरों की संख्या 5,161 से बढ़कर 7,935 हो गई – 2774 नए शहर (2,532 जनगणना शहर और 242 सांविधिक शहर)। वर्ष 2001 से 2011 की जनगणनाओं के बीच परिभाषा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, इसलिए इसके फलस्वरूप शहरीकरण की गति में उल्लेखनीय तेजी आई, इसके बावजूद कि कई महानगरों में उनकी वृद्धि दरों में भारी गिरावट आई (कुंडू, 2011)। दूसरी तरफ, स्वाभाविक वृद्धियों के फलस्वरूप शहरी आबादी की वृद्धि में वर्ष 1981 से 1991 के दौरान 62 प्रतिशत की चरम वृद्धि घटकर वर्ष 2001 से 2011 के दौरान 44 प्रतिशत रह गई। फिर भी स्वाभाविक वृद्धि के फलस्वरूप वर्ष 2001 से 2011 के दौरान शहरी क्षेत्रों की आबादी में 40 मिलियन की भारी वृद्धि हुई। भारत के शहरीकरण के अध्ययन में, स्वाभाविक वृद्धियों के योगदान पर उतना ध्यान नहीं दिया गया, जितना कि गांव से शहर को प्रवासन (पलायन) पर। इससे एक मान्यता आम हो चली है कि शहरी आबादी में वृद्धि केवल प्रवासन (पलायन) के चलते हो रही है।

पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल समेत कई राज्यों में राष्ट्रीय औसत से अधिक शहरीकरण है, किंतु राज्यों के बीच गोआ जैसे छोटे राज्य सूची के शीर्ष पर कायम हैं (62 प्रतिशत शहरी), उसके बाद मणिपुर का स्थान आता है (51.5 प्रतिशत)। बड़े राज्यों में, तमिलनाडु अन्य राज्यों से आगे है, जहां वर्ष 2011 में शहरीकरण का स्तर 48.4 प्रतिशत था। पिछड़े राज्यों में हिमाचल प्रदेश 10 प्रतिशत शहरीकरण के साथ सबसे नीचे है, उससे ऊपर बिहार (11.3 प्रतिशत), असम (14 प्रतिशत) और ओडिशा (16.6 प्रतिशत) आता है। अन्य राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश,

टिप्पणी

राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और झारखंड के शहरीकरण का स्तर राष्ट्रीय औसत से कम है। हालांकि राष्ट्रीय स्तर पर शहरी आबादी की वृद्धि दर में कमी के रुझान में परिवर्तन आया है, जो 2011 की जनगणना में सामने आई एक मुख्य विशेषता है, किंतु केवल 15 राज्य और संघशासित प्रदेश ऐसे हैं, जहां वर्ष 1991 से 2001 की तुलना में 2001 से 2011 के दौरान शहरी आबादी की वृद्धि दर में वृद्धि दर्ज की गई। इनमें केरल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, पश्चिम बंगाल, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड प्रमुख हैं। वर्ष 1991 से 2001 के दौरान शहरी आबादी की सालाना महज 1 प्रतिशत वृद्धि दर की तुलना में 2001 से 2011 के दौरान केरल में सालाना 6.5 प्रतिशत और आंध्र प्रदेश में सालाना 3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार गांव से शहर को प्रवासन (पलायन) के परिणामस्वरूप केरल और आंध्र प्रदेश दोनों में, और पश्चिम बंगाल तथा गुजरात में भी, भारी संख्या में शहरों का उदय हुआ है।

निष्कर्ष

वर्ष 1980 और 1990 के दशकों के दौरान राष्ट्रीय स्तर पर शहरी आबादी की वृद्धि दर में आई गिरावट के रुझान में कालांतर में बदलाव आया और वर्ष 2001 से 2011 के दौरान शहरीकरण में तेजी आई। वर्ष 2001 की 286 मिलियन की शहरी आबादी वर्ष 2011 में बढ़कर 377 मिलियन हो गई – 91 मिलियन की बढ़ोतरी, जो आजादी के बाद पहली बार ग्रामीण आबादी की 90.5 मिलियन वृद्धि से अधिक है। शहरी आबादी में एक यथेष्ट वृद्धि शुद्ध ग्रामीण–शहरी वर्गीकरण और गांव से शहर को प्रवासन (पलायन) के चलते हुई है।

पिछले दशक के दौरान भारी संख्या में नए शहरों का उदय हुआ, जिससे शहरीकरण की गति में उल्लेखनीय तेजी आई। दूसरी तरफ, हालांकि अनुपातों के मद्देनजर शहरों की संख्या में स्वाभाविक वृद्धि का योगदान कम हुआ है, किंतु शहरी आबादी के विशाल आधार के कारण संपूर्ण संख्या (लगभग 40 मिलियन) में इसका भारी अंश अभी भी बना हुआ है। इसके निहितार्थ न केवल शहरी आधारभूत संरचना और शहरी सुख–सुविधाएं मुहैया कराने को लेकर बल्कि शहरी क्षेत्रों में जनन और शिशु स्वास्थ्य सेवाओं को लेकर भी हैं।

शहरीकरण के कारक

नगर विकास और शहरीकरण के पांच मुख्य निर्धारक कारक हैं। एक ओर जहां इतिहास के अलग–अलग कालों में शहरी विस्तार पर इनमें से प्रत्येक के अपने–अपने प्रभाव रहे, वहीं दूसरी ओर लगभग अठारहवीं शताब्दी के मध्य शुरू होने वाले काल में ये सभी कारक तीव्र हो गए। एक अर्थ में, इन कारकों में तेजी से आए परिवर्तनों के कारण जिस समाज का उदय हुआ, उसे आम तौर पर औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न आधुनिक समाज कहा जाता है। एक प्रमुख कारक के रूप में कृषि क्रांति ने शहरीकरण की प्रक्रिया का मार्ग प्रशस्त किया। नगरों के उदय और विकास के लिए, कृषि अधिशेष का विकास एक पहली आवश्यकता था। अतिरिक्त उत्पादन के फलस्वरूप जमीन से श्रमशक्ति का एक विशिष्ट अनुपात बना और विभिन्न उद्यमों को अपनाने के रास्ते खुले। खाद्यान्न उत्पादन की विवशता से लोगों को आजादी

टिप्पणी

मिली जिसके फलस्वरूप नगरों में लोगों का संकेंद्रण हुआ और आबादी के इस वर्ग को शहरी जीवन में खेती से इतर कार्य अपनाने की छूट मिली। वहीं, खेती में तकनीकी के उपयोग से खेती के उत्पादन में वृद्धि हुई। खेती से इतर कार्य करने वालों की सहायता करने वाले कृषि कामगारों के अनुपात में गिरावट आई और खेती में रसायनशास्त्र तथा आनुवंशिकी विज्ञान के उपयोग के फलस्वरूप प्रति कामगार उत्पाद में भी कमी आई। सन् 1787 से 1937 के बीच के एक सौ पचास वर्षों में, खेती और नगर के संतुलन में बहुत परिवर्तन हुए। सन् 1787 में एक नगर की सहायता के लिए खेती के नौ उत्पाद की आवश्यकता थी, किंतु 1937 तक आते आते एक किसान परिवार सात शहरी परिवारों को खाना खिला रहा था। इस प्रकार विज्ञान और तकनीकी के विकास, और खेती के मोर्चे पर यंत्रीकरण की प्रक्रिया के उपयोग के फलस्वरूप इस अनुपात में और कमी आई, जिससे और भी बहुत से लोग अन्न उपजाने की विवशता से मुक्त हो गए। आबादी का यह मुक्त तबका, कालांतर में उन प्रवासी मजदूरों के लिए प्रभावशाली भंडार बना, जो औद्योगिक क्रांति के दौरान कारखानों में काम करने हेतु आए थे।

शहरीकरण के पीछे दूसरा प्रमुखक कारक प्रौद्योगिकी क्रांति है। भाप के इंजन के आविष्कार, बृहत उत्पादन (पुंज उत्पादन) तकनीकों के विकास और कारखाना तंत्र के उदय से किसी सघन आबाद परिवेश में लोगों का संकुलन (जमाव) होने लगा। उद्योग और परिवहन के लिए ऊर्जा के स्रोत के रूप में भाप का उपयोग एक ऐसा विकास था, जिसने उन्नीसवीं शताब्दी में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। भाप ने न केवल मनुष्य के निर्वाह के संभावित साधनों में और तदनंतर उसकी संख्या में वृद्धि की बल्कि परोक्ष रूप से मिट्टी की जोताई से छुटकार दिलाते हुए यह पलायन कर नगर आए लोगों का एक अपरिहार्य बल बन गई और नगर की आंतरिक संरचना तथा आर्थिक संयोजन के निर्धारण में इसने एक अहम भूमिका निभाई और देखते–देखते उसका केंद्र बन गई। इस विकास के पहले, नगर के लिए कच्चे माल का व्यवस्थापन और आपूर्ति कठिन थी। इस प्रकार भाप की केंद्राभिमुख शक्ति ने विशाल, सघन और तेजी से बढ़ते शहरी केंद्रों के निर्माण में एक महती भूमिका निभाई। नगर को अपने लोगों के लिए आजीविका के एक माध्यम या साधन की जरूरत होती है, जो आजीविका के रूप में जमीन के बिना भी रह सकें और जहां तक हो कृषि का एक अधिशेष उन्हें अवसर दे। इस तथ्य के कारण कि विशेष परिवेशों में स्थितियां विशिष्ट होती हैं, बृहत उत्पादन विशिष्ट हो सकते हैं। भारी संख्या में लोगों की सहायता के लिए कारखाने की शक्ति न केवल अन्न पर बल्कि किसी अति विविधतापूर्ण औद्योगिक तंत्र पर भी निर्भर करती है। किसी एक उत्पाद का भारी मात्रा में उत्पादन करने वाला कोई नगर अपने कामगारों की सहायता तब तक नहीं कर सकता, जब तक कि सामग्री के विनिमय से अन्य नगरों के उत्पादों का आयात न किया जाए। इस प्रकार उत्पादन में मानवेतर ऊर्जा का उपयोग – आरंभ में पानी और हवा की प्राकृतिक शक्तियों से, फिर भाप से और तदनंतर खनिज ईंधनों अथवा उनसे प्राप्त बिजली से, और आगे चलकर परमाणु ऊर्जा से चालित मशीन का उदय – उन्नत उत्पादकता में एक महत्वपूर्ण कारक सिद्ध हुआ। इस प्रकार भाप की केंद्राभिमुख शक्ति ने अंततः विशाल शहरी क्षेत्रों में उत्पादन, प्रबंधकीय और थोक वितरण की गतिविधियों तथा आबादी के संकेंद्रण का मार्ग प्रशस्त किया।

टिप्पणी

शहरीकरण में वृद्धि का अगला कारक वाणिज्यिक क्रांति है। विश्व बाजारों, विनिमय प्रणालियों और परिवहन एवं यातायात के उन्नत साधनों के विकास के चलते नगरों को उन परिवेशों में विकास करने का अवसर मिला, जो अन्यथा उनके उदय को रोक सकते थे। जिन क्षेत्रों में उच्च स्तर पर विशेषीकरण की आवश्यकता होती है, वहां स्थित नगर व्यापार एवं परिवहन के परिणाम के रूप में संभव हैं, और वस्तुतः वांछित कृषि अधिशेष हेतु किसी नगर के लिए उसके अपने निकटतम भीतरी क्षेत्र पर बहुत अधिक निर्भर करना अब आवश्यक अथवा असामान्य नहीं है। वस्तुतः यह एक ऐसी स्थिति है, जिसमें नगरों का पोषण सुदूरवर्ती क्षेत्रों के कृषि उत्पादों, विश्व के अधिकांश भागों में व्याप्त परस्पर संबद्ध व्यापार तंत्र से किया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से, व्यापार के विस्तार से प्रेरित नगर का विकास यथार्थतः औद्योगिकीकरण के प्रभावों के पहले शुरू हुआ। संचार प्रौद्योगिकी में क्रांति के साथ–साथ वाणिज्यिक क्रांति ने भौतिक दूरी को कम और विश्व को संकुचित कर दिया, जिससे अंततः विश्व परस्पर निर्भर हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि विश्व के एक हिस्से में होने वाले विकास का प्रभाव अन्य भागों पर अनिवार्य रूप से पड़ा और इस प्रकार समस्त विश्व में फैल गया। फलतः स्थानीय परिस्थितियों पर नगरों की निर्भरता कम हुई और वे वैश्विक स्थितियों पर ज्यादा से ज्यादा निर्भर करने लगे।

शहरीकरण के विकास का अगला कारक परिवहन की क्षमता का विकास था। नगर व्यापार के केंद्र होते हैं, इसलिए परिवहन तंत्र फलते–फूलते शहरों की जीवन रेखा होता है। रेल मार्ग और फिर मोटर गाड़ियों जैसे परिवहन के दूर–दराज तक आने–जाने वाले साधनों में हुई प्रगति का शहर के विकास पर भारी प्रभाव पड़ा। परिवहन की उन्नत क्षमता के फलस्वरूप माल और लोगों की नगर में और नगर के बाहर, एक स्थान से दूसरे स्थान की आवाजाही कम खर्च पर सरल हुई। इस प्रकार परिवहन की सुविधा के विकास ने आज के महानगरों के विकास का मार्ग खोल दिया। मोटर और हवाई जहाज जैसे वाहनों से संपन्न परिवहन की सुविधा, गति और विशिष्टता और प्रौद्योगिकी के नए उपकरणों ने संभवतः मानव समुदाय और राष्ट्रीय जीवन की संरचना में पर्याप्त सुधार किए। मोटर उद्योग में नई ऊर्जा के रूप में बिजली के आगमन के फलस्वरूप शहरीकरण की प्रक्रिया में और तेजी आई। बिजली के उपयोग से नगरों के विकास पर एक केंद्रापसारी प्रभाव पड़ा, इस प्रकार महानगरों और शहर के व्यापारिक क्षेत्रों के उदय का मार्ग खुल गया।

जनसांख्यिकीय क्रांति पांचवां कारक है, जो कृषि, वाणिज्य, उद्योग और परिवहन के क्षेत्र में हुए विकासों का परिणाम है। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में हुए विकासों के फलस्वरूप शहरी, औद्योगिक समाज का जन्म हुआ। चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में हुई खोजों ने नानाविध रोगों और बीमारियों के उपचार मुहैया कराते हुए लोगों के स्वास्थ्य में सुधार के मार्ग खोल दिए। फलतः मृत्यु दर में तेजी से कमी आई। किंतु जन्म दर में उतनी तेजी से गिरावट नहीं आई और इसका एक परिणाम उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में पश्चिमी समाज में आबादी में अपार वृद्धि के रूप में सामने आया। ऐसे में भारी संख्या में लोगों ने औपनिवेशिक कृषि क्षेत्रों अथवा नगरों की शरण ली। इस प्रकार जनसांख्यिकीय विकास का एक बढ़ती श्रमशक्ति और उपभोक्ता बाजारों के लिए नगरों की आवश्यकताओं में अहम योगदान रहा।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. नगर विकास और शहरीकरण के कितने मुख्य निर्धारक कारक हैं?

(क) पांच (ख) चार

(ग) तीन (घ) दो

6. किस क्षेत्र में हुए विकासों के फलस्वरूप शहरी, औद्योगिक समाज का जन्म हुआ?

(क) गृह विज्ञान के (ख) चिकित्सा विज्ञान के

(ग) राजनीति विज्ञान के (घ) ज्ञान–विज्ञान के

2.5 शहरीकरण के सामाजिक आयाम

नगरों और शहरीकरण के संबद्ध गुणों पर व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य केंद्रों के भीतर एक बुनियादी विमर्श : नगर समाज के लिए किस प्रकार और किस सीमा तक उपयोगी (व्यावहारिक) हैं, और नगर समाज के लिए किस प्रकार व किस सीमा तक असुविधाजनक और हानिकर (दुष्क्रियाशील) भी हैं? सरल शब्दों में कहें, नगर अच्छे हैं या बुरे?

निचोड़ रूप में, इस प्रश्न का कोई एक उत्तर नहीं है, क्योंकि नगर इतने जटिल हैं कि उनका कोई सरल उत्तर नहीं हो सकता। नगर अच्छे और बुरे दोनों हैं, किंतु वे अपराध, तटस्थता (भावशून्यता) और अन्य समस्याओं के स्थल भी होते हैं।

समाजशास्त्रियों ने शहरीकरण का अध्ययन विषय के आरंभिक वर्षों में शुरू किया, इसलिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह रहा है कि नगर अपने लोगों के लिए किस सीमा तक तटस्थ और भावशून्य होते हैं। सन् 1887 में, जर्मन समाजशास्त्री फर्डिनैंड टोनीज (1887–1963) ने यह प्रश्न उठाया जब उन्होंने समाज के छोटे, ग्रामीण और परंपरागत संस्कृतियों से बृहत्तर, शहरी और औद्योगिक विन्यास का रूप लेने पर हुए परिवर्तनों पर लिखा। उन्होंने कहा कि समुदाय की एक भावना, या गेमाइनशैफ्ट, परंपरागत समाजों का चित्रण करती है। इन समाजों में, परिवार, वंश (कुटुंब) और समुदाय बंधन अत्यंत मजबूत होते हैं, जहां लोग एक दूसरे का ध्यान रखते हैं और एक दूसरे को लेकर सावधान रहते हैं। उन्होंने लिखा कि समाज का जैसे–जैसे विकास और औद्योगिकीकरण होता गया तथा लोग नगरों का रुख करने लगे, वैसे–वैसे सामाजिक बंधन कमजोर और समाज उत्तरोत्तर भावशून्य होते गए। टोनी ने इस प्रकार के समाज को गेसेलशैफ्ट की संज्ञा दी और वह इस विकास के घोर आलोचक थे। शहरी समाजों में घनिष्ठ सामाजिक बंधनों के टूट जाने और समुदाय की एक ठोस भावना के समाप्त होने को लेकर वह दुखी थे, और इस बात को लेकर चिंतित थे कि इन समाजों में छोटे, ग्रामीण समाजों की स्थिरता और संतुलन की विशेषता की भावना के स्थान पर एकाकीपन की एक भावना जन्म ले लेगी।

समाजशास्त्र के मुख्य प्रणेताओं में से एक, फ्रांसीसी विद्वान एमिल दुर्खीम नगरों और शहरीकृत समाजों के स्वरूप के प्रति टोनी से अधिक सकारात्मक थे। उन्होंने

टिप्पणी

निस्संदेह सामाजिक बंधनों और समुदाय भावना की सराहना की, जिन्हें वह यांत्रिक एकजुटता, छोटे, ग्रामीण समाजों की विशेषता कहते थे। किंतु, उनका यह भी मानना था कि इन समाजों ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता का दम घोंट दिया और यह कि बृहत्तर, शहरी समाजों में सामाजिक बंधन अभी भी कायम हैं। इन उत्तरवर्ती बंधनों को उन्होंने श्रम विभाजन और परस्पर निर्भरता पर आधारित सामाजिक एकजुटता की संज्ञा दी, जो उनके अनुसार श्रम विभाजन से उत्पन्न होती है। उन्होंने लिखा कि श्रम विभाजन होने पर, अपना कार्य पूरा करने के लिए हर किसी को हर किसी पर निर्भर करना पड़ता है। कार्यों की यह परस्पर निर्भरता एक एकजुटता को सघन बनाती है, जिससे यह छोटे, ग्रामीण समाजों में दिखाई देने वाली बंधन और समुदाय की भावना को सख्ती से थामे रखती है (दुर्खीम 1893–1933)।

समकालीन शोधों में इस बात पर बल दिया जाता है कि नगरों में ठोस सामाजिक बंधन होते ही हैं (गेस्ट, कवर, मत्सुएदा एवं कुबरिन, 2006)। हालांकि नगर अनाम हो सकते हैं (किसी विशाल नगर के व्यापारिक क्षेत्र में किसी व्यस्त सड़क पर एक दूसरे के साथ चलते जन समूह पर गौर करें), नगर के अनेकानेक लोग मुहल्लों में रहते हैं जहां लोग एक दूसरे को जानते हैं, उनका एक दूसरे से नाता होता है, और एक दूसरे को लेकर सावधान रहते हैं। इन मुहल्लों में, समुदाय की एक भावना और ठोस सामाजिक बंधन वस्तुतः बने रहते हैं।

सन् 1938 में, शिकागो विश्वविद्यालय के समाजशास्त्री लुई वर्थ ने एक अति प्रभावशाली निबंध 'अर्बैनिज्म ऐज ए वे ऑव लाइफ' लिखा, जिसमें उन्होंने नगरों के प्रति अपने सकारात्मक और नकारात्मक दोनों विचार रखे (वर्थ, 1938)। वह टोनीज की इस बात से सहमत थे कि ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरों में समुदाय की एक कमजोर भावना और दुर्बल सामाजिक बंधन होते हैं। किंतु वह दुर्खीम की इस बात से भी सहमत थे कि नगरों में नई सोचों की अपेक्षाकृत अधिक सृजनात्मकता और बृहत्तर सहिष्णुता होती है। विशेष रूप से, उनका मानना था कि अपरंपरागत अभिवृत्तियों, आचरण और जीवनशैलियों वाले ग्रामीणों की तुलना में शहरी लोग अधिक सहिष्णु होते हैं, अंशतः इसलिए क्योंकि वे इन अपरंपरागत तौर–तरीकों के प्रति ग्रामीणों की तुलना में अधिक खुले होते हैं। वर्थ की परिकल्पना के समर्थन में, समकालीन शोध से पता चलता है कि शहर के लोग वस्तुतः विभिन्न मुद्दों के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सहिष्णु विचार रखते हैं (मूर एवं ओवादिया, 2006)।

द्वंद्व का सिद्धांत

हमने अभी–अभी देखा कि नगरों और शहरी जीवन व इस प्रकार शहरीकरण के लाभों और हानियों को लेकर उपयोगिता के प्रति मिले–जुले विचार हैं। इस अनिश्चितता के विपरीत, द्वंद्व के सिद्धांत के दृष्टिकोण समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। द्वंद्व के सिद्धांत में समाज के 'संपन्न' और 'असंपन्न' वर्गों के बीच, अथवा धन एवं राजनीति की दृष्टि से संपन्न कुलीनों व निर्धनों तथा अश्वेत लोगों के बीच, एक बुनियादी द्वंद्व होता है। द्वंद्व के सिद्धांत के अनुसार, यह द्वंद्व विशेष रूप से देश के नगरों में देखा जाता है, जहां 'संपन्न' और 'असंपन्न' वर्गों के लोगों के जीवन में बहुत अंतर होता है। दूसरी ओर, अमेरिकी नगरों के धनवान लोग शानदार फ्लैटों में रहते हैं और ऊंची कॉर्पोरेट अट्टालिकाओं में काम करते हैं, और वे शानदार रेस्त्राओं में खाना खाते तथा अत्यंत

टिप्पणी

महंगे दुकानों में खरीदारी करते हैं। वहीं, गरीब और अश्वेत लोग टूटे–फूटे घरों में रहते और बड़ी मुश्किल से जीविकोपार्जन कर पाते हैं।

शहरी जीवन की इस बुनियादी असमानता के परे, द्वंद्व के सिद्धांतकारों का मानना है कि नगर के लोगों की विविधतापूर्ण पृष्ठभूमियों और हितों का अक्सर टकराव होता है, क्योंकि लोगों की मान्यताओं और प्रथाओं का अन्य लोगों की मान्यताओं और प्रथाओं से संघर्ष होता है। इस स्थिति के अति आरंभिक शोधकर्ताओं में से एक, समाजशास्त्री थॉस्टेन सेलिन (1938), जो अमेरिका के नगरों में अन्य देशों से भारी संख्या में लोगों के आप्रवासन के दौर में लिख रहे थे, ने कहा था कि अपराध 'संस्कृति संघर्ष' का परिणाम है। खास तौर पर, उन्होंने लिखा कि अपनी सोच के परंपरागत तरीकों और अमेरिकी समाज के नियमों के अनुरूप काम के बीच संघर्ष के कारण आप्रवासी अपराध करते हैं। एक उदाहरण के रूप में, उन्होंने लिखा कि न्यू जर्सी में एक पिता ने, जो सिसिली से आया था, अपनी बेटी के साथ सोने वाले एक किशोर लड़के को मार डाला। पिता को तब आश्चर्य हुआ जब पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया, क्योंकि सिसिली की संस्कृति में किसी व्यक्ति को अपने परिवार की प्रतिष्ठा की रक्षा करने की अनुमति होती है।

शहरीकरण में द्वंद्व के सिद्धांत के हाल के अनुप्रयोगों में राजनीतिक अर्थव्यवस्था, अथवा राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं व प्रक्रियाओं के परस्पर आदान–प्रदान, के महत्व पर बल दिया जाता है। सोच के इस तरीके में, राजनीति और धन की दृष्टि से संपन्न वर्ग के कुलीन (साहूकार और बैंककर्मी, जमीन जायदाद में निवेश करने वाले, राजनेतागण और अन्य) अपने–अपने हितों के संवर्धन के लिए आपस में सहयोग करते हैं। इस प्रकार शहर के विकास के क्रम में शहर के गरीब लोगों को बेघर हो जाना पड़ता है, ताकि धनवानों के अनुरूप सह–शासित क्षेत्र, बैंकों और कॉर्पोरेट की ऊंची अट्टालिकाएं, आलीशान शॉपिंग मॉल और अन्य भवन बनाए जा सकें। आम तौर पर, ये कुलीन लोग नगरों को ऐसा स्थान नहीं मानते जहां आम लोग रहें, स्कूल जाएं, कहीं नौकरी करें और जहां उनके मित्र व परिचित रहें, बल्कि वे इन्हें अपनी संपत्ति और शक्ति के संवर्धन का स्थान मानते हैं। समाजशास्त्री जॉन लोगान और हार्वे मोलोश नगर के उस विचार के चित्रण के लिए 'ग्रोथ मशीन आइडियॉलॉजी' (संवृद्धि यंत्र विचारधारा) का उपयोग करते हैं, जो इन कुलीनों की नीतियों और परिपाटियों का मार्गदर्शन करता है (लोगान एवं मोलोश, 2007)।

प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद (Symbolic Interactionism)

प्रतीकात्मक या संकेतात्मक परस्पर क्रियावाद के समस्त दृष्टिकोण के अनुरूप, नगर के जिन विद्वानों का यह दृष्टिकोण है, वे शहर के लोगों के एक दूसरे के साथ आपसी व्यवहार, उनके व्यवहार के स्वरूपों के कारणों और शहरी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर विशेष ध्यान रखते हैं। अपने सिद्धांतों में उन्होंने शहरी जीवन के कई समृद्ध, विशद विवरण प्रस्तुत किए हैं। इनमें से कई और संभवतः अधिकांश विवरणों का विषय गरीबों और अश्वेत लोगों का जीवन रहा है। स्व. इलियट लीबो के दो अति प्रसिद्ध वृत्तांत हैं। इनमें पहला टैली'ज कॉर्नर (लीबो, 1967) है, जिसमें उन अफ्रीकी अमेरिकी लोगों के जीवन का चित्रण है, जो किसी बड़े नगर की किसी खास सड़क के कोने में 'भीड़ के रूप में' रहते थे। उनका दूसरा वृत्तांत टेल देम हू आई एम : लाइव्स ऑव होमलेस

टिप्पणी

वीमेन' (लीबो, 1993) है, जिसमें उसके शीर्षक के अनुरूप शहरी बेघर महिलाओं के जीवन का चित्रण है। इनके अतिरिक्त विलियम फूट ह्वाइट (1943) का उत्कृष्ट वृत्तांत 'स्ट्रीट कॉर्नर सोसाइटी' है, जिसमें शिकागो, इलीनॉय की एक सड़क पर रह रहे लोगों के नेतृत्व की पड़ताल की गई है।

इन और अन्य वृत्तांतों में नगरों का चित्रण उन स्थानों के रूप में हुआ है, जहां विभिन्न नियम और मूल्य प्रभावी हैं, उन नगरों के दृष्टिकोणों के विपरीत जिनमें उनका चित्रण असभ्य, अराजक स्थानों के रूप में किया जाता है। इन अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक वृत्तांतों के आधार पर, हाल में एलिजाह एंडर्सन ने एक वृत्तांत लिखा है, जिसमें वह जोर देकर कहते हैं कि शहर के ज्यादातर गरीब लोग 'शालीन' (जैसा कि वे स्वयं को मानते हैं) होते हैं, कानून के पाबंद लोग जो अपने मुहल्लों में अपराध और नशीले पदार्थों के उपयोग पर सख्ती से पाबंदी लगाते हैं (एंडरसन, 2000)। वह इस बात पर भी जोर देते हैं कि नगरों में पार्क और अन्य सार्वजनिक स्थल होते हैं, जहां विभिन्न जातियों और सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमियों के लोग रोज एकत्र होते और अलग–अलग ढंग से आपस में व्यवहार करते हैं, जिससे अंतरजातीय समझ के पनपने में सहायता मिलती है। इन स्थलों को एंडर्सन 'सर्वदेशीय मंडप (Cosmopolitan canopies)' की संज्ञा देते हैं, और कहते हैं कि वे ''शहरी जीवन के गहरे तनावों से एक राहत और अलग–अलग क्षेत्रों से आए लोगों का साथ मिलकर रहने का एक अवसर दिलाते हैं...व्यक्तिगत अनुशीलन से, वे यों ही एक दूसरे के अंतरों का मूल्यांकन कर सकते और मानवता की एक भावना से दूसरे से समानुभूति कायम कर सकते हैं'' (एंडर्सन, 2011, पृ. 14–15)। एंडर्सन लिखते हैं कि इस प्रकार विभिन्न जातियों के लोग आंशिक रूप से ही सही उन जातीय तनावों से छुटकारा पा सकते हैं, जिनसे अमेरिका के नगर पीड़ित हैं।

शहरी लोगों (नगर वासियों) के प्रकार

प्रतीकात्मक या संकेतात्मक परस्पर क्रियावाद की परंपरा का एक अन्य कार्य शहर के लोगों की अलग–अलग जीवनशैलियों को समझना है। समाजशास्त्री हर्बर्ट गैन्स (1982) ने शहर के लोगों की अलग–अलग जीवनशैलियों और अनुभवों के आधार पर उनका एक उत्कृष्ट वर्गीकरण किया। गैन्स ने शहर के लोगों के पांच प्रकारों की पहचान की।

पहला प्रकार 'कॉस्मोपोलीट्स' (विश्वनागरिक) है। ये वे लोग हैं, जो किसी नगर में उसकी सांस्कृतिक खूबियों, रेस्त्राओं और ऐसी अन्य विशेषताओं के कारण रहते हैं। विश्वनागरिकों में छात्र, लेखक, संगीतकार और बुद्धिजीवी आते हैं। 'अनमैरीड' (अविवाहित) और 'संतानहीन दंपतियो' का प्रकार दूसरा है; वे किसी ऐसे शहर में रहते हैं, जो उनके कार्यस्थल के निकट हो और ज्यादातर नगरों में मनोरंजन के विभिन्न प्रकारों की सुविधा हो। यदि और जब वे विवाह करते हैं अथवा जब उनके कोई संतान होती है, तब कई लोग अपने परिवारों के पालन–पोषण के लिए उपनगर चले जाते हैं। तीसरा वर्ग 'एथनिक विलेजर्स' (नृजाति ग्रामीण) का है, जो हाल में आए आप्रवासी और विभिन्न नृजाति समूहों के लोग होते हैं और कुछ मुहल्लों में एक दूसरे के बीच रहते हैं। इन मुहल्लों में मजबूत सामाजिक बंधन और समुदाय की एक सुदृढ़ भावना होती है। गैन्स ने लिखा कि नगर इन तीनों वर्गों को आमंत्रित करते प्रतीत होते हैं और उन्हें नकारात्मक से कहीं अधिक सकारात्मक अनुभव होते हैं।

टिप्पणी

इनके विपरीत, शहर के लोगों के अंतिम दो वर्ग ऐसे हैं, जिनका नगर तिरस्कार करते हैं और जिनके जीवन की गुणवत्ता बहुत खराब होती है। इनमें पहला, और कुल मिलाकर चौथा वर्ग 'वंचितों' का वर्ग है। इन लोगों की औपचारिक शिक्षा का स्तर बहुत निम्न कोटि का होता है और ये दरिद्रता में अथवा दरिद्रता जैसी स्थिति में रहते और बेरोजगार होते या फिर छिटपुट रोजगार अथवा कम दिहाड़ी पर काम करते हैं। वे कूड़े–कचरे से भरे मुहल्लों में रहते हैं, जहां घरों की खिड़कियां टूटी होती हैं। इन मुहल्लों में बदहाली के कई अन्य लक्षण भी देखे जा सकते हैं। ये लोग जब–तब अपराध करते और अपराधों के शिकार होते रहते हैं। अंतिम वर्ग 'सीमाबद्ध' लोगों का वर्ग है। ये वे लोग हैं, जो जैसा कि उनके नाम से पता चलता है, संभव है अपने मुहल्लों को छोड़ना चाहते हों पर कई कारणों से ऐसा नहीं कर पाते हों : वे मदिरा अथवा नशीले पदार्थों के व्यसनी हो सकते हैं, वे वृद्ध या निःशक्त हो सकते हैं, या फिर वे बेरोजगार हो सकते हैं और किसी बेहतर क्षेत्र में नहीं जा सकते हैं।

इस वर्गीकरण पर विचार करने में, मन में यह विषय रखना जरूरी है कि शहर के लोगों (नगर वासियों) की सामाजिक पृष्ठभूमियों – उनका सामाजिक वर्ग, जाति/नृजातीयता, लिंग, आयु और कामोन्मुखता – सबका प्रभाव जो जीवनशैली वे अपनाना चाहते हैं उस पर, और इस प्रकार वर्गीकरण के अनुरूप वे जिस वर्ग के हैं, उस पर पड़ता है। जैसा कि पूर्व के अध्यायों में देखा गया है, हमारी सामाजिक पृष्ठभूमियों के इन आयामों के चलते अकसर कई प्रकार की सामाजिक असमानताएं जन्म लेती हैं, और शहर के लोगों (नगर वासियों) के जीवन की गुणवत्ता इन आयामों पर बहुत अधिक निर्भर करती है। उदाहरणस्वरूप, श्वेत और अमीर लोगों के पास शहर की सारी सुख–सुविधाओं का उपभोग करने के लिए पैसा है, जबकि गरीब और अश्वेत इन सभी सुविधाओं से वंचित और इस प्रकार शहर का निकृष्टतम जीवन जीने को विवश रहते हैं। बलात्कार और यौन उत्पीड़न के भय से किसी शहर में स्वतंत्र रूप से घूमने और रात को बाहर जाने में महिलाएं अकसर पुरुषों से अधिक लाचार महसूस करती हैं; शारीरिक असमर्थताओं तथा लूट–मार के भय के कारण वृद्ध लोग भी अकसर लाचार महसूस करते हैं; वहीं समलैंगिक पुरुष और समलैंगिक स्त्रियां अभी भीशारीरिक उत्पीड़न के शिकार होते हैं। इस प्रकार, सामाजिक–जनसांख्यिकीय रूपरेखा के मद्देनजर, हम जिस वर्ग के शहरी हैं, उसका प्रभाव शहर में हमारे अनुभव के साथ–साथ इस बात पर पड़ता है कि वह अनुभव सकारात्मक है या नकारात्मक।

अपनी प्रगति जांचिए

7. किस सिद्धांत में समाज के संपन्न व असंपन्न वर्गों के बीच या धन व राजनीति की दृष्टि से संपन्न कुलीनों व निर्धनों तथा अश्वेत लोगों के बीच एक बुनियादी द्वंद्व होता है?

   (क) द्वंद्व के सिद्धांत में　　(ख) सामान्य सिद्धांत में

   (ग) जीवन के सिद्धांत में　　(घ) विज्ञान के सिद्धांत में

8. हर्बर्ट गैन्स ने शहर के लोगों के कितने प्रकारों की पहचान की?

   (क) चार　　(ख) पांच

   (ग) तीन　　(घ) दो

2.6 समाज पर शहरीकरण के प्रभाव

टिप्पणी

शहरीकरण के प्रभाव पर विचार करते समय विभिन्न चर कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक है। लोग चाहे शहरों में रहते हों या भीतरी क्षेत्र में, उनके व्यवहार और मूल्यों पर शहर का प्रभाव पड़ सकता है : शहरों या भीतरी क्षेत्रों के राजनीतिक, आर्थिक और व्यावसायिक संगठन पर, शहर के लोगों के स्वास्थ्य, शिक्षा और सामान्य कल्याण पर प्रभाव।

1. भौतिक पक्ष

औद्योगिकीकरण के कारण शहरों की आबादी बढ़ी है, जिससे शहर की जमीन पर उत्तरोत्तर दबाव बढ़ा है। फलस्वरूप, जगह की कमी हो गई और संकुलन तथा अत्यधिक भीड़–भाड़ होने लगी है। ऐसे में नगरपालिका के अधिकारियों के लिए बाहर से आने वालों और पहले से रह रहे लोगों को बुनियादी सुविधाएं मुहैया कराना भी कठिन हो चला है।

बुनियादी सुविधाओं में उपभोक्ता सामग्री (भोजन और पानी), आश्रय और छूत रोगों से बचाव शामिल हैं। आबादी में वृद्धि का एक अन्य बड़ा परिणाम सामग्री की मांग और आपूर्ति के बीच उत्पन्न असंतुलन है। महंगाई और वांछित आपूर्ति के अभाव के चलते मूल्यों में भारी वृद्धि होती है।

(क) नगरों का विकास : शहरों में परिवहन एवं संचार के व्ययों में कमी और बेहतर जीवन की संभावना के कारण शहरों के प्रति लोगों का आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। फलतः सभी दिशाओं में शहरों का बेतरतीब विकास हो रहा है, जहां ऐसे गगनचुंबी भयानक, शेर के रूप में ऊंचे से ऊंचे भवन बनते दिखाई देते हैं, जिनमें अधिक से अधिक घरों का समावेश हो सके। बहुत पहले नगरों को उनकी आयोजना और जीवन की बेहतर सहवर्ती स्थितियों के कारण जाना जाता था।

यदि हम किसी आप्रवासी की दृष्टि से देखें, तो यह सच है कि शहरों में अवसर मिलते हैं, वहीं प्रतिस्पर्धा भी होती है। पर यह सही नहीं है कि इन अवसरों की तलाश में आने वाले सभी लोगों को सफलता मिले। ऐसे में झुग्गियों और, बुराइयों के पनपने के साथ–साथ नशीले पदार्थों की तस्करी, देहव्यापार, भिक्षावृत्ति और डकैती की घटनाएं घटती रहती हैं।

(ख) गृह विहीनता : गृह विहीनता (आवासहीनता) शहरी जीवन की एक और निराशाजनक विशेषता है। शहरों में आवास की समस्या निहायत गंभीर रही है। कई ऐसे लोग, जो ऊंचा किराया नहीं दे सकते, बेघर रह जाते हैं। कुछ अन्य स्थितियों में, लोग भीड़ भरे टूटे–फूटे फ्लैटों में रहते हैं। वहीं कुछ अन्य लोग, जो शहर के भीतरी क्षेत्र में किरया देने की स्थिति में नहीं होते, लंबी यात्रा करने को मजबूर होते हैं, जिसमें उनका ज्यादातर समय और ऊर्जा खप जाती है। इसलिए, आवासहीनता आज विश्व के कई बड़े शहरों में एक भयंकर समस्या बनी हुई है।

(ग) उपनगरीकरण : शहरों के उत्तरोत्तर हो रहे विस्तार के फलस्वरूप शहरों के उपांतीय क्षेत्रों में, जहां अविकसित और अनधिकृत जमीन होती है, आबादी में

टिप्पणी

तीव्र वृद्धि हुई है। शहर के सीमाई क्षेत्रों में होने वाली इस वृद्धि के फलस्वरूप उपनगरीय क्षेत्रों का विकास हुआ है। उपनगर वे क्षेत्र हैं, जहां कभी गांव होते थे और फैलते शहरों ने इन्हें लील लिया है। इन क्षेत्रों में अपेक्षाकृत आवास की सघनता कम रहती है। उपनगरों की पहचान इस तथ्य से हो सकती है कि भौतिक दृष्टि से वे मध्य शहर से अलग होते हैं किंतु रोजगार, सेवाओं, सामान और प्रशासन के लिए उस पर निर्भर भी करते हैं।

उपनगरों को उनके कार्यों के आधार पर अलग किया गया है – आवासीय उपनगर और रोजनगार उपनगर। आवासीय उपनगर वे उपनगर होते हैं, जहां लोगों को केवल आवासीय क्षेत्र मुहैया कराए जाते हैं और ये लोग जीविकोपार्जन के लिए शहर आते–जाते हैं। इसके विपरीत रोजगार उपनगरों का, जिन्हें अनुषंगी नगर (Satellite towns) भी कहा जाता है, निर्माण तब होता है, जब औद्योगिक परिसर अपने कर्मचारियों को आवास मुहैया कराते हैं। कुछ समय के बाद, ऐसे क्षेत्र में एक नगर क्षेत्र का और इस प्रकार एक उपनगर का निर्माण हो जाता है।

इन उपनगरों में सामाजिक परस्पर क्रिया का प्रतिमान उपनगर के प्रकार पर निर्भर करता है। आवासीय उपनगरों में, लोगों को यात्रा में अधिक समय देना पड़ता है, इसलिए सामाजिक क्रियाकलाप हेतु वे मुश्किल से समय निकाल पाते हैं; आने–जाने अथवा दौरे पर रहने से कमाऊ सदस्यों को, जो आम तौर पर पुरुष होते हैं, लंबे समय तक घर से दूर रह सकते हैं। इसलिए, उपनगरीय जीवन में महिलाएं ही सक्रिय रहती हैं। उपनगरों में रहने वालों के मूल्य, मानदंड, मान्यताएं और प्राथमिकताएं शहरी लोगों से भिन्न होते हैं।

उपनगरों में रहने वाले लोगों में परिवार के मूल्यों–मानकों को उपलब्धि और वृत्तियों के ऊपर रखने की प्रवृत्ति देखी जाती है, उनमें धन संग्रह के प्रति दिलचस्पी भी नहीं होती, जबकि नगर के भीतरी क्षेत्रों में रहने वालों में यह दम–खम होता है कि वे चाहें तो अमीर हो सकते हैं।

किंतु, तेजी से बढ़ती आबादी का प्रभाव उपनगरों पर भी पड़ता है। उन्हें परिवहन की सघनता से गरीबी तक, तेजी से बढ़ते अपराधों, खास तौर पर चोरी, गुंडागर्दी, वायु प्रदूषण, भौतिक पर्यावरण की बरबादी, आवास की समस्याओं और आर्थिक समस्याओं जैसी किसी शहर की अनेकानेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

समस्याएं कुछ भी हों, उपनगरीकरण एक नया चलन प्रतीत होता है। उपनगरीकरण की आरंभिक अव्यवस्थित और अनियोजित प्रक्रिया के विपरीत, यह आने वाले दिनों में अपेक्षाकृत अधिक योजनाबद्ध हो सकता है और एक क्रमबद्ध विकास का लक्ष्य हासिल कर सकता है।

2. सामाजिक पक्ष

किसी बस्ती में उसमें रहने वाले लोगों की एक निश्चित सीमा से अधिक संख्या का प्रभाव उनके और नगर के स्वरूप के बीच संबंध पर पड़ता है। परस्पर आदान–प्रदान की किसी प्रक्रिया में भाग लेने वालों की संख्या जितनी अधिक होती है, उनके बीच अंतर भी उतना ही गहरा होता है, जिससे व्यक्तिगत मार्ग, व्यवसाय, सांस्कृतिक जीवन और विचार, और मान्यताएं एवं मूल्य अलग हो जाते हैं।

टिप्पणी

इन अंतरों के चलते लोगों में एकाकीपन जन्म लेता है। अलग–अलग मूलों और पृष्ठभूमियों के कारण इन लोगों में अपनेपन के बंधन, मिलनसारिता और पीढ़ियों तक साथ जीने की भावनाओं का अभाव होता है। इन परिस्थितियों में, प्रतिद्वंद्विता और औपचारिक नियंत्रण तंत्र एकजुटता के उन बंधनों का स्थान ले लेते हैं, जो लोगों अथवा किसी ग्रामीण समाज को एक सूत्र में बांधे रखते हैं।

जनसंख्या में वृद्धि और उसके फलस्वरूप सघनता में वृद्धि का एक और महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि लोगों में व्यक्तिगत आपसी परिचय, जिसमें आम तौर पर मुहल्ला–पड़ोस की भावना देखी जाती है, का अभाव होता है। इस प्रकार, संख्या में वृद्धि के फलस्वरूप सामाजिक संबंध के स्वरूप में बदलाव और मानवीय संबंध का विखंडन होता है।

शहरी जीवन में उच्च स्तर पर गतिशीलता के कारण किसी व्यक्ति को विभिन्न कार्य करने का अवसर मिलता है। इसके फलस्वरूप, अंततः विश्व में अस्थिरता और असुरक्षा का माहौल बनता है। इस प्रकार नगरों में रहने वाले एक क्षणभंगुर आवास में रहते हैं, वे एकजुटता की परंपराओं और भावनाओं का विकास नहीं करते और उनमें मैत्री भाव कभी कभी ही दिखाई देता है। इन सब के फलस्वरूप सामाजिक समस्याओं की संख्या में वृद्धि हुई है।

(क) परिवार : सामाजिक ताने–बाने में इन परिवर्तनों का एक संस्था के रूप में परिवार पर व्यापक प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सामाजिक संरचना में परिवर्तन का परिवार के सदस्यों की स्थिति पर भी प्रभाव पड़ता है। आज परिवार के कई बुनियादी कार्यों के लिए अन्य संस्थाओं और संघों की सहायता ली जाती है। उदाहरण के लिए, कुछ समय पहले, बच्चे की देखभाल व पालन–पोषण तथा शिक्षा परिवार का प्रधान कार्य होता था। किंतु आज के शहरों में ऐसे परिवारों की जरूरत बढ़ चली है, जिनमें पति और पत्नी दोनों नौकरी करते हों।

यह जरूरत उपार्जन शुरू करने के लिए महिलाओं को घर से बाहर जाने को विवश करती है। ऐसे में बच्चों की देखरेख का कार्य किसी अन्य संस्था – क्रेश (शिशु सदन) अथवा शिशु देखभाल केंद्र को दे दिया जाता है।

आज के इस दौर में महिलाओं की बदलती स्थिति और भूमिका के फलस्वरूप परिवार की संरचना में भी परिवर्तन आया है। औद्योगिक विकास के चलते, उनकी भूमिका अब घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं रही, बल्कि वे काम करने के लिए बाहर जाने लगी हैं। इस परिवर्तन ने पति और पत्नी के बीच संबंधों को बदल डाला है – अब वे पति–पत्नी से अधिक दोस्त हो गए हैं।

महिलाओं की भूमिका में इस परिवर्तन का प्रतिकूल प्रभाव परिवार पर भी पड़ा है। आजकल ऐसे अनेकानेक परिवार दिखाई देते हैं, जहां केवल माता या केवल पिता अपने बच्चे के साथ रहते हैं। अन्य असामान्य प्रकार के परिवार भी तेजी से पनप रहे हैं – ऐसे परिवार जहां पुरुष और महिला विवाह किए बिना एक साथ रहते हैं।

(ख) अपराध : शहरीकरण, तेजी से बढ़ता आर्थिक उदारीकरण, राजनीतिक क्षेत्र में व्यापक स्तर पर बढ़ती उथल–पुथल, हिंसक सघर्ष और अनुपयुक्त और अधूरी

टिप्पणी

नीति शहरी क्षेत्रों में अपराध का आधार हैं। इसके अतिरिक्त, गरीबी और बढ़ती अपेक्षाओं के चलते असमानता उत्पन्न हुई है और एक भावना पनपी है कि समाज के कुछ लोग उत्तरोत्तर अमीर हो रहे हैं। इस असमानता और भावना के कारण अपराध दिन–व–दिन बढ़ रहा है।

(ग) बेरोजगारी : शहरीकरण के चलते बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो सकती है। लोग बेहतर रहन–सहन, बेहतर स्वास्थ्य चिकित्सा और काम की आशा लेकर शहर आते हैं, जो यहां आकर झूठी सिद्ध हो जाती है। वस्तुतः नगरों में भारी संख्या में लोगों के आगमन से स्थिति बुरी हो जाती है और लोग स्वयं को एक ऐसी दुनिया में पाते हैं, जहां उनका जीवन और भी बदतर हो जाता है। गिने–चुने लोगों का ही भाग्य साथ देता है और शेष लोगों को खाने और सोने के लिए हाड़ तोड़ मेहनत और अपने अवसर की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। ऐसे में अपराध और झुग्गी–झोपड़ियों की वृद्धि के रूप में शहरीकरण का एक स्पष्ट प्रभाव सामने आता है।

शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारों की संख्या के उत्तरोत्तर बढ़ने का एक और कारण मशीनीकरण है। मशीन लोगों का स्थान ले रहे हैं, और बहुत थोड़े लोगों को, जो इन मशीनों को चलाना सीख सकें, रोजगार मिल रहा है। इस प्रकार बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्रों से अधिक शहरों के लिए एक बड़ी समस्या हो रही है।

नगरों में रोजगार कम हैं और अधिक से अधिक लोग रोजगार पाने के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं, इस तरह बेरोजगारी एक स्थायी समस्या बनी हुई है। जिन लोगों को रोजगार नहीं मिल पाता, वे झुग्गी–झोपड़ियों में आवारा भटकते और उपार्जन के लिए किसी काम की तलाश में लगे रहते हैं। रोजगार नहीं मिलने की स्थिति में कोई व्यक्ति गरीब रह जाता है।

(घ) गरीबी : गिलिन एवं गिलिन ने गरीबी की व्याख्या इस प्रकार की है : ''गरीबी वह स्थिति है जिसमें कोई व्यक्ति अविवेकपूर्ण व्यय की अपर्याप्त आय के कारण अपनी शारीरिक और मानसिक क्षमता के संवर्धन और स्वयं को व अपने सामान्य आश्रितों को उस समाज के, जिसका वह एक सदस्य होता है, मानदंड के पूर्णतः अनुरूप कार्य करने के योग्य बनाने के लिए जीवन का कोई बेहतर मानदंड बनाए नहीं रखता।'' पारंपरिक ढंग से शहरी गरीबी की अर्थशास्त्र आधारित व्याख्या जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्यु दर, पोषण, भोजन पर पारिवारिक व्यय का अनुपात; शिक्षा, स्कूल में नामांकन की दरें, स्वास्थ्य देखभाल हेतु अस्पतालों की सुलभता अथवा पेय जल जैसे अन्य सामाजिक संकेतकों से संपूरित आय के उपयोग या व्यय के रूप में की जाती थी।

इस दृष्टिकोण ने गरीब समूहों का वर्गीकरण भौतिक कल्याण के एक आम सूचक के विरुद्ध किया। सामाजिक योजनाकारों द्वारा प्रतिपादित वैकल्पिक व्याख्याओं में गरीबी के अर्थ में स्थानीय परिवर्तन को महत्व दिया जाता है, और अभौतिक वंचन तथा सामाजिक भेदभाव की धारणाओं का समावेश करने हेतु इस व्याख्या को विस्तार दिया जाता है।

भारत में आर्थिक संवृद्धि पर शहरी गरीबी का एक गंभीर प्रभाव है। जीविका की तलाश में शहर आने वालों में कई लोग गरीब ही रह जाते हैं। फलतः भिक्षावृत्ति

और देहव्यापार पनपते हैं। इस विकराल समस्या पर काबू करने के लिए सरकार कई योजनाएं तैयार कर रही है।

टिप्पणी

(ङ) देह व्यापार : शहरीकरण अनजाने में ही महिलाओं और बच्चों की तस्करी का मार्ग खोल देता है। यह उत्तरोत्तर हो रहे परिवर्तन की प्रक्रिया से उत्पन्न सामाजिक यथार्थ है, जिसे गरीबी, बेरोजगारी, बढ़ती शहरी/ग्रामीण विसंगतियों, महिलाओं के साथ घोर भेदभाव और आप्रवासन जैसे कारक कटु से कटुतर बना देते हैं। तंत्र का संपूर्ण मानदंड अज्ञात रखा जाता है क्योंकि कुछ महिलाएं और बच्चे पुलिस को या महिला संगठनों को या फिर गैर–सरकारी संगठनों यह बताने के लिए तैयार हो जाते हैं कि उनके साथ क्या हुआ है।

प्रत्येक वर्ष तस्करी की शिकार महिलाओं और बच्चों की संख्या का अनुमान लगाना कठिन है, वहीं यह भी एक निर्विवाद सत्य है कि महिलाओं और बच्चों की तस्करी एक उत्तरोत्तर बढ़ती समस्या है। महिलाएं और बच्चे अकसर ग्रामीण क्षेत्रों से आर्थिक दृष्टि से विकसित शहरी क्षेत्रों में लाए जाते हैं, कुछ को उनके गांवों से अगवा कर बड़े नगरों में बेच दिया जाता है। कुछ महिलाओं और बच्चों को तो देह व्यापार और दत्तक ग्रहण के लिए सरहदों के पार भी भेज दिया जाता है।

गरीबी नए–नए रूपों में सामने आ रही है, और इसका अधिकांश बोझ महिलाओं व बच्चों पर पड़ता है। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि कई युवा महिलाओं को शहरी क्षेत्रों में रोजगार की तलाश करने में भारी आर्थिक प्रलोभन मिलता है, जहां रहन–सहन का स्तर उनके गांवों से बेहतर होता है, या उन्हें बड़े नगरों की यात्रा करनी पड़ती है, जो वर्षों तक उनकी पहुंच से दूर रहे, या फिर उन्हें विवाह का वचन दिया जाता है।

हाल के शोधों से भी संकेत मिलता है कि शहरों/नगरों में यौन शोषण ज्यादातर वेश्यालयों में नहीं बल्कि नाइटक्लबों, मधुशालाओं, बियर हॉलों और मनोरंजन के अन्य स्थलों में होता है। गरीबी, शिक्षा व रोजगार के अवसरों की कमी जैसे कुछ प्रमुख कारक हैं जो महिलाओं को देह व्यापार अपनाने को विवश करते हैं। एचआइवी/एआइडीएस के प्रति गहरी चिंता के चलते प्रौढ़ाओं की बजाय युवा बालाओं की मांग बढ़ी है।

युवा महिलाओं को शारीरिक दुरुपयोग का संकट तो रहता ही है, उन्हें यौन संक्रामक रोग (एसटीडी) और एचआइवी/एआइडीएस का भी गंभीर खतरा रहता है। उनमें से ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों से आती हैं, जो कम पढ़ी–लिखी होती हैं और जिन्हें इन बीमारियों से स्वयं को बचाने का न तो ज्ञान होता है न ही आत्मविश्वास।

रोजगार की आवश्यकता के अतिरिक्त, बाल्यावस्था के दौरान अल्पवय विवाह और तलाक तथा यौन उत्पीड़न जैसे अनेकानेक कारक लड़कियों को देह व्यापार में ढकेल देते हैं।

तस्करी के कई अन्य रूप हैं, जैसे दत्तक ग्रहण और विदेशी महिलाओं या लड़कियों से विवाह। इस तरह की तस्करी की शिकार ज्यादातर वे युवा

टिप्पणी

महिलाएं होती हैं, जिन्हें इस संकट का ज्ञान नहीं होता और जो अपनी रक्षा करने में असमर्थ होती हैं। कुछ युवतियों को उनके विदेश जाने से पहले उन्हें बेचने वाले तस्कर अपनी हवस का शिकार बना लेते हैं।

यही व्यवहार उन महिलाओं और बच्चे–बच्चियों के साथ भी होता है, जो यौनकर्म से जुड़े कार्य करने के लिए शहर जाते हैं। कार्य की शर्त और कमाई की राशि उनका सबसे बड़ा सरोकार होता है। हालांकि इन महिलाओं को इस व्यापार का अनुभव होता है और इस समस्या के प्रति वे सजग होती हैं, पर इनमें से कई विवेकहीन तस्करों की शिकार हो जाती हैं।

स्थानीय दलालों के अतिरिक्त बिचौलिए यौन सैलानी (यौनकर्म के लिए यात्राओं पर जाने वाले पुरुष अथवा महिलाएं) होते हैं, जो यौन क्षेत्र से बहला कर जबरन देह व्यापार में ढकेलने में शुरुआती दौर में अहम भूमिका निभाते हैं। महिलाओं को देह व्यापार में ढकेलने के लिए फर्जी विवाहों, विवाह के लिए सूचीबद्ध महिलाओं (विदेशी पुरुषों से धन के बदले विवाह के लिए दलालों के माध्यम से इंटरनेट पर पेश महिलाओं) का छद्म ढंग से उपयोग किया जाता है। तस्करी की शिकार आम तौर पर सीधी–सादी महिलाएं होती हैं, जिन्हें वेट्रेस/कुक के रूप में वैध रोजगार और विदेशी पुरुषों से विवाह का झांसा देकर धोखे से देह व्यापार में ढकेल दिया जाता है।

कुछ समाचारपत्रों, जिनमें नाइटक्लबों में बतौर नर्तकी, वेट्रेस अथवा बार बालाओं के रूप में महिलाओं के लिए काम की सूचना भरी रहती है, पर सरसरी दृष्टि डालने से पता चल जाएगा कि विज्ञापनों के माध्यम से महिलाओं और बच्चों की खुलकर बहाली की जाती है। किंतु एक बार जब वे देह व्यापार में चली जाती हैं, तो फिर बचकर निकल नहीं पातीं। उन्हें अकसर बलात ऐसी स्थिति में डाल दिया जाता है, जिसमें चरम स्थिति तक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है, जिसकी तुलना बंधक से की जा सकती है।

उन्हें काबू में रखने के लिए हिंसा का सहारा लिया जाता है अथवा हिंसा की धमकी दी जाती है। इन पीड़ित महिलाओं के लिए न्याय हेतु न्यायालय जाना या उससे गुहार करना कठिन होता है। बिचौलिए, जो कभी–कभी रिश्तेदार भी होते हैं, किसी ऐसे परिवार से संपर्क करने गांव जाते हैं, जिसकी बेटियां युवा होती हैं और उन्हें देश के अन्य हिस्सों में काम के अवसर का प्रलोभन देते हैं। इसलिए, संभावित पीड़िताएं केवल निर्धनतम परिवारों की ही नहीं होतीं।

महिलाओं को देह व्यापार में ढकेल कर भारी लाभ कमाए जा सकते हैं, क्योंकि तस्करों को इसमें कोई खास खतरा नहीं होता न ही उन्हें कोई सख्त सजा दी जाती है। इस प्रथा के प्रति पर्याप्त जागरूकता होते हुए भी, गिने–चुने मामलों में ही अपराध सिद्ध हो पाते हैं। महिलाओं और बच्चों की तस्करी में अपराधियों के लिए नशीले पदार्थों की तस्करी जैसे अपराध के अन्य रूपों से कम जोखिम रहता है।

महिला तस्करी का यह कारोबार कभी–कभी बहाली के क्षेत्र और गंतव्य नगरों में कार्य कर रहे अपराधी समूह करते हैं। वे अति संगठित, अति हिंसक होते हैं और अकसर अपराध की अन्य गतिविधियों में लिप्त रहते हैं।

टिप्पणी

(च) जुआ (द्यूत क्रीड़ा) : जुआ किसी खेल, दौड़, स्पर्धा या अन्य कार्यक्रम में जीत के लिए पैसे अथवा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं का दांव (बाजी) लगाना है। हालांकि आम तौर पर कुछ गिने–चुने समाजों ने ही जुए की शायद ही कभी पूरी छूट दी हो, किंतु कोई भी समाज इसे जड़ से उखाड़ फेंकने में सफल नहीं हो पाया है।

जुआ कई शहरी क्षेत्रों में संगठित रूप से खेला जाता है। नगरों में रहने वाले लोगों में अधिक से अधिक पैसे कमाने की सनक होती है। इसलिए, वे पैसा कमाने का कोई भी जरिया अपनाने को तत्पर रहते हैं – जुआ उन्हें तत्काल पैसा कमाने का अवसर देता है। आसानी से पैसा कमाने की आशा के कारण लोग जुआ के प्रति आकर्षित होते हैं।

यदि जुए में पैसा जीता जा सकता है, तो इसमें पैसे गंवाने का खतरा भी रहता है। कई लोगों के लिए जुआ लत का रूप ले लेता है। जुआ किसी आर्थिक अथवा सामाजिक वर्ग विशेष तक ही सीमित नहीं रहता; बल्कि यह समाज के सभी वर्गों में देखा जा सकता है। ऐसा नहीं है कि जुआ केवल पुरुष ही खेलते हों, कई महिलाएं भी जुआ खेलती हैं।

हालांकि जुए को बुद्ध काल से ही एक बुराई के रूप में हेय की दृष्टि से देखा जाता था, किंतु विश्व के अनेकानेक नगरों में यह आज भी चलन में है और आज भी उतना ही लोकप्रिय है जितना उस युग में था।

(छ) भिक्षावृत्ति : बेहतर अवसर की तलाश में शहर जाने वाले कई लोगों को अवसर नहीं मिल पाता और वे भीख मांगने को विवश हो जाते हैं। वे वस्तुतः देश पर एक आर्थिक बोझ होते हैं। भिखारी आर्थिक रूप से बेकार होते हैं और समाज में लगभग परजीवी की तरह रहते हैं। ज्यादातर भिखारी ऐसे अस्वास्थ्यकर वातावरण में रहते हैं कि वे किसी न किसी बीमारी को जन्म दे देते हैं। इस प्रकार, वे शहर में संक्रामक रोगों के वाहक बन जाते हैं।

भिखारी भीख मांगने के तरह–तरह के तरीके अपनाते हैं। वे लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने और उनकी धार्मिक भावनाओं को उकसाने के लिए उनके सामने स्वयं को दीन–दुखी दिखाने का प्रयास करते हैं। कुछ लोग झूठे प्रमाणपत्र बनवा लेते हैं, जिसमें उल्लेख होता है कि इस प्रमाणपत्र का धारक किसी दुखद घटना का शिकार है, इसलिए इसे भीख दी जानी चाहिए।

सड़कों के किनारे विकृत शरीर वाले भिखारी भी देखे जा सकते हैं, जो अपने क्षत अंग दिखाकर राहगीरों से भीख मांगते हैं। कुछ भिखारियों का कहना होता है कि वे भूकंप अथवा बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के शिकार हैं। भारत में, जीविकोपार्जन के लिए धर्म के नाम पर भीख मांगते भिखरी भी देखे जा सकते हैं। ऐसे भिखारी आम तौर पर मंदिरों या तीर्थ स्थलों के निकट पाए जाते हैं, धर्म के नाम पर पैसा या भीख मांगते हुए।

(ज) द्वंद्व : हर समुदाय में कुछ तनाव और उथल–पुथल होते रहते हैं। समाज में किसी भी सामाजिक तनाव का बुनियादी कारण द्वंद्व होता है। किसी समुदाय में द्वंद्व तीन प्रकार के हो सकते हैं – किसी व्यक्ति का किसी दूसरे व्यक्ति से द्वंद्व; परिवार के भीतर द्वंद्व जिसका प्रभाव बच्चों पर पड़ता है, और विभिन्न समूहों के

टिप्पणी

बीच द्वंद्व। दो व्यक्तियों के बीच झगड़े का समाज पर कोई प्रतिकूल प्रभाव तब तक नहीं पड़ता जब तक कि यह उस स्थिति से बढ़कर समूहों के बीच द्वंद्व का रूप नहीं ले लेता, जिसमें एक व्यक्ति एक समूह का और दूसरा व्यक्ति दूसरे समूह का समर्थन प्राप्त करना चाहता हो। समूह द्वंद्व के कई कारण हो सकते हैं, जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, भाषाई और क्षेत्रीय। किसी गतिशील समाज में द्वंद्व किसी न किसी रूप में हमेशा चलते रहते हैं – चाहे व्यक्ति और समाज के बीच या फिर परिवार में। किंतु, जब तक वे सीमा के भीतर रहते हैं, तब तक समाज पर उनका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

किंतु, नृजातीय हिंसा, आतंकवाद, सांप्रदायिक हिंसा, और विभिन्न जातियों के बीच हिंसा आजकल लगभग सभी शहरों में आम हो चली हैं।

3. मनोवैज्ञानिक पक्ष

शहरी क्षेत्रों में इस वृद्धि के इस स्तर का संबंध उस समुदाय विशेष के मूल्यों, अर्थों, भावनाओं, पूर्वाग्रेहों अथवा विचारधाराओं को ग्रहण करते हुए समायोजन के मनोवैज्ञानिक पहलुओं से है। वृद्धि अथवा सन्निवेश की यह समस्या आप्रवासियों के लिए अधिक होती है क्योंकि वे आम तौर पर अलग–अलग पृष्ठभूमियों से आते हैं और नगरों में बस जाने के लिए संघर्ष करते हैं। वैश्वीकरण और उदारीकरण के साथ आर्थिक क्षेत्र में तेजी से हो रहे परिवर्तन शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाले कई परिवर्तनों को पूरा करने में वैश्वीकरण और उदारीकरण के साथ आर्थिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन हैं।

उदाहरण के लिए, भारत में महज 1991 के बाद; व्यवसाय प्रक्रिया का ठेके पर अन्यत्र विस्तार (बीपीओ) करने वाली कई कंपनियां लगभग सभी बड़े शहरों में कार्य करने लगी हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि अनेकानेक युवा लोगों ने पुराना काम छोड़कर इन कंपनियों में काम करना शुरू कर दिया है क्योंकि ये कंपनियां बेहतर वेतन देती हैं और इन कंपनियों में कार्य का परिवेश भी बेहतर होता है, किंतु यहां समस्या यह है कि ये कंपनियां अपने कर्मचारियों से देर तक और कभी–कभी तो रात में कार्य करने की अपेक्षा रखती हैं। इन परिवर्तनों का लोगों के सामाजिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

परिणामस्वरूप, कार्य की प्रतिस्पर्धा और दबाव के चलते, कार्य और मद्यपान इन शहरों में आज एक रिवाज का रूप ले चुके हैं।

(क) अति मद्यपान (अतिपानता): अति मद्यपान एक चिरकालिक रोग है, जो आचरण के एक व्यतिक्रम के रूप में दिखाई देता है। लोग बार–बार मदिरापान करते हैं और इस क्रम में समाज के रीति–रिवाजों को भी नजरअंदाज कर देते हैं। संक्षेप में, अतिपानता की परख पी गई मदिरा के परिमाण से नहीं बल्कि किसी व्यक्ति के उस व्यवहार से की जाती है, जो वह अपनी समस्याओं से निपटने में करता है और इसका प्रभाव उसकी शारीरिक सेहत पर पड़ता है।

मदिरा के अत्यधिक और चिरकालिक सेवन से शरीर के सभी प्रमुख अंगों को क्षति पहुंच सकती है। इससे हृदय की पेशियों की कोशिकाओं को नुकसान पहुंचता है और हृदय काम करना छोड़ देता है, जिससे व्यक्ति की मृत्यु हो जाती

टिप्पणी

है। मदिरा यकृत को नुकसान पहुंचाती है, जिसका मुख्य कार्य कुछ खास विषैले यौगिकों को निष्प्रभावी और दूर करना है, इस अंग को मदिरा के हानिकारक प्रभावों का सर्वाधिक खतरा रहता है। यदि फिर भी मदिरा का सेवन जारी रहे, तो इससे दिमाग को क्षति पहुंचती है और व्यक्ति कतिपय मानसिक रोगों का शिकार हो जाता है।

अपने सामाजिक मेलजोलों के एक अंग के रूप में, कुछ संस्थाएं युवाओं को बियर–पान की प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेने को बढ़ावा देते हैं, जिनमें विजेताओं को आकर्षक पुरस्कार दिए जाते हैं। इन संस्थाओं के इन कृत्यों के फलस्वरूप निर्दोष युवाओं में मदिरा के प्रति आकर्षण बढ़ता है और वे इसके लती हो जाते हैं। इनमें वे भी होते हैं, जिन्होंने कभी भी किसी भी मादक पदार्थ का सेवन नहीं किया हो। ऐसे में अंततः उनके परिवारों में और समुदाय में समस्याएं जन्म लेती हैं।

मदिरा सेवन के कारण इन दिनों कई नगरों में दुर्घटनाएं आम हो चली हैं। ऐसे कुछ लोग पार्टियों अथवा मदिरालयों में अत्यधिक मदिरापान करते और गाड़ी चलाने लगते हैं। ये लोग या तो दीवारों को ठोकर मार देते अथवा दुर्घटना कर बैठते या फिर किसी राहगीर को ठोकर मार देते हैं, जिससे उसे चोट पहुंचती है। सरकार की मौजूदा 'पीकर गाड़ी न चलाएं' की नीति निस्संदेह सराहनीय है, किंतु सड़कों पर सभी आने–जाने वालों की सुरक्षा के मद्देनजर इसका सख्ती से पालन होना चाहिए।

शहरों में फफूंदियों की तरह उग आए मदिरालय हमारे युवाओं को लुभाते हैं, जिसके फलस्वरूप वे इसके व्यसनी हो जाते हैं। समाज के निचले तबके के लोगों को ताड़ी आराम देती है, जिसकी उन्हें जरूरत होती है। किंतु, कई लोग इसका जरूरत से ज्यादा सेवन करते हैं, जिससे वे मदमत्त हो जाते व उधम मचाने और इस प्रकार परिवार में हिंसक कार्य करने लगते हैं। किंतु, प्राधिकारियों के लिए चिंता की जो बात होती है, वह है लापरवाह लोगों का सस्ती व निषिद्ध (अति अस्वास्थ्यकर वातावरण में तैयार) मदिरा का सेवन, जिसके फलस्वरूप कई लोगों की मृत्यु हो जाती है।

(ख) तनाव : तनाव वह चोट है, जिसकी अनुभूति बदलते वातावरण के साथ निरंतर सामंजस्य करते शरीर को होती है। लोगों पर इसके शारीरिक व संवेगात्मक प्रभाव पड़ते हैं और यह सकारात्मक व नकारात्मक भावनाएं पैदा कर सकता है। एक सकारात्मक प्रभाव के रूप में, तनाव किसी व्यक्ति को कार्य करने को विवश करता है; इससे एक नई चेतना और एक नया रोमांचक मनोभाव भी उत्पन्न हो सकते हैं। नकारात्मक प्रभाव के रूप में, यह लोगों के मन में अविश्वास, उपेक्षा, क्रोध और विषाद को जन्म देता है, जिससे स्वास्थ्य की समस्याएं जैसे सिरदर्द, पेट की गड़बड़ी, घमौरियां, अनिद्रा, अल्सर, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग और आघात हो सकती हैं।

तनाव विशेष रूप से वैश्वीकरण एवं शहरीकरण के इस युग में शहरी जीवन का एक आम घटक है। कार्यालय में, आते–जाते और घर पर भी यह लोगों के साथ चलता रहता है।

टिप्पणी

निरंतर तनाव से घिरे रहने के फलस्वरूप अनेकानेक शहरी लोगों के स्वास्थ्य और जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए, अनेकानेक शहरी अपना आवास छोटी आयु में ही छोड़ देते हैं और आराम की खोज में दूर–दराज के कुछ पहाड़ी क्षेत्रों में चले जाते हैं।

4. सांस्कृतिक पक्ष

शहर का प्रभाव किसी क्षेत्र अथवा उप–क्षेत्र के अलग–अलग भागों पर, और कई अलग–अलग ढंगों से, पड़ सकता है, क्योंकि शहरी संस्कृति किसी नगर की राजनीतिक सीमा के पार तक पहुंचती है। जो लोग अपने विचारों, तकनीकों, कौशलों और आचरण के अंदाजों का प्रचार–प्रसार करते हैं, वे अपने सूत्रों के जरिए या फिर सामूहिक परिवहन और यातायात से सांस्कृतिक सामग्री का प्रचार–प्रसार कर सकते हैं। कोई ग्रामीण, जो किसी नगर में रहा/रही हो, या जिसने वहां काम किया हो, जब अपने गांव लौटता/लौटती है, तो शहर की कुछ संस्कृति अपने साथ ले जाता/जती है जिसे उसके परिजन या मित्र सीख लेते हैं।

प्रचार–प्रसार की यह प्रक्रिया संस्कृति के प्रवाह के कारण नगर में भी होती है। जिस प्रकार किसी गांव का भीतरी प्रदेश किसी सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से शहर का रूप ले लेता है, उसी प्रकार शहरी समुदायों पर कुछ अंश तक शहर में रह रहे ग्रामीण लोगों का प्रभाव पड़ता है, जो जब किसी शहरी समुदाय में रहने के लिए आते हैं, तो अपने गांव के मूल्य और आचरण के तौर–तरीके अपने साथ लाते हैं। किंतु, शहरी संस्कृति का गांवों की ओर प्रवाह आम तौर पर अधिक होता है और उसका प्रभाव भी अधिक गहरा होता है – शहरी लोगों और उनके सामाजिक जीवन पर ग्रामीण संस्कृति के प्रभाव से कम से कम अधिक नाटकीय और स्पष्ट। यह प्रक्रिया पारस्परिक होती है।

कभी–कभी, प्रचार–प्रसार सरकार के संगठित प्रयासों से भी होता है। इनमें कुछ विकासशील देशों में संचालित सामुदायिक विकास कार्यक्रम उल्लेखनीय हैं। संस्कृति के प्रचार–प्रसार में जनसंचार माध्यम भी अहम भूमिका निभाते हैं।

एक बार जब शहरी संस्कृति मूल्यों और सांस्थानिक प्रणाली में स्वीकार या शामिल कर ली जाती है, तब इसके प्रभाव गहरे हो जाते हैं। इस प्रकार, एक अप्रत्याशित शृंखला प्रतिक्रिया होती है। शहरीकरण के कुछ प्रभावों का विवरण यहां प्रस्तुत है।

(क) सामाजिक संबंधों की निष्पक्षता : नगरों और शहरों का जैसे–जैसे विकास होता है, वैसे–वैसे इनमें रहने वाले लोगों के रहन–सहन में बदलाव आता है। हालांकि नगर यथार्थतः अंरतरंग संबंधों अथवा सामुदायिक अस्मिताओं को क्षति नहीं पहुंचाते, किंतु दूर–दराज के क्षेत्रों से आने–जाने वाले लोगों के पास इतना समय नहीं होता कि वे सामाजिक संबंधों का विकास कर सकें। इसके अतिरिक्त, आधुनिक नगर वस्तुतः समुदायों की पट्टी हैं, जो अपने लोगों को सुरक्षा तथा सहायता प्रदान करते हैं।

इस प्रकार, समुदाय–आधारित कोई संबंध इस सीमा तक विकास कर जाता है कि लोगों के लिए यह समझना कठिन हो सकता है कि उनका पड़ोसी कौन है,

टिप्पणी

किंतु उन्हें नए आप्रवसियों की जानकारी होती है अथवा वे जानते हैं कि उनके अपने समुदाय में किसी के साथ क्या हो रहा है। इस तरह, किसी शहर में उनके मुहल्ले–पड़ोस के संबंधों की चिंता उनके निकटतम पड़ोसियों की बजाय उनके अपने समुदाय के लोगों के प्रति अधिक होती है।

आप्रवासी लोग अपने मुहल्ले–पड़ोस के लोगों के साथ एक तटस्थ संबंध का निर्वाह करते हैं, क्योंकि उनके मन में एक बात हमेशा रहती है कि वे किसी एक मुहल्ले में लंबे समय तक – यानी वर्षों वर्ष तक – नहीं रहेंगे। इसलिए, कई वर्षों तक साथ रहने के बाद पड़ोसियों के बीच अपनेपन की जिस भावना का विकास होता है, शहरी लोगों में उसकी कोई गुंजाइश नहीं होती। वे अपनी सुख–सुविधा और कल्याण को लेकर अधिक चिंतित रहते हैं। इस तरह, जीवन के एक मशीनी रूप का विकास होता है, जिसमें किसी भी व्यक्ति के साथ किसी भी तरह के निजी संबंधों की कोई जगह नहीं होती, जगह होती है तो सिर्फ उनके साथ संबंधों की जिनसे उनका आर्थिक अथवा वित्तीय नाता होता है।

शहरों में मानवीय संबंध स्वहित से संचालित होता है। इसलिए यह महज औपचारिक होता है, और इस पर केवल किसी प्रयोजन विशेष का प्रभाव होता है। उस प्रयोजन या उद्देश्य के पूरा या समाप्त होते ही वह संबंध भी समाप्त हो जाता है, और फिर किसी व्यक्ति के लिए किसी दूसरे व्यक्ति के साथ नाता जोड़ने की जरूरत नहीं रह जाती।

(ख) जीवन का मशीनी रूप : शहरों में, हर चीज समय से चलती है और कोई भी उसके आदेशों को चुनौती देने का साहस नहीं कर सकता। नगर का जीवन पूरी तरह से समय पर निर्भर करता है, क्योंकि यह बहुत तेजरफ्तार होता है, यहां तक कि लोगों के पास मित्रता या नाता कायम करने के लिए समय नहीं होता। इस प्रकार, शहरी क्षेत्र का हर व्यक्ति एक मशीनी जीवन जीता है।

(ग) शहरी नजरिया : शहरी क्षेत्रों में, चीजों के प्रति किसी व्यक्ति के नजरिए और उसकी प्रवृत्ति की परख परंपरा या आनुवंशिक आधार पर उतनी नहीं की जाती जितनी कि परिवेश के आधार पर। ग्रामीण और शहरी सोच में एक अंतर होता है। परिवर्तन या बदलाव, जैसे तकनीकी विकास और आर्थिक कारक, किसी व्यक्ति को किसी चीज को अलग कोण से देखने को प्रेरित करते हैं। शहरी क्षेत्रों में, शैक्षिक पृष्ठभूमि, सामाजिक पृष्ठभूमि, व्यवसाय, निर्वाह की स्थितियां आदि जीवन के प्रति एक अभिवृत्ति का विकास करने में एक अहम भूमिका निभाते हैं।

शहरी सोच की मुख्य विशेषताओं में व्यक्तिवाद, गतिवाद या गतिशीलता, उदारतावाद, सहिष्णुता और सह–अस्तित्व शामिल हैं। शहरी क्षेत्रों में, कोई अपनी पसंदों और नापसंदों के अनुरूप एक स्वतंत्र जीवन जीता/जीती है। वह चीजों को व्यक्तिवादी कोण से देखता/देखती है; उसकी सोच पर न तो परिवार का और न ही समाज का नियंत्रण होता है।

गतिवाद या गतिशीलता का अर्थ है तेजी से होने वाले परिवर्तन को स्वीकार करना। शहरी समाज में, कोई अपने रहन–सहन में बदलाव लाता/लाती है और नए चलन व चाल–ढाल बहुत जल्दी सीख लेता/लेती है। यानी शहर में रहने वाले लोग नए प्रकार के परिवर्तनों के लिए तैयार रहते हैं।

टिप्पणी

शहरी लोग आजाद लोग होते हैं; इसलिए वे अपनी सोच में अपेक्षाकृत अधिक लचीले और उदार होते हैं। इसके अतिरिक्त, अलग–अलग क्षेत्रों के लोग शहर में आकर बस जाते हैं। इससे उन्हें स्वाभाविक रूप से अलग–अलग क्षेत्रों की अलग–अलग संस्कृतियों के लोगों से घुल–मिल जाने का अवसर मिलता है। इसलिए, उदार होने के अतिरिक्त वे स्वयं में सहनशील अभिवृत्ति का विकास भी कर लेते हैं : इस प्रकार, वे एक क्षेत्र में एक साथ हंसी–खुशी रहते हैं।

5. आर्थिक पक्ष

शहरीकरण के गांवों पर पड़ने वाले आर्थिक प्रभाव को दो तरह से देखा जा सकता है– औद्योगिकीकरण के चलते होने वाला आर्थिक प्रभाव और आजीविका की तलाश में शहर आने वालों के प्रवास के कारण आर्थिक प्रभाव।

(क) औद्योगिकीकरण : शहर के विकास में जिस विस्फोट या शहरीकरण की जिस तेज प्रक्रिया के चलते आधुनिक औद्योगिक शहर का उदय हुआ, वह औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया पर निर्भर थी। इस प्रकार, हम देखते हैं कि शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के बीच एक गहरा रिश्ता था क्योंकि शहरों का विकास ऊर्जा के उन सस्ते स्रोतों के निकट हुआ, जो पहले पानी और बिजली पर और फिर कोयले पर आधारित थे, और उन स्थलों पर जहां नदियां, झीलें या नहरें होती थीं, जिनके रास्ते भारी कच्चे माल और तैयार उत्पादों को इकट्ठा कर उनकी ढुलाई की जाती थी – परिवहन का एक रूप जिसे आगे चलकर रेल मार्गों ने और मजबूती दी।

उद्योग–उत्पादन और शहरीकरण के बीच संबंध इतना गहरा था कि 19वीं सदी के अमेरिकी शहर के एक पुनरवलोकन में गोहीन ने कहा था, ''औद्योगिकीकरण करीब–करीब आधुनिक शहर के विकास का पर्याय है।'' इस मूल्यांकन पर फ्रेडरिक एंगेल्स जैसे 19वीं शताब्दी के अमेरिकी टीकाकारों ने अपनी सहमति जताई, जिनके अनुसार, ''उद्योग और वाणिज्य बड़े शहरों में विकास के अपने शीर्ष पर पहुंचते हैं, क्योंकि इन्हीं शहरों में मजदूरों पर औद्योगिकीकरण के प्रभाव अधिक से अधिक स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।''

औद्योगिकीकरण के चलते होने वाले विस्फोटक शहरीकरण का प्रतिकूल प्रभाव कृषि प्रौद्योगिकी पर भी पड़ा है। इस शहरीकरण के कारण फसलों और मवेशी के लालन–पालन के तौर–तरीकों में बदलाव आया है, जिसका प्रभाव वायु तरंग पर भी पड़ा है। इन आधुनिक तरीकों के बल पर किसान अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के अतिरिक्त, अब बड़े और घनी आबादी वाले शहरों के लिए भी पर्याप्त भोजन उगा सकते हैं। इस तरह, उत्पादकता में वृद्धि तेजी से हो रहे शहरीकरण का एक कारण थी।

परिवहन एवं यातायात के तंत्रों का, जो औद्योगिकीकरण के ही परिणाम हैं, विकास एक और कारण था। तीसरे, नई भवन सामग्री, जैसे इस्पात और उन्नत कंक्रीट (रोड़ी) तथा एलिवेटर की खोज के फलस्वरूप भवन निर्माताओं के लिए ऊंचे से ऊंचे और बड़े से बड़े भवन बनाना असान हुआ है, जिनमें ज्यादा से ज्यादा लोग रह सकते हैं।

टिप्पणी

जन स्वास्थ्य एवं साफ–सफाई तंत्र में हुए सुधारों के फलस्वरूप न केवल मृत्यु दर में कमी आई है, बल्कि लोगों के शहर जाने की रफ्तार भी बढ़ी है। इस प्रकार, औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के बीच एक मजबूत अन्योन्याश्रय संबंध देखा जा सकता है। मशीनीकरण की प्रक्रियाओं के चलते औद्योगिकीकरण ने हर क्षेत्र में क्षमता का विकास किया है। फलतः, नगरों के प्रति अधिक से अधिक लोगों का आकर्षण बढ़ा है, जिससे दुनिया भर में शहरों की वृद्धि और तेजी से शहरीकरण हुआ है और हो रहा है।

(ख) प्रवासन : किसी देश के भीतर लोगों की भौगोलिक गतिशीलता अथवा प्रवासन सामाजिक–आर्थिक विकास के क्षेत्रीय स्तरों पर एक जनसांख्यिकीय प्रभाव है। उच्च आर्थिक विकास के क्षेत्र, जहां लोगों की आय और मजदूरी बेहतर होती है, के प्रति लोगों में आकर्षण की प्रवृत्ति होती है, और यह प्रवृत्ति विशेष रूप से विकास के अपेक्षाकृत निम्न स्तरों वाले किंतु मजदूरी व आय की कम दरों वाले क्षेत्रों के अर्थ–व्यापार की दृष्टि से सक्रिय लोगों में देखी जाती है। प्रवासन शहरीकरण की प्रक्रिया का आधार तैयार करता है और उसे वह मुख्य तंत्र माना जाता है, जिसके दम पर शहर का विकास जारी रहता है।

प्रवासन ने ग्रामीण क्षेत्रों और कसबों में केंद्रित निम्न आर्थिक अवसरों वाले क्षेत्रों के लोगों के लिए 1 करोड़ से अधिक आबादी वाले महानगरों में केंद्रित उच्च आर्थिक अवसरों वाले शहरों का मार्ग खोल दिया है। कभी–कभी, महानगरों में प्रवासियों के इस अनियंत्रित अंतर्प्रवाह का परिणाम अनर्थकारी होता है। इसके फलस्वरूप बेरोजगारों की संख्या बढ़ी है, और यह एक मुख्या कारण है कि लोग झुग्गी–झोपड़ियों में अथवा अनधिकृत बस्तियों में या फिर बेघर लोगों के रूप में पटरियों पर रह रहे हैं – स्वच्छ पानी, साफ–सफाई, स्वास्थ्य–चिकित्सा आदि जैसी बुनियादी सुविधाओं से वंचित।

प्रवासन अथवा पलायन के प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में देखे जा सकते हैं। यदि किसी परिवार का कोई पुरुष अथवा स्त्री चली जाती है, तो यह प्रभाव और भी गहरा होता है। ये कामगार पुरुष अथवा महिलाएं ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे अपने परिवारों को पैसे भेजती हैं और अकसर उनसे मिलने जाया करती हैं। इसके फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में शहरों से धन तो आता ही है, गांवों की संस्कृति का शहरों में और शहरों की संस्कृति का गांवों में आना–जाना भी होता है।

यदि कोई अपने एकल परिवार के साथ नगर चला/चली जाए, किंतु उसके परिवार के अन्य सदस्य ग्रामीण क्षेत्र में ही रहें, तो संभव है कि नगर जाने वाला वह परिवार गांव में रहने वाले अपने संबंधियों से बहुधा मिलने न आए। किंतु शहरीकरण का प्रभाव ऐसे परिवारों में भी महसूस किया जा सकता है। ऐसे मामलों में, गांव में रह रहे संबंधियों को महीने में एक बार, अथवा आवश्यकता के अनुरूप पैसा भेज दिया जाता है। शहर जाने वाला परिवार जब भी अपने संबंधियों से मिलने गांव आता है तब अपने साथ शहरी तौर–तरीके भी लाता है। इस प्रकार, प्रवासन से केवल शहरों में ही नहीं बल्कि गांवों में भी बदलाव आता है।

टिप्पणी

6. राजनीतिक पक्ष

शहरी क्षेत्रों में, अनेकानेक नए प्रवासी देखा जा सकते हैं। इन नवागंतुकों के उसी प्रकार के सामाजिक संपर्क नहीं होते, जैसे कि मूल वासियों के होते हैं, इसलिए स्वयं को बनाए रखने के लिए वे विकासशील अनौपचारिक सामाजिक तंत्रों का सहारा लेते रहते हैं। इस प्रक्रिया में, कुछ ग्रामीण पारंपरिक किस्मों के संगठनों का गठन किया जाता है। अपने निजी अथवा राजनीतिक लाभ के लिए कई लोग या संस्थाएं इन संगठनों का उपयोग करने का प्रयास करते हैं।

इन संगठनों के सदस्यों को जब अपने महत्व का अहसास हो जाता है, तब वे अधिकार का सामूहिक रूप से उपयोग करना शुरू करते हैं। कालांतर में, ये संगठन राजनीतिक दलों का रूप ले सकते हैं। कभी–कभी किसी प्रजातांत्रिक देश में शहरी लोग इन राजनीतिक दलों के भविष्य पर प्रभाव डाल सकते हैं।

7. पर्यावरणीय पक्ष

आज का शहरी पर्यावरण कोई प्राकृतिक पर्यावरण नहीं रह गया है। यह मानव निर्मित एक कृत्रिम पर्यावरण है। आवादी के उच्च घनत्व और तेजी से हो रहे औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप शहर का पर्यावरण अत्यधिक दूषित हो गया है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या शहर के पर्यावरण के लिए एक गंभीर संकट बन चुकी है। अस्वास्थ्यकर स्थितियों, जिनमें ज्यादातर शहरी लोग प्रदूषण नियंत्रण के उपकरणों के स्थापन की उच्च लागत के कारण रह रहे हैं, से अंततः गरीबी और प्रदूषण का लोक–विरुद्ध जाल अपेक्षित है।

अपनी प्रगति जांचिए

9. औद्योगिकीकरण के कारण कहां की आबादी बढ़ी है?

   (क) गांवों की (ख) कसबों की

   (ग) जंगलों की (घ) शहरों की

10. महंगाई और वांछित आपूर्ति के अभाव के चलते किसमें भारी वृद्धि होती है?

    (क) मूल्यों में (ख) मांग में

    (ग) उत्पादन में (घ) गुणवत्ता में

2.7 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (घ)
4. (ग)
5. (क)
6. (ख)

7. (क)
8. (ख)
9. (घ)
10. (क)

टिप्पणी

2.8 सारांश

भारत में शहरी (नगरीय) समाजशास्त्र के उदय और विकास की गति अपेक्षाकृत धीमी थी। इसके कई कारण थे। यदि हम भारत के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के भूभाग की भौगोलिक विशेषता पर ध्यान दें, तो हम देख सकते हैं कि भारत की आबादी का अधिकांश हिस्सा तथाकथित ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है। उन क्षेत्रों की आबादी, जिनका वर्गीकरण शहरी के रूप में किया जाता है, 30 प्रतिशत से कम है (2001 की जनगणना)। यह उन मुख्य कारकों में से एक है, जो भारत में शहरी विषय के अध्ययन के लिए एक वैज्ञानिक विधा के विकास के मार्ग में बाधक रहे। किंतु, बहुसंख्य का यह मानदंड शहर के संदर्भ में लोगों के सांस्थानिक और सांगठनिक आचरण में महत्वपूर्ण विविधताओं को मिटा नहीं सकता (राव, 1991)। प्रसिद्ध समाजशास्त्री राव का मानना है कि भारतीय समाज की व्यापक सैद्धांतिक समस्याओं के संदर्भ में शहरी सामाजिक संरचना और संगठन का अध्ययन प्रासंगिक है।

वर्तमान में शहरी क्षेत्र बहुविषयक शोध के अधीन है, जिसमें समाजशास्त्र के अतिरिक्त अर्थशास्त्र, भूगोल, इतिहास, राजनीति विज्ञान और जनसांख्यिकी विज्ञान आते हैं। राव के अनुसार, नगरवाद और शहरीकरण के किसी समाजशास्त्रीय अध्ययन का एक अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष स्रोत शहरी सामाजिक जीवन के और शहरी आबादी के वर्गों के प्रवासन (पलायन), जाति प्रथा, उपजीविकाजन्य खंड विन्यास, परिवार संयोजन, राजनीति और धर्म आदि से जुड़े समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रासंगिक पक्षों के अध्ययन से आता है। भारत में समाजशास्त्र की विधा की एक विशिष्ट शाखा के रूप में शहरी समाजशास्त्र के उदय और विकास, और स्थिति की जांच शहरी सामाजिक विन्यास पर उन शोध–अध्ययनों की परख कर किया जा सकता है, जिन्होंने इस विधा के विकास में योगदान दिया। समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रासंगिक सभी शहरी शोधों–अध्ययनों को इस इकाई में शामिल करना संभव नहीं है, इसलिए हम अपनी चर्चाओं को कुछ चुनिंदा क्षेत्रों तक सीमित रखेंगे, जो शहरी समाजशास्त्र में आते हैं।

हाल में, शहरीकरण के प्रति नीति निर्धारकों के विचार में एक परिवर्तन आया है। ग्यारहवीं पंच वर्षीय योजना में कहा गया कि शहरीकरण को समग्र विकास में एक सकारात्मक कारक के रूप में देखा जाना चाहिए क्योंकि सकल घरेलू उत्पाद में शहरी क्षेत्र का लगभग 62 प्रतिशत योगदान है। एक विचार यह भी उभरकर सामने आ रहा है कि सकल घरेलू उत्पाद में 9 से 10 प्रतिशत वृद्धि का एक महत्वाकांक्षी लक्ष्य मूलतः एक स्पंदनशील शहरी क्षेत्र पर निर्भर करता है (योजना आयोग 2008)। क्योंकि देश बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012–2017) तैयार करने जा रहा है, इसलिए शहरी संक्रमण को एक मुख्य चुनौती माना जा रहा है, जिसके लिए शहरी आधारभूत संरचना और सेवाओं के एक व्यापक विस्तार की जरूरत है। इस पृष्ठपट के मद्देनजर, देश में

टिप्पणी

शहरीकरण के स्तरों और गति के गुरुत्व, संवृद्धि और अंतरराज्यीय अंतर की हमारी समझ के संवर्धन में 2011 की जनगणना के परिणामों का अत्यंत महत्व है। जनसांख्यिकी दृष्टि से कहें, तो शहरीकरण का मूल्यांकन शहरी क्षेत्रों में रह रहे लोगों के प्रतिशत के आधार पर किया जाता है। शहरीकरण की प्रक्रिया की एक बेहतर समझ के लिए, यह देखना उचित होगा कि भारत की जनगणना में किन बस्तियों को शहरी माना गया है। शहरी की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है; अलग–अलग देशों में इसकी परिभाषा अलग–अलग होती है (संयुक्त राष्ट्र, 2009)। भारत के शहरी क्षेत्रों की व्याख्या दो मानदंडों के आधार पर की जाती है। पहला, राज्य सरकार किसी बस्ती को पौर का दर्जा (municipal status) देती है – निगम, नगर परिषद्, अधिसूचित शहर क्षेत्र समिति या नगर पंचायत आदि। शहरी क्षेत्रों की जनगणना की व्याख्या में इन बस्तियों को वैधानिक अथवा पौर शहर (municipal town) कहा जाता है। दूसरा, यदि किसी बस्ती का कोई शहरी पौर का दर्जा नहीं हो, किंतु वह 5000 से अधिक आबादी, 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर की सघनता और गैर–कृषि क्षेत्र में 75 प्रतिशत पुरुष कामगार जैसे जनसांख्यिकीय और आर्थिक मानदंडों को पूरा करती हो, तो उसे शहरी कहा जा सकता है।

स्वाभाविक वृद्धि, ग्रामीण–शहरी का शुद्ध वर्गीकरण और गांव से शहर को प्रवासन (पलायन) शहरी आबादी की वृद्धि के संघटक हैं। शहरी आबादी की वृद्धि के बदलते पहलुओं को समझने के लिए उनके सापेक्ष योगदानों का मूल्यांकन बहुत जरूरी है। वर्ष 1991 से 2001 में प्रवासन की दर 42 प्रतिशत से बढ़कर 2001 से 2011 के दौरान 56 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2011 की जनगणना से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर अभी दोनों कारकों को अलग नहीं किया जा सकता, किंतु इससे यह अवश्य ज्ञात होता है कि वर्ष 2011 में नए शहरों की संख्या में भारी वृद्धि हुई। संपूर्ण देश के स्तर पर 2001 की जनगणना की तुलना में वर्ष 2011 में शहरों की संख्या 5,161 से बढ़कर 7,935 हो गई – 2774 नए शहर (2,532 जनगणना शहर और 242 सांविधिक शहर)।

शहरीकरण के प्रभाव पर विचार करते समय विभिन्न चर कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक है। लोग चाहे शहरों में रहते हों या भीतरी क्षेत्र में, उनके व्यवहार और मूल्यों पर शहर का प्रभाव पड़ सकता है : शहरों या भीतरी क्षेत्रों के राजनीतिक, आर्थिक और व्यावसायिक संगठन पर, शहर के लोगों के स्वास्थ्य, शिक्षा और सामान्य कल्याण पर प्रभाव।

2.9 मुख्य शब्दावली

- **विधा** : विभाग, हिस्सा, प्रकार।
- **मानदंड** : पैमाना, मूल्यांकन की विधि।
- **अभिकरण** : किसी के प्रतिनिधि या अभिकर्ता के रूप में कार्य करना।
- **अवगम** : जानना, समझना।
- **यदाकदा** : जब–तब, कभी–कभी।
- **स्वायत्तता** : अपने ही अधिकार में होना।
- **संयोजन** : मिलाने की क्रिया, जोड़ना।

- **अनुवर्ती** : अनुसरण करने वाला, अनुयायी।
- **अनुशीलन** : नियमित अध्ययन।
- **प्रतिवेश** : पड़ोस, पड़ोसी।

टिप्पणी

2.10 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत की आबादी का अधिकांश हिस्सा कहां रहता है?
2. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में शहरीकरण के बारे में क्या कहा गया है?
3. शहरी विकास के संघटक क्या हैं?
4. प्रतीकात्मक परस्पर क्रियावाद से आप क्या समझते हैं?
5. शहरों की आबादी बढ़ने का क्या कारण है और इससे क्या नुकसान हुआ है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में शहरी समाजशास्त्र के अध्ययन की समीक्षा कीजिए।
2. भारत में शहरीकरण के उभरते रुझानों का विवेचन कीजिए।
3. नगर विकास और शहरीकरण के मुख्य निर्धारक कारकों की व्याख्या कीजिए।
4. द्वंद्व के सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
5. समाज पर पड़ने वाले शहरीकरण के प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।

2.11 सहायक पाठ्य सामग्री

DeFilipps, James, *Unmarking Goliath: Community Control in the Face of Global Capital.* New York, NY: Routledge, 2003.

King, Anthony D., *Global Cities: Post-imperialism and the Internationalization of London.* New York, NY: Routledge, 1991.

Gans, Herbert J., *Urban Villagers: Group and Class in the Life of Italian-Americans.* New York, NY: The Free Press, 1982.

Gans, Herbert, *The Levittowners.* New York, NY: Columbia University Press, 1982.

Levitt, Peggy, *The Transnational Villagers.* Berkeley, CA: University of California Press, 2001.

Mollenkopf, John Hull, *The Contested City.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 1983.

Burgess, Ernest W., and Robert E. Park, *The City.* Chicago, IL: University of Chicago Press, 1984.

टिप्पणी

Sassen, Saskia, *The Global City: New York, London, Tokyo.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 2001.

Sugrue, Thomas J., *The Origins of the Urban Crisis: Race and Inequality in Postwar Detroit.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 2005.

Castells, Manuel, *The Castells Reader on Cities and Social Theory.* Edited by Ida Susser. Malden, MA: Blackwell Publishing Limited, 2002.

Wellman, Barry, *Networks in the Global Village: Life in Contemporary Communities.* Boulder, CO: Westview Press, 1999.

Whyte, William Foote, *Street Corner Society: The Social Sructure of an Italian Slum.* Chicago, IL: University of Chicago Press, 1993.

इकाई 3 शहरी केंद्रों, शहरों और नगरों का वर्गीकरण

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 शहरी केंद्रों और नगरों का वर्गीकरण
3.3 शहरीकरण और औद्योगिकीकरण
3.4 शहरीकरण : उद्योग केंद्रित विकास
  3.4.1 नगरों के सीमित आकार एवं विशेषज्ञता
  3.4.2 ग्रामीण–शहरी विभाजन
3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.6 सारांश
3.7 मुख्य शब्दावली
3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

सांख्यिकीय दृष्टि से शहरी क्षेत्रों की व्याख्या ऐसे क्षेत्रों के रूप में की गई है, जिसका कोई प्रशासनिक या कानूनी आधार न हो। यह वर्गीकरण प्रशासनिक सीमाओं को तोड़े–मरोड़े बिना संघनित शहरी बस्तियों की पहचान करने के ध्येय से किया गया है। न्यूजीलैंड में मुख्य शहरी क्षेत्रों का तात्पर्य सर्वाधिक शहरीकृत क्षेत्रों से है और वर्गीकरण का यह भाग शहरी क्षेत्रों के मानक वर्गीकरण के अनुरूप है। मुख्य शहरी क्षेत्र बहुत बड़े और किसी नगर या शहर पर केंद्रित होते हैं। उनकी न्यूनतम आबादी 30,000 होती है। मुख्य उपनगरीय विस्तारों में शहरी क्षेत्रों को शहरी क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया है, जिसमें प्रत्येक शहरी क्षेत्र की व्याख्या एक अलग शहरी क्षेत्र के रूप में की जाती है। शहरी क्षेत्र के मानक वर्गीकरण में दूसरे दर्जे के अथवा गौण शहरी क्षेत्रों की व्याख्या करने के लिए जनसंख्या के आकार का उपयोग भी किया जाता है।

प्रस्तुत इकाई में शहरों के केंद्रों, शहरों और नगरों के वर्गीकरण का विस्तृत अध्ययन किया गया है तथा शहरीकरण और औद्योगिकीकरण पर प्रकाश डाला गया है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- शहरी केंद्रों और नगरों का वर्गीकरण कर पाएंगे;
- नगरीय क्षेत्रों और ग्रामीण क्षेत्रों में अंतर कर पाएंगे;
- शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के बारे में जान पाएंगे;
- आद्योगिक नगरों की विशेषताओं को समझ पाएंगे;
- शहरों के उद्योग केंद्रित विकास का विश्लेषण कर पाएंगे।

टिप्पणी

3.2 शहरी केंद्रों और नगरों का वर्गीकरण

पूर्व में मानक वर्गीकरण में दूसरे दर्जे के अथवा गौण शहरी क्षेत्रों के रूप में प्रस्तुत शहरी क्षेत्रों की पुनर्व्याख्या मुख्य शहरी क्षेत्रों से निकटता और निर्भरता के आधार पर की जाती थी। इस निर्भरता का निर्धारण करने के लिए जनगणना से प्राप्त लोगों के घर के सामान्य पते और कार्यालय के पते का सहारा लिया जाता था। कार्यालय का पता एक सामान्य किंतु प्रभावकारी निर्धारक चर कारक प्रदान करता है, क्योंकि यह शहर की मौजूदा सीमाओं की व्याख्या करते समय छह मानदंडों में से कुछ के लिए एक प्रतिनिधि का काम करता है।

किसी शहर की सीमा में किसी क्षेत्र को शामिल करने के छह मानदंड इस प्रकार हैं–

1. सुदृढ़ आर्थिक संबंध
2. सांस्कृतिक एवं मनोविनोदात्मक परस्पर व्यवहार
3. मुख्य व्यवसाय और व्यावसायिक गतिविधियों के लिए मूल से पोषित
4. एक समेकित सार्वजनिक परिवहन तंत्र
5. मध्य भाग से कार्यालय तक सार्थक आवागमन
6. मुख्य भाग तक एक शयनागार क्षेत्र अथवा एक विस्तार के रूप में, अगले बीस वर्षों के साथ सुनियोजित विकास

किसी मुख्य शहरी क्षेत्र में कोई कार्यालयीय पता हो तो मानदंड 1 और 5 का उद्देश्य पूरा होता है और इससे 2 व 3 की कम से कम कुछ पूर्ति का संकेत मिलता है।

मुख्य शहरी क्षेत्र

यह मुख्य शहरों (शहरी केंद्रों) के मानदंड 2006 के प्रतिमान के समान ही है और इसमें ह्वांगरी, ऑकलैंड, हैमिल्टन, टॉरांगा, रोतोरुआ, गिसबोर्न, नेपियर–हेस्टिंग्स, न्यू प्लाइमाउथ, वांगानुई, पामर्स्टन नॉर्थ, कपीती, वेलिंगटन, नेल्सन, क्राइस्टचर्च, डुनेडिन और इन्वरकर्गिल शामिल हैं।

अनुषंगी शहरी क्षेत्र

इस श्रेणी से उन कसबों और बस्तियों का पता चलता है, जिनका मुख्य शहरों (शहरी केंद्रों) से गहरा संबंध होता है। यह संबंध रोजगार के स्थल के माध्यम से होता है। अनुषंगी शहरी क्षेत्रों की व्याख्या उन शहरी क्षेत्रों (मुख्य शहरी क्षेत्रों से इतर) के रूप में की जाती है, जहां सामान्य निवासी कर्मचारियों (Resident employees) के 20 प्रतिशत से अधिक का कार्यालय का पता किसी मुख्य शहरी क्षेत्र में हो।

स्वतंत्र शहरी क्षेत्र

इस श्रेणी में वे कसबे और बस्तियां आती हैं, जो शहरों (शहरी केंद्रों) पर अधिक निर्भर नहीं करतीं। फिर, कार्य का स्थल निर्धारक चर कारक होता है। स्वतंत्र शहरी क्षेत्र वे शहरी क्षेत्र (मुख्य शहरी क्षेत्रों से इतर) होते हैं, जहां के सामान्य निवासी कर्मचारियों का 20 प्रतिशत से कम का कार्यालय का पता किसी मुख्य शहरी क्षेत्र में होता है।

टिप्पणी

ग्रामीण क्षेत्र

'ग्रामीण' क्षेत्र की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कोई सर्वमान्य व्याख्या नहीं है। ग्रामीणी क्षेत्र परंपरागत दृष्टि से आवासीय क्षेत्र रहे हैं, जिनका शहर की परिभाषा में कोई स्थान नहीं है।

शहरी क्षेत्र के मानक वर्गीकरण में ग्रामीण क्षेत्रों की दो श्रेणियां आती हैं– ग्रामीण केंद्र और अन्य ग्रामीण। ग्रामीण केंद्रों की व्याख्या जनसंख्या के आकार के आधार पर किया जाता है, एक समुचित ढंग से सुगठित क्षेत्र जिसमें 300 से 999 तक की आबादी हो और जो आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों (जिला भूभाग) की सहायता करता हो। उनकी एक स्पष्ट सांख्यिकीय सीमा (एक क्षेत्रीय इकाई) होती है, पर कोई कानूनी दर्जा नहीं होता। 'अन्य ग्रामीण' शहरी क्षेत्र के वर्गीकरण की शेष श्रेणी होता है और इसमें वे सभी क्षेत्रीय इकाई आती हैं, जो शहरी क्षेत्रों अथवा ग्रमीण केंद्रों में नहीं होतीं। इस श्रेणी में शहरी क्षेत्रों के बाहर के नाके (भीतर आने के मार्ग/पतली खाड़ियां), द्वीप, द्वीप का पानी और समुद्र का पानी होते हैं।

प्रायोगिक शहरी/ग्रामीण रूपरेखा के वर्गीकरण के ध्येय से, स्टैटिस्टिक्स न्यूजीलैंड ने विशिष्ट ग्रामीण समुदायों को मान्यता प्राप्त करने हेतु न्यूजीलैंड में रहने की अनुमति देने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों का वर्गीकरण किया है। यह वर्गीकरण किसी शहरी क्षेत्र से दूरी और रोजगार हेतु आवागमन की आवश्यकता दोनों के लिए एक प्रतिनिधि के रूप में कार्यालय का सामान्य निवास के पते से मिलान कर उपयोग करते हुए ग्रामीण क्षेत्रों की व्याख्या कर किया जाता है।

कार्यालय क्षेत्र का उपयोग करते हुए, चार वर्गों में से एक को शहरी क्षेत्रों पर उनकी निर्भरता के अनुरूप लघुतम भौगोलिक क्षेत्र दिए जाते हैं। फिर, कार्य का स्थल निर्धारक चर कारक का कार्य करता है। आवंटन निवासी वयस्क कर्मचारियों के एक भारित प्रतिशत पर आधारित होता है – गांव के किसी लघुतम भौगोलिक क्षेत्र के, जो शहरी क्षेत्र के तीन मानक वर्गों में कार्य करते हैं (आसानी के लिए कार्य पद्धति में मुख्य, दोयम और गौण शहरी क्षेत्र का उपयोग किया जाता है)। प्रत्येक शहरी क्षेत्र में कार्यरत प्रतिशत गुणकों की सहायता से तैयार किये गए। इन गुणकों के चलते अलग–अलग आकारों वाले शहरी क्षेत्रों का शहरीकरण हो सका। उदाहरण के लिए, किसी मुख्य शहरी क्षेत्र में काम कर रहे ग्रामीण लोगों के प्रतिशत का प्रभाव किसी गौण शहरी क्षेत्र में काम कर रहे लोगों के प्रतिशत से दोगुना था। भारण की इस प्रक्रिया में किसी बड़े शहर (शहरी केंद्र) के उसके आसपास के क्षेत्र पर प्रभाव को स्थान दिया जाता है। उदाहरण के लिए, इससे सुनिश्चित होता है कि गोरे के दोयम दर्जे के शहरी क्षेत्रों के आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों को क्राइस्टचर्च के मुख्य शहरी क्षेत्र के बाहर के ग्रामीण क्षेत्रों से नितांत भिन्न क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया गया है।

शहरी क्षेत्रों पर निर्भरता की इस सीमा की गणना की गई और एक 'ग्राम्यता सूचक' तैयार किया गया।

उच्च शहरी प्रभाव वाला ग्रामीण क्षेत्र

इस वर्ग में उन ग्रामीण क्षेत्रों की पहचान की जाती है, जो मुख्य शहरी क्षेत्रों और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच एक मार्ग तैयार करते हैं, हालांकि लघुतम भौगोलिक क्षेत्र (Meshblocks)

शहरी केंद्रों के निकट ही हों यह आवश्यक नहीं है। सूची में एक लघुतम भौगोलिक क्षेत्र को शामिल करने का समर्थन किया गया है, किंतु ऐसा तभी किया जा सकता है, जब किसी मुख्य शहरी क्षेत्र में बड़ी संख्या में निवासी कर्मचारी काम करते हों।

टिप्पणी

शहर के हलके प्रभाव वाला ग्रामीण क्षेत्र

इस वर्ग में वे ग्रामीण क्षेत्र आते हैं, जिन पर मुख्य शहरी क्षेत्र का एक भारी प्रभाव तो होता है, किंतु पूरी तरह से नहीं। इस श्रेणी में एक लघुतम भौगोलिक क्षेत्र को शामिल किया जा सकता है–

1. यदि निवासी कर्मचारियों का एक बड़ा प्रतिशत अंश किसी गौण अथवा दोयम दर्जे के शहरी क्षेत्र में काम करता हो, या
2. यदि किसी मुख्य शहरी क्षेत्र में बड़ी संख्या में निवासी कर्मचारी काम करते हों।

किंतु, किसी मुख्य शहरी क्षेत्र में काम करने वालों का प्रतिशत अंश यदि बहुत हो, तो लघुतम भौगोलिक क्षेत्र (Meshblock) को उच्च शहरी प्रभाव वाली श्रेणी में शामिल किया जाएगा।

अल्प शहरी प्रभाव वाला ग्रामीण क्षेत्र

इस श्रेणी में गांवों पर अत्यधिक केंद्रित ग्रामीण क्षेत्रों को स्थान दिया जाता है। इन क्षेत्रों में रहने वाले ज्यादातर लोग किसी ग्रामीण क्षेत्र में काम करते हैं। तुलनात्मक मूल्य प्रणाली (Weighting system) के प्रभाव के चलते, इसकी संभावना नहीं है कि इस श्रेणी के लघुतम भौगोलिक क्षेत्रों (Meshblocks) के किसी मुख्य शहरी क्षेत्र में अधिक निवासी कर्मचारी (Resident employees) काम करते हों, हालांकि संभव है कि किसी गौण शहरी क्षेत्र में कुछ लोग काम करते हों।

उच्च ग्रामीण/दूरवर्ती क्षेत्र

ये ग्रामीण क्षेत्र वे क्षेत्र होते हैं, जहां रोजगार के संदर्भों में शहरी क्षेत्रों पर निर्भरता न्यूनतम होती है, या वे क्षेत्र जहां कम लोग काम करते हों।

शहरी/ग्रामीण रूपरेखा से बाहर का क्षेत्र

वर्गीकरण प्रणाली से इतर की इस श्रेणी (वह श्रेणी जिसे किसी वर्गीकरण की किसी प्रणाली में औपचारिक रूप से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता) का गठन उन लघुतम भौगोलिक क्षेत्रों को मिलाकर किया गया है, जो प्रायः न्यू जीलैंड की शेष लघुतमक भौगोलिक इकाइयों के समान नहीं होतीं।

नीचे प्रस्तुत छोटे भौगोलिक क्षेत्रों को पूर्व वर्णित शहरी/ग्रामीण रूपरेखा के वर्गीकरण की श्रेणियों में रखे जाने लायक नहीं समझा जाता और वे वर्गीकरण प्रणाली से इतर की श्रेणी में आती हैं।

1. अनांकित छोटे भौगोलिक क्षेत्र (Non-digitised meshblocks)
2. 'ग्रामीण' क्षेत्रों में सभी छोटे जलीय भौगोलिक क्षेत्र (Water meshblocks)
3. 'शहरी' क्षेत्रों में सभी छोटे जलीय भौगोलिक क्षेत्र (Water meshblocks)
4. वे छोटे भौगोलिक क्षेत्र, जो किसी क्षेत्रीय प्राधिकार अथवा क्षेत्रीय परिषद के क्षेत्र में नहीं हों।

टिप्पणी

नगर एवं शहर

नगर एक विशाल मानव बस्ती होता है। इसकी व्याख्या प्रशासनिक स्तर पर निर्धारित सीमाओं वाली एक स्थायी और घनी बस्ती के रूप में की जा सकती है, जिसमें रहने वाले लोग मुख्य रूप से कृषि से इतर कार्य करते हों। नगरों में आम तौर पर आवास, परिवहन, साफ–सफाई, जन सुविधाओं, भूमि उपयोग और संचार की व्यापक प्रणालियां होती हैं। उनका घनत्व लोगों, सरकारी संगठनों और कंपनियों के बीच परस्पर कार्य–व्यापार को सरल बनाता है, और इस प्रक्रिया में कभी–कभी विभिन्न पक्षों को लाभ पहुंचाता है, जैसे सामग्री और सेवा वितरण की क्षमता में सुधार। इस संकेंद्रण के महत्वपूर्ण नकारात्मक परिणाम भी हो सकते हैं, जैसे शहरी उष्ण क्षेत्र (क्षेत्र का तापमान आसपास के वायुमंडल से किंचित अधिक रहता है) का निर्माण, भारी प्रदूषण और जलापूर्ति तथा अन्य संसाधनों का दबाव।

अतीत में, नगर में लोग बहुत कम संख्या में रहते थे, किंतु दो सौ वर्षों के अभूतपूर्व और तेज रफ्तार शहरीकरण के बाद, विश्व की लगभग आधी आबादी नगरों में रहती है, जिसके वैश्विक संधारणीयता के प्रति गहरे परिणाम सामने आए हैं। आज के नगर आम तौर पर बड़े महानगरीय क्षेत्रों और शहरी क्षेत्रों का केंद्र होते हैं, जहां भारी संख्या में नियमित रूप से आने–जाने वाले लोग रोजगार, मनोरंजन और शिक्षा–प्रशिक्षण आदि के लिए नगर केंद्र जाते हैं। किंतु, तेजी से बढ़ते वैश्वीकरण के इस विश्व में, सभी नगर कमोबेश इन क्षेत्रों के परे वैश्विक स्तर पर जुड़े हुए हैं। इस गहरे प्रभाव का अर्थ यह है कि नगरों का वैश्विक मुद्दों, जैसे सतत विकास, वैश्विक तापन और वैश्विक स्वास्थ्य, पर भी प्रभाव पड़ता है।

जनसंख्या के अतिरिक्त नगरों के अन्य महत्वपूर्ण लक्षणों में नगरों की राजधानी की स्थिति और उसके सापेक्ष वितत व्यवसाय शामिल हैं। उदाहरण के लिए, अबू धाबी, बीजिंग, बर्लिन, काहिरा, लंदन, मॉस्को, नई दिल्ली, पेरिस, रोम, सियोल, टोक्यो, ताइपे और वाशिंगटन डी. सी. जैसी विभिन्न देशों की राजधानियां अपने–अपने देशों की पहचान को दर्शाती हैं। कुछ ऐतिहासिक राजधानियां, जैसे क्योटो, आधुनिक राजधानी की स्थिति के बिना भी सांस्कृतिक पहचान का प्रतिबिंब बनाए रखती हैं। धार्मिक पवित्र स्थल किसी धर्म के भीतर राजधानी की स्थिति का एक और उदाहरण पेश करते हैं, यरूशलेम, मक्का और वाराणसी में प्रत्येक का अपना–अपना महत्व है। फैयूम, दमास्कस और आर्गोस शहर उन शहरों में से हैं, जिन्हें लोगों के प्राचीन निवास होने का गौरव प्राप्त है।

कोई शहर अपने अपेक्षाकृत बड़े आकार के कारण तो अन्य मानव बस्तियों से भिन्न होता ही है, अपने कार्यों और अपनी विशेष प्रतीकात्मक स्थिति के कारण भी भिन्न होता है, जो उसे कोई केंद्रीय प्राधिकरण प्रदान कर सकता है। इस शब्द का तात्पर्य शहर के भौतिक मार्गों और भवनों या वहां रहने वाले लोगों के समूह से भी हो सकता है और इसका उपयोग ग्रामीण की बजाय शहरी क्षेत्र के सामान्य अर्थ में किया जा सकता है।

शहरी जनसंख्या के रूप में जनसंख्या का वर्गीकरण करने के लिए देश की जनगणनाओं में जनसंख्या, जनसंख्या के घनत्व, आवासों की संख्या, आर्थिक कार्य और आधारभूत संरचना जैसे कारकों का दृष्टांत देते हुए अलग–अलग व्याख्याएं की जाती

टिप्पणी

हैं। सामान्य व्याख्या यह है कि जिस क्षेत्र की जनसंख्या कम से कम 1 लाख हो, उसे छोटे नगर का दर्जा दिया जा सकता है। एक अन्य सिद्धांत के अनुसार किसी शहरी क्षेत्र (नगर या कसबा) की आबादी 1,500 से 50,000 के बीच होनी चाहिए, जबकि अमेरिका में इसके लिए न्यूनतम 1,500 से 5,000 के बीच तय किया गया है। कुछ क्षेत्रों (क्षेत्राधिकारों) में ऐसी कोई न्यूनतम सीमा निर्धारित नहीं की गई है। इंग्लैंड में, रानी नगर का दर्जा प्रदान करती है और फिर यह दर्जा स्थायी रूप से बना रहता है। (अतीत में, क्षेत्र में प्रधान गिरजा घर का होना इसका कारक माना जाता था, अर्थात प्रधान गिरजा घर जिस क्षेत्र में होता, उसे नगर का दर्जा दिया जाता, इसीलिए वर्ष 2018 तक अनुमानतः 12,000 की आबादी वाले वेल्स, और वर्ष 2011 तक 1,841 की आबादी वाले सेंट डेविस जैसे अति छोटे शहरों को भी यह दर्जा दिया गया है।) ''कार्यमूलक परिभाषा'' के अनुरूप किसी शहर का वर्गीकरण केवल आकार के आधार पर नहीं, बल्कि किसी बड़े राजनीतिक संदर्भ में उसकी भूमिका के आधार पर भी किया जाता है। नगर अपने आसपास के बड़े क्षेत्रों के लिए प्रशासनिक, वाणिज्यिक, धार्मिक और सांस्कृतिक केंद्रों का कार्य करते हैं। ब्रोड टॉप सिटी पेन्सिलवेनिया (आबादी 452) और सिटी डुलस, एक पल्ली (पुरवा) शहर एंगलसे, 'नगर' की संज्ञा से अभिहित उन बस्तियों के उदाहरण हैं, जो संभवतः इस संज्ञा के लिए निर्धारित परंपरागत कसौटी को पूरा नहीं करते।

नगर की परिभाषा में कभी–कभी शिक्षित कुलीन समुदाय को भी शामिल कर लिया जाता है। किसी विशिष्ट नगर के उसके अपने संव्यावसायिक प्रशासक, नियम–विनियम और सरकारी कर्मचारियों की सहायता के लिए कर की कोई व्यवस्था (उनके लिए व्यापार करने हेतु खाद्यान्न और अन्य आवष्यक वस्तुएं अथवा साधन) होते हैं। (यह व्यवस्था पड़ोसियों के बीच अनौपचारिक अनुबंधों के माध्यम से, अथवा किसी मुखिया या प्रधान के नेतृत्व में साझा लक्ष्यों को पूरा करने वाली किसी जाति अथवा गांव में खास व्यावसायिक संबंधों के विपरीत है।) सरकारें परंपरा या आनुवंशिकता, धर्म, सैन्य शक्ति, कार्य प्रणालियां जैसे नहर–निर्माण, आहार–वितरण, भू–स्वामित्व, कृषि, वाणिज्य, उत्पादन, वित्त, अथवा इनके संयोजन पर आधारित हो सकती हैं। जो समाज नगरों में रहते हैं, उन्हें अकसर सभ्यता कहा जाता है।

शहर शब्द की उत्पत्ति जर्मन शब्द जाउन (Zaun), डच शब्द टुइन (Tuin) और प्राचीन नोर्स टुन (Tun) से मानी जाती है। प्राचीन जर्मन टुनान को प्राचीन सेल्टिक डुनॉन (प्राचीन आइरिश डुन (Dun), वेल्श डिन (Din) से उत्पन्न माना जाता है।

जर्मन और सेल्टिक दोनों में शब्द का मूल अर्थ एक किला अथवा एक घेराव (प्रांगण/अहाता) है। कई आधुनिक जर्मन भाषाओं में 'शहर (कसबा)' का अर्थ बाड़ (खावां/Fence) या हाता (Hedge) भी है। अंग्रेजी और डच में इस शब्द का अर्थ वह घेरा है, जिससे होकर एक रास्ता अवश्य निकलता हो। इंग्लैंड में, शहर (कसबा) एक समुदाय होता था, जो दीवारें या अन्य विशाल दुर्ग नहीं बना सकता था अथवा जिसे इसकी अनुमति नहीं होती थी। इसके बदले वह कटघरा अथवा घेरा बना सकता था। नीदरलैंड में, यह क्षेत्र एक बाग होता था, विशेष रूप से अमीरों का, जिसके चारों ओर एक बाड़ या दीवार होती थी (जैसे अपेलदूर्न में हेत लू प्रासाद का बाग, जो हैंपटन कोर्ट में विलियम 3 और मेरी 2 के गुप्त बाग (Privy garden) का प्रतिरूप था)। प्राचीन नोर्स टुन का अर्थ फार्म घरों के बीच एक स्थान (घास से भरा) होता था और नॉर्वेजियाई भाषा में इस शब्द का उपयोग आज भी इसी अर्थ में किया जाता है।

शहर अकसर शासन की विशिष्ट इकाइयों के रूप में होते हैं, जिनकी कानूनसम्मत निर्धारित सीमाएं होती हैं और जिनमें स्थानीय शासन (जैसे पुलिस बल) के कुछ अथवा सभी उपांग होते हैं। अमेरिका में इन्हें 'निगमित शहर' कहा जाता है। अन्य रूपों में शहर का अपना कोई शासन नहीं होता और इसे 'अनिगमित' कहा जाता है। ध्यातव्य है कि हो सकता है कि कानूनी तौर पर किसी अनिगमित शहर की स्थिति का निर्धारण अन्य प्रकारों से किया गया हो, जैसे क्षेत्रीय जिले। कुछ नियोजित समुदायों की स्थिति में, शहर कानूनी तौर पर शहर के भीतर संपत्ति की प्रसंविदाओं के रूप में होता है।

शहर और नगर का अंतर समान रूप से दृष्टिकोण पर निर्भर करता है : नगर नितांततः एक प्रशासनिक सत्ता हो सकता है, जिसे यह पद कानून के तहत दिया गया हो, किंतु औपचारिक उपयोग में, इस शब्द का व्यवहार किसी आकार अथवा महत्व विशेष के किसी शहरी क्षेत्र के लिए भी किया जाता है। हालांकि संभव है कि किसी मध्ययुगीन नगर में 10,000 लोग ही रहते हों, किंतु आज कुछ लोग 100,000 से कम की आबादी वाले किसी शहरी क्षेत्र को शहर मानते हैं, इसके बावजूद कि आधिकारिक रूप से पदनामित कई नगरों में इससे कहीं कम आबादी होती है।

स्थानों की नामावली (Toponymic terminology) में, शहरों और नगरों के नामों को स्थान नामावली कहा जाता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. किन शहरी क्षेत्रों की व्याख्या उन क्षेत्रों के रूप में की जाती है, जहां सामान्य निवासी कर्मचारियों के 20 प्रतिशत से अधिक के कार्यलय का पता किसी मुख्य शहरी क्षेत्र में हो?

   (क) अनुषंगी (ख) छोटे

   (ग) अविकसित (घ) पिछड़े

2. किस क्षेत्र की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कोई सर्वमान्य व्याख्या नहीं है?

   (क) शहरी (ख) ग्रामीण

   (ग) नगरीय (घ) राष्ट्रीय

3.3 शहरीकरण और औद्योगिकीकरण

ऐतिहासिक दृष्टि से औद्योगिकीकरण ने आर्थिक विकास और रोजगार के अवसरों का सृजन करते हुए शहरीकरण का मार्ग प्रशस्त किया है। ये अवसर लोगों को नगरों की ओर खींच लाते हैं। शहरीकरण तब शुरू होता है, जब किसी क्षेत्र में किसी कारखाने अथवा कई कारखानों की स्थापना होती है, और इस प्रकार कारखानों में काम करने वालों की अत्यधिक आवश्यकता होती है। फिर कारखाने या कारखानों की स्थापना के बाद कामगारों की उत्पादों की मांग को पूरा करने के लिए भवन निर्माताओं, खुदरा विक्रेताओं और सेवा मुहैया कराने वालों का प्रवेश होता है। इसके फलस्वरूप रोजगार के और अवसर तथा आवास की आवश्यकता बढ़ती है, इस प्रकार किसी शहरी क्षेत्र की स्थापना होती है।

टिप्पणी

शहरीकरण जलाशयों के निकट होता है

मानव सभ्यता के समस्त इतिहास में शहरीकरण के ज्यादातर उदाहरण बड़े जलाशयों के निकट दिखाई देते हैं। आरंभ में, ऐसा केवल विशाल आबादी की पानी और भोजन की जरूरत को पूरा करने के ध्येय से किया जाता था। किंतु, औद्योगिक क्रांति के समय से, जलमार्ग के समानांतर शहरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है, क्योंकि उद्योग को बनाए रखने के लिए बड़े जलाशयों की जरूरत होती है। कई उद्योगों और कंपनियों को उत्पादों के उत्पादन के लिए न केवल भारी मात्रा में पानी की जरूरत होती है, बल्कि वे सामान की ढुलाई के लिए भी महासागरों और नदियों पर निर्भर करते हैं। यही कारण है कि विश्व के लगभग 75 प्रतिशत शहरी क्षेत्र तटीय क्षेत्रों में हैं।

औद्योगिकीकरण के बाद शहरीकरण जारी रहता है

औद्योगिकीकरण के कारण आर्थिक विकास होता है, इसलिए उन्नत शिक्षा और लोक निर्माण कार्य संस्थाओं की आवश्यकता होती है, जो शहरीकरण की वृद्धि के अभिलक्षण होते हैं। यह मांग इसलिए होती है क्योंकि उत्पादकता बढ़ाने के लिए नई तकनीकी की इच्छुक कंपनियों को एक शिक्षित कर्मचारीवृन्द की जरूरत होती है, और रहन–सहन की सुखद स्थितियां कुशल कामगारों को ऐसे क्षेत्रों के प्रति आकर्षित करती हैं।

किसी क्षेत्र में उद्योग की स्थापना होने के बाद, शहरीकरण की प्रक्रिया शुरू होती है और लंबे समय तक चलती रहती है, क्योंकि उस क्षेत्र में चरण–दर–चरण आर्थिक व सामाजिक सुधार होता रहता है। इस बात को एक अल्प विकसित देश के बैंकॉक जैसे एक नगर की लॉस एंजलीस जैसी एक अमेरिकी और बर्लिन जैसे एक यूरोपीय नगर से तुलना कर समझा जा सकता है। प्रत्येक नगर का सामाजिक, परिवेशीय और आर्थिक समृद्धि का एक उत्तरोत्तर बढ़ता स्तर है, जो उसे उन्नत शिक्षा, सरकार के प्रयास और सामाजिक सुधार के बूते प्राप्त हुआ है।

औद्योगिक नगर की विशेषताएं

एक बड़ा विस्तृत खुला नगर, जिसमें समाज का एक बड़ा हिस्सा रहता हो। अपेक्षाकृत कम अलगाव; कुछ बाहरी प्रतीक, जाति आधारित अलगाव। परिवहन एवं यातायात की अच्छी व्यवस्था।

- एक औद्योगिक समाज के उत्पादन, वित्त और संयोजन का केंद्र।
- एक तरल वर्ग संरचना, जिसमें व्यापारियों, संव्यवसायियों और वैज्ञानिकों का एक कुलीन वर्ग रहता हो।
- तकनीकी कार्य करने वाले लोगों का एक विशाल मध्य वर्ग।
- वेतन, शुल्क, निवेश से अर्जित संपत्ति। व्यवसाय संबद्ध गतिविधि की उच्च स्थिति। राष्ट्र स्तर पर संघीकरण। उत्पादन और विपणन की विशेषज्ञता। सेवा का विशाल क्षेत्र, स्थिर मूल्य।
- समय का महत्व और नियमित कार्य अनुसूची।
- प्रक्रिया एवं गुणवत्ता का मानकीकरण।
- तकनीकी मानदंड पर आधारित औपचारिक जनमत और नौकरशाही।
- मध्य वर्ग के वर्चस्व वाली संस्थाओं से से अलग एक कमजोर धार्मिक संस्था।
- लोगों के लिए तकनीकी और धर्म निरपेक्ष शिक्षा की व्यवस्था।

टिप्पणी

नगर के उत्तरोत्तर जटिल और विकसित होते प्ररूपों में नगरों और उनकी संरचनाओं के ऐतिहासिक विकास की झलक दिखाई देती है, जब एक अति सरल रूप में तर्क दिया जा सकता है कि शहरी अभिकल्प अथवा रूपरेखा के स्थानिक ढांचों, उसके कार्यकलापों और महत्व में अत्यधिक अंतर होता है। यह शहरी विकास के तीन चरणों के मूल विवरण में भी देखा जा सकता है, जिन्हें अधिकांशतः निम्नलिखित रूप में मान्यता प्राप्त है– (1) प्रौद्योगिक नगर, (2) औद्योगिक नगर और (3) उत्तर औद्योगिक नगर।

प्रौद्योगिक नगर : नगरों और नगरीय सभ्यताओं की शुरुआत 3500 ईसा पूर्व से 1000 ईस्वी के बीच मानी जा सकती है, जब निचले मेसोपोटामिया के शहर (जैसे उर और बेबीलोन) तथा नील डेल्टा में स्थापित शहर प्राचीनतम शहरों में शामिल थे (मुलिसेक 2008)। विकास एवं शहरों का निर्माण अधिशेष का उत्पादन करने में सक्षम खेती के विकास से संबद्ध था।

होहेनबर्ग (मुलिसेक 2008 के लेखन में वर्णित 2004, पृ. 119) ने एक मध्ययुगीन यूरोपीय नगर के विशिष्ट उदय का वर्णन मजबूत नगर केंद्र के आसपास धीरे–धीरे एकत्र हुई आबादी के रूप में किया है, जो उदाहरणस्वरूप कुलीन वर्ग और मठों का – रोमन नगरों के क्रमिक अवशेषों का – पीठ हो सकता है।

औद्योगिक नगर : अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति के दौरान औद्योगिकीकरण ने औद्योगिक उत्पादन (इस अवधि में नगरों का नगर–निर्माण का प्रमुख कार्य) के आसपास केंद्रित नगरों के विकास को एक नई गति दी। इन कारखानों में काम करने के इच्छुक भारी संख्या में लोग ऐतिहासिक नगरों या नए शहरों में स्थित बड़ी औद्योगिक कंपनियों (वस्त्र उद्योग, धातु उद्योग...) के प्रति आकर्षित हुए।

परिवहन एक अति महत्वपूर्ण कारक बन जाता है– रेलवे पर शहरों की अवस्थिति के कारण नगरों और नए शहरों के तंत्र में उल्लेखनीय अंतर उत्पन्न होता है (उदाहरणस्वरूप च्युडिम के महत्व में गिरावट और औद्योगिक के महत्व में वृद्धि और रेलवे पर फैले परदुबिस में बहुत पहले) (मार्यास और वाइस्तुपिल, 2004)। तब विश्व के विशालतम नगरों के 'मानचित्र' को औद्योगिकीकरण की तीव्रता ने बहुत हद तक बदल डाला।

उत्तर–औद्योगिक नगर : बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में और नगरों की स्थानिक संरचना में सेवाओं की भूमिका (तृतीय और चतुर्थ स्तर के क्षेत्रों में रोजगार की वृद्धि दर) पर जोर देने वाले आर्थिक परिवर्तन, व्यावसायिक और तकनीकी वर्गों की भूमिका को सुदृढ़ करने वाली सामाजिक संरचना में परिवर्तन और प्रौद्योगिकियों पर अत्यधिक बल तथा सामाजिक जीवन में सूचना का महत्व दृष्टिगोचर होते हैं।

अनौद्योगिकीकरण : शहरी क्षेत्र के मूल औद्योगिक उपयोग में कमी, पूर्व के औद्योगिक भवनों का क्षय और अनुपयोग तथा पूर्व में विकसित किंतु वर्तमान में बेकार पड़े भूखंडों के मूल, जिनके संदूषित होने की प्रबल संभावना हो (ब्राउनफील्ड)।

वाणिज्यीकरण : वाणिज्यिक गतिविधियों (प्रशासन, वाणिज्य, पर्यटन) के लिए नगर क्षेत्र का नए सिरे से उपयोग।

पृथक्करण : किसी खास क्षेत्र में गरीब लोगों की बढ़ती स्थानिक सघनता जिसके कारण एक विशिष्ट सामाजिक परिवेश का निर्माण होता है, जिसमें समाज में

सफल होने हेतु जरूरी संस्थाओं, सामाजिक भूमिकाओं, प्रतिमानों और मूल्यों की कमी होती है।

टिप्पणी

गरीब क्षेत्र का विकास कर मध्य वर्गीय क्षेत्र में परिवर्तन : विशिष्ट लोगों – युवा, शिक्षित, उच्च आय वाले संव्यवसायियों, अकसर अकेले या छोटे घरों में रहने वालों – के समूहों के आगमन से संबद्ध भवनों का पुनर्वास। आधुनिकीकरण (ळमदजतपपिबंजपवद) की यह प्रक्रिया अकसर नगर के परंपरागत स्थानों से सामाजिक स्तर पर कमजोर लोगों के आर्थिक रूप से विकास के साथ चलती है।

नगर केंद्रों का निर्जनीकरण : नगर के केंद्र में तृतीय कोटि के कार्यों के संकेंद्रीकरण के फलस्वरूप नगर केंद्र में दिन व रात की जनसंख्या के बीच बहुत अंतर होता है (मार्यास एवं वस्तुपिल, 2004)।

आर्थिक विकास में औद्योगिक और उत्तर–औद्योगिक नगरों की भूमिका –जॉन आर. मेयर

अपने शोधपत्र दि रोल ऑव इंडस्ट्रियल एंड पोस्ट–इंडस्ट्रियल सिटीज इन इकॉनॉमिक डिवेलपमेंट में जॉन आर. मेयर ने लिखा है कि बहुत पहले सतही तौर पर ही सही, शहरों और नगरों का निर्धारण समाज के राजाओं, राजकुमारों, पादरियों, सेनाध्यक्षों और राजनीतिक व सैन्य नेताओं की प्राथमिकताओं के अनुरूप किया जाता था।

किसी क्षेत्र के आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों पर सैन्य या प्रशासनिक नियंत्रण लागू करने के औचित्य अथवा उसकी क्षमताओं का अकसर अत्यधिक महत्व होता था। इतिहास के एक विद्वान ने परंपरागत ज्ञान का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार किया है : ''नगर... की खोज की जानी थी... शासकों, सैनिकों, शिल्पकारों और खेती से इतर कार्य करने वालों की एक आबादी के भरण–पोषण के लिए जहां कहीं भी खेती में पर्याप्त अतिरिक्त खाद्यान्न का उत्पादन हुआ।'' आरंभिक शहरों के प्रति यह परंपरागत दृष्टिकोण, प्रायः तात्विक रूप से सही, भी निश्चय ही अत्यधिक सीमित है। नगर कभी केवल पराश्रयी भर नहीं थे; इनमें से ज्यादातर का कम से कम कुछ आर्थिक महत्व हमेशा से है। उदाहरणस्वरूप, लगभग आरंभिक शुरुआत के समय से ही, नगरों ने श्रम के विभाजन व विशेषज्ञता के सहारे मानदंड और क्षेत्र की अर्थव्यवस्थाएं हासिल करने के अवसर मुहैया कराए, अवसर जिनका व्यक्तिगत गृह स्थलों और खेतों में सुगमतापूर्वक लाभ नहीं लिया गया।

वस्तुतः, आर्थिक विवेक पर बल देते हुए अर्थशास्त्रीगण नगरों के निर्माण में विशेष रूप से मानदंड की अर्थव्यवस्था पर दबाव देते हैं : ''ज्यादातर शहरी क्षेत्रों का उदय बृहत स्तर पर गतिविधियों के अर्थिक लाभों के कारण होता है।'' यह सच है कि औद्योगिक क्रांति के बाद, इस प्रकार का कोई चित्रण उसके पहले से संभवतः कम सही था; किंतु सैन्य और प्रशासनिक नियंत्रण पर इतिहासज्ञों का बल यथार्थता के करीब हो सकता है। औद्योगिक क्रांति से पहले बड़े नगर निश्चय ही बहुत कम थे। सन् 1800 के लंदन को एक मिलियन की आबादी के मानदंड को पूरा करने वाला पहला पश्चिमी आधुनिक नगर माना जाता है। इससे पहले रोम को ईसवी सन् के आरंभ से 300.5 के बीच का सबसे बड़ा शहर माना जाता था, जिसकी आबादी आधे और एक मिलियन के बीच घटती–बढ़ती रहती थी। सच्चे अर्थ में बड़े शहरों का उदय औद्योगिकीकरण के कारण हुआ। किंतु, औद्योगिकीकरण के पहले भी कुछ नगरों में बाजारों, उत्पादों और प्रक्रियाओं का विकास हुआ, जो 'कुटीर उद्योग' के रूप में गांवों तक पहुंचे, जिसे 'घरेलू

टिप्पणी

प्रणाली (Putting out system) कहा जाता है।' ये व्यापारिक गतिविधियां जिस सीमा तक बढ़ीं, उससे नगरों को पर्याप्त लाभ भी मिला। खास कर परिवहन स्थलों अथवा पोतांतरण केंद्रों पर स्थित गोदाम या भंडार नगरों में स्वाभाविक रूप से संबद्ध व्यापारिक एवं विपणन गतिविधियों का विकास हुआ। होहेनबर्ग के अनुसार, ''विशेष रूप से उत्तरी और मध्य इटली में और तटवर्ती क्षेत्रों में, समृद्धि संपन्न वाणिज्यिक नगरों के समूहों का उनके आसपास के ग्रामीण क्षेत्र की सेवा क्षमता अथवा अधिशेष की उपलब्धता के अनुपात में उनके आकार, गतिविधि और संपत्ति में वृद्धि हुई।'' वस्तुतः, एक अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति यह हो सकती है कि यदि राजाओं, पादरियों और सेना का प्रभाव कम होता, तो प्रागौद्योगिक युग में नगरों की संख्या और उनका विकास कहीं उच्चतर होता। इस तर्क के बाद, निरंकुश शासनों के अधीन संपत्ति ''हमेशा अत्यधिक असुरक्षित रही है।'' विशेष रूप से हानिकर और आर्थिक विकास का अंतर्रोध मनमाने ढंग से 'घातक' कर : ''तानाशाहों और छोटे तानाशाहों..., व्यवसायी नियंत्रित, सरकारों के अधीन विस्तृत रूप से वर्णित कर नीतियां कम अनुकूल होती हैं।'' इसलिए, मध्य युगों में यदि यूरोपीय सौदागरों की तानाशाहों के साथ सत्ता में हिस्सेदारी नहीं होती, तो यूरोप की शहरी आबादी सन् 1650 की तुलना में दोगुनी बड़ी होती, अन्यथा सभी समान, और अनुमानतः, औद्योगिक क्रांति और भी पहले हुई होती। इस तरह अति प्राचीन नगर भी अपने–अपने भीतरी क्षेत्रों की आर्थिक समृद्धि में सहयोग करने में सफल रहे और उन्होंने सहयोग किया। तथापि, संभव है कि औद्योगिकीकरण के पूर्व नगरों पर राजनीतिक और सैन्य सोचों का प्रभाव रहा हो, जिसमें व्यापार महत्वपूर्ण तो रहा हो, किंतु उसकी स्थिति उप–विजेता की हो। फिर भी, किसी नगर के मूल अथवा कुल–परंपरा ने अनुवर्ती सफलता अथवा विकास की श्रीवृद्धि की है; गोदाम अथवा भंडार नगरों की स्थिति स्पष्टतः राजनीतिक या सैन्य सोचों से पूरी तरह से पोषित नगरों से बहुत अच्छी थी। किंतु, इतिहास कामयाबी या नाकामी की गारंटी नहीं दे सकता था; औद्योगिकीकरण के बाद कुछ गोदाम नगर कमजोर हो गए जबकि 'राजनीतिक' सोच पर स्थापित कुछ नगर समृद्धि की राह पर बढ़ चले। ऐसे में एक बात तय है कि औद्योगिकीकरण क्रांतिकारी सिद्ध हुआ।

अपनी प्रगति जांचिए

3. ऐतिहासिक दृष्टि से किसने आर्थिक विकास और रोजगार के अवसरों का सृजन करते हुए शहरीकरण का मार्ग प्रशस्त किया है?

   (क) विकास ने (ख) समाजीकरण ने

   (ग) औद्योगिकीकरण ने (घ) बाजारीकरण ने

4. विश्व के लगभग कितने प्रतिशत शहरी क्षेत्र तटीय क्षेत्रों में हैं?

   (क) 20 (ख) 40

   (ग) 60 (घ) 75

3.4 शहरीकरण : उद्योग केंद्रित विकास

शहरीकरण और आर्थिक विकास आपस में दृढ़ता से गुंथे हुए हैं। वास्तव में शहरीकरण से विकास नहीं होता, किंतु शहरीकरण के बिना स्थायी आर्थिक विकास असंभव है। यह

टिप्पणी

शोधपत्र इस 'तथ्य' से शुरू होता है कि विकास और शहरीकरण के बीच प्रत्ययात्मक व अनुभवाश्रित संबंधों के बारे में हम क्या जानते हैं। अनुभवाश्रित साक्ष्य अंशतः संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विकसित देशों में ऐतिहासिक अनुभव पर आधारित है, किंतु मैंने लातीनी अमेरिका और पूर्वी एशिया के उन कुछ देशों के अनुभव से भी कुछ निकालने का प्रयास किया है, जो शहरीकरण की प्रक्रिया से गुजरे हैं और देश के रूप में जिन्होंने मध्य आय की स्थिति की ओर कदम बढ़ाया है। फिर हमने एक कार्यावली तैयार की है, जिसमें उन मुख्य समस्याओं पर विमर्श किया गया है, जिनके लिए शोध की एक अति सीमित संस्था है और जिन पर अधिक से अधिक शोध की जरूरत है ताकि उन समस्याओं और नीतिगत मुद्दों का पता चले जिनसे शहरीकरण की राह पर तेजी से चल रहे देशों को जूझना पड़ता है : चीन और भारत जैसे विशाल देश, और आम तौर पर दक्षिण तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के और अफ्रीका के उप–सहारा क्षेत्र के देश।

आज के विकसित देशों के ऐतिहासिक अनुभव तथा विकासशील देशों के मौजूदा अनुभव पर विचार करें, तो एक विशेषता सामने आती है, जो दोनों को एक दूसरे से अलग करती है और वह है देश की सरकार की नीति की भूमिका। आज के विकासशील देशों की राष्ट्रीय शहरीकरण की स्पष्ट नीतियां या फिर संसाधन आवंटन का संचालन करने वाली नीतियां हैं, जिन्हें नियंत्रणकारी और निर्देशात्मक शहरीकरण से प्रेरणा मिलती है। इसका पक्ष इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि संपूर्ण शहरीकरण आज लगभग 30 वर्षों की अवधि में आज के उन विकासशील देशों में शहरीकरण की अपेक्षाकृत अधिक धीमी गति के विपरीत अकसर होता है, जो 100 से 150 वर्षों तक सुस्त पड़े रहे – शहरीकरण की एक उत्तम गति जो किसी देश को 10 से 20 प्रतिशत शहरीकृत आबादी की स्थिति से निकाल कर उस स्थिति में ले जाती है जहां 60 से 85 प्रतिशत की आबादी शहरीकृत होती है। तीव्र शहरीकरण हानिकारक होता है, जिसमें लोगों की व्यापक गतिविधि, परंपरागत सांस्थानिक और सामाजिक संरचनाओं के स्थान पर एक औपचारिक कानूनी प्रणाली में आधुनिक संरचनाओं, और अपेक्षित वित्त तंत्रों के साथ स्थानीय स्तर पर तथा नगरों के बीच की आधारभूत संरचना में भारी निवेश की आवश्यकता होती है, और यह सब समय की एक छोटी अवधि में अपेक्षित होता है। राष्ट्रीय शहरीकरण नीतियों का होना भी विश्वव्यापी संवृद्धि का एक गहन चिंतन का विषय है – बीती शताब्दी के दौरान सरकारों के उनके अपने–अपने आकार में, राष्ट्र स्तर पर व्यय और निवेश के संदर्भ में। नीति की भूमिका से संबद्ध आज की शहरीकरण की प्रक्रिया में कई गंभीर मुद्दे हैं, जिनके समकक्ष अतीत में कम रहे हैं, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

शहरीकरण और विकास विषय की आंशिक समीक्षा करने से पहले, हम इस शोधपत्र के उत्तरार्ध में वर्णित शोध कार्यावली में मुद्दों की एक रूपरेखा तैयार करें, ताकि ज्ञात हो कि पूर्वार्ध में जिन बिंदुओं पर चर्चा की गई, उन्होंने उत्तरार्ध के लिए मंच तैयार किया। उत्तरार्ध में हम दो विषयों पर ध्यान देंगे। पहले विषय का संबंध विकास के स्थानिक स्वरूप से है। स्थान की दृष्टि से शहरीकरण को किस सीमा तक संकेंद्रित होना चाहिए – महानगरों में विकास पर, या स्थान की दृष्टि से बिखरे समूहों के विपरीत विशाल शहरी समूहों पर कितना ध्यान दिया जाना चाहिए। यह समस्या गंभीर है, जिसका सामना आज चीन और भारत को करना पड़ रहा है, हालांकि इससे संबद्ध कुछ उग्र सुधारवादी प्रस्ताव पटल पर हैं, जिन पर हम महानगरों में बसाई जाने वाली विशाल

टिप्पणी

आबादी के साथ असाधारण रूप से संकेंद्रित विकास के लिए विचार करेंगे। विकास जितना अधिक सघन होगा उतना ही अधिक ग्रामीण अपने गांवों का त्याग करेंगे और लंबी दूरी तय कर शहरीकरण के केंद्र बिंदु तक पहुंचेंगे। कोई सर्वोत्कृष्ट ढांचा जो भी हो, उस सर्वोत्कृष्ट ढांचे से अपसरण, महत्वपूर्ण अपसरण भी, कितने अनर्थकारी हैं? शहर के उच्च संकेंद्रण के लाभों और लागतों दोनों पर विचार और उनका मूल्यांकन कैसे करें; और किसी देश के उभरते राष्ट्रीय औद्योगिक संघटन के साथ वे किस प्रकार जुड़े हुए हैं? विशाल समूहों, या महानगरों, के भीतर स्थानिक विकास व प्ररूपों के सर्वोत्कृष्ट रूप और आधारभूत संरचना के निवेशों के स्वरूप क्या हैं?

दूसरे, स्थानिक आय में असमानता के निर्धारक तत्व कौन से हैं और भारी ग्रामीण–शहरी प्रवासन (पलायन) के अंतर्गत इस असमानता का क्रमिक विकास क्या है? कुजनेत्स–विलियम्सन की परिकल्पना (विलियम्सन, 1965) में प्रस्तुत यह स्वाभाविक क्रमिक विकास विकास और शहरीकरण के आरंभिक चरणों में विशेष रूप से क्षेत्रों में आय की बढ़ती असमानता है, जिसके बाद अगले चरणों में असमानता में कमी आई। एक प्रश्न यह है कि इस स्वाभाविक प्रक्रिया में उच्च वित्तीय सहायता प्राप्त दरों पर परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष निवेशों वाले कुछ खास नगरों और क्षेत्रों का 'पक्ष' लेने वाली राष्ट्र की सरकारी नीतियों ने इस असमानता की सीमा का अतीत के अनुरूप आज विस्तार किया है या नहीं। पिछली शताब्दी के दौरान देश के बाजारों में सरकारों की गहरी भूमिका के कारण यह विचार फिर उठता है कि यह अतीत के अनुरूप है। क्या निवेश की नीतियों में इस पक्षपात का क्षेत्रों के भीतर आय की असमानता और उसके विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है? क्षेत्रों के प्रति राष्ट्र के पक्षपात के साथ आय की गहन असमानता का एक संभावित तंत्र है पसंदीदा क्षेत्रों में स्थानीय शासन की नीतियां, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से लोगों के आगमन को रोकने का प्रयास करती हैं।

इस तंत्र में मुद्दों से संबद्ध एक विवरण है, जिसका विश्लेषण किया जाना चाहिए। प्रवासन पर लगे उन प्रतिबंधों का शहरी विकास के स्वरूप पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, जिनके कारण प्रवासियों को पसंदीदा क्षेत्रों से हटाकर कहीं और ले जाने के क्रम में उनका जीवन दुरूह हो सकता है। उदाहरणस्वरूप, हम यह देखने की सलाह देंगे कि हाल के इतिहास में लातीनी अमेरिका के नगरों का गरीबों की 'बस्ती' या झोपड़ी शैली का विकास ऐसे ही एक प्रतिबंध का और आज चीन में बार–बार लगाई जाने वाली रोक का एक उदाहरण है। इस प्रकार तेज रफ्तार विकास के सामने उभरती स्थानीय वित्त एवं संपत्ति (जमीन–जायदाद) बाजार संस्थाओं पर दबाव के चलते यह स्थिति जहां झोपड़ी के विकास पर शहरीकरण की प्रक्रिया के एक अनिवार्य अंग के रूप में विचार करने को प्रेरित करती है, वहीं यह कुछ हद तक सुविचारित, उन स्थानीय नीतियों से प्रेरित हो सकती है, जिनमें प्रवासियों को घटिया रहन–सहन के प्रस्ताव से उनके आगमन पर रोक लगाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

आय के स्तरों और शहरीकरण के बीच के संबंध का सृजन दो परस्पर संबद्ध रूपों में किया गया है। हैरिस–तोदरो (1970) के अनुसार पहले प्ररूप 'अचल' और नया आर्थिक भूगोल (क्रुगमैन, 1991, फुजिता, क्रुगमैन एवं वेनाबल्स, 1999) हैं। ये प्ररूप एक तकनीकी परिवर्तन अथवा उत्पादकता में अंतर के विचार पर जोर देते हैं, जो संसाधनों के कृषि या भीतरी क्षेत्र से किसी शहरी क्षेत्र अथवा मुख्य क्षेत्र में स्थानांतरण की राह खोल देता है। दूसरे हेंडरसन और वांग (2005) के शोध प्रबंध में वर्णित एक शहरी रूप

टिप्पणी

और विकास के प्ररूप हैं, जहां एक अंतर्जात आर्थिक वृद्धि के संदर्भ में, कोई देश खेती के रूप में शुरू कर सकता है, किसी निर्णायक बिंदु पर पहुंच सकता है, जहां से शहरीकरण की शुरुआत हो, और फिर बढ़ते शहरीकरण के साथ नगरों के एक तंत्र का विकास कर सकता है। विकास के तंत्र के एक अंतर्निहित आधारवाक्य के अनुसार विकास में राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी में सुधार शामिल है, जैसे मजदूर को खेती से हटाकर विनिर्माण और सेवा क्षेत्रों में काम पर लगाया जाता है। खेती से छुटकारा दो कारणों से होता है। एक है विनिर्माण में तकनीकी सुधारों के चलते विनिर्माण के प्रति मांग में परिवर्तन और विश्व में मांग के प्रतिमान जहां स्तरीय, कल–पुर्जों के हस्त–निर्मित उत्पादों को रखने के लिए निवेशक हमेशा सस्ते देशों की तलाश में रहते हैं। दूसरा है खेती की तकनीकी में श्रम बचत सुधार। दूसरे, विनिर्माण और सेवाओं को नीचे वर्णित संकुलन की अर्थव्यवस्थाओं का लाभ मिलता है, जिसके लिए उच्च घनत्व वाले क्षेत्रों या नगरों में जोरदार उत्पादन की आवश्यकता होती है।

एक तरफ जहां शहरीकरण और विकास के बीच यह संबंध है, तो वहीं दूसरी तरफ यह एक संतुलन है न कि संबंध। तीव्र शहरीकरण के अनेकानेक उदाहरण हैं, जैसे वर्ष 1970 से 2000 के बीच उप–सहारा क्षेत्र के देशों में (विश्व विकास रिपोर्ट, 2000), जहां प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं होती या फिर कम होती है, किंतु शहरीकरण होता है। विश्व विकास रिपोर्ट (डब्ल्यूडीआर) 2000 में उल्लेख है कि हो सकता है कि कुछ अफ्रीकी देशों में इस काल खंड में वृद्धि न होते हुए भी शहरीकरण अंशतः युद्ध और ग्रामीण आधारभूत संरचना के अनुरक्षण के अभाव के चलते ग्रामीण क्षेत्रों के एक दबाव से प्रेरित हो। इसी प्रकार, अर्थमितीय अध्ययनों से पता चलता है कि वृद्धि पर शहरीकरण का कारणात्मक प्रभाव तो पड़ता है, किंतु शहरीकरण पर ऐसा प्रभाव नहीं पड़ता (हेंडरसन, 2003)।

संकुलन (समुदाय) एवं विकास

नगरों में विकास को औद्योगिक समुदाय से जोड़े जाने के दो परस्पर संबद्ध प्रत्ययात्मक मुद्दे हैं। पहला दुरंतन और पुगा (2004) तथा रोसेंथल एवं स्ट्रेंज (2004) के अनुसार सीमित बाहरी लागत लाभ (Economies of scale) पर लिखा गया विशाल प्रत्ययात्मक और अनुभवाश्रित साहित्य है। दुरंतन और पुगा ने कुछ लघु कंपनियों के अंतर्निहित सीमित लागत–लाभ की समीक्षा की है, हालांकि ''रहस्य...हवा में (mysteries... पद जीम पत)'' का मार्शल (1890) का मत, अथवा ज्ञान का अति सीमित उद्रेक (फुजिता एवं ओगावा, 1982; लुकास एवं रोसी–हांसबर्ग, 2002) विचार का एक प्रबल विषय बना हुआ है। रोसेंथल एवं स्ट्रेंज के अनुसार, किसी खास उद्योग के लिए अपने स्थानीय उद्योग के आकार को दोगुना करने से कर्मचारी की उत्पादन क्षमता में 2 से 10 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है; इसके अतिरिक्त उसी स्थानीय उद्योग के लिए नगर के आकार को दोगुना करने से भी उत्पादन क्षमता में वृद्धि हो सकती है, खास कर उच्च प्रौद्योगिकी उद्योग के लिए। चीन, ब्राजील और कोरिया पर हुए शोध से पता चलता है कि विकासशील देशों में भी यह लागत लाभ अत्यंत महत्वपूर्ण है। उदाहरणस्वरूप कोरिया के मामले में हेंडरसन, ली एवं ली (2001) मानते हैं कि निजी उद्योग के आकार में वृद्धि से भारी उद्योग में और परिवहन उपकरण व उच्च तकनीकी जैसे आधुनिक विनिर्माण के क्षेत्र में उत्पादकता का बड़ा लाभ मिलता है, जबकि छोटे शहरों एवं नगरों में पाए जाने वाले वस्त्र एवं खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों जैसे परंपरागत उद्योगों में उद्योग के विस्तार से होने वाले सकारात्मक बाहरी लाभों का परिमाण अपेक्षाकृत कम होता है।

टिप्पणी

उच्च तकनीकी उद्योगों को छोड़ दें, तो इस बात के प्रचुर साक्ष्य नहीं मिलते कि इन विनिर्माण उद्योगों को अपेक्षाकृत बड़े आकारों के नगरों से वास्तव में कोई लाभ मिलता हो; बल्कि उन्हें लाभ तब मिलता है यदि वे बड़े समूहों में हों, या एक दूसरे से जुड़ी गतिविधियों में शामिल हों। जब किसी देश में उद्योग लगाए जाते हैं और उसका विकास होता है, तब ये उद्योग समूह की, या सामूहिक औद्योगिक गतिविधि की शक्तिशाली प्रेरणा का कार्य करते हैं।

विषय के दूसरे पहलू पर अपेक्षाकृत अधिक गतिक ध्यान दिया गया है। आर्थिक वृद्धि के प्रतिरूपों में नगरों को किसी अर्थव्यवस्था के लिए विकास या वृद्धि के वाहक के रूप में देखा जाता है – सघन संवादात्मक स्थान जहां ज्ञान का आदान–प्रदान होता हो, नवीन प्रक्रियाओं को प्रोत्साहन और उन्नत कौशलों का विकास (लुकास, 1988 व ब्लैक एवं हेंडरसन, 1999)। प्रतिरूपण और प्रयोगाश्रित कार्य में इसे सीमित (स्थानिक) ज्ञान संचयन सिद्धांत के अनुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है, जहां इस संचयन का मूल्यांकन किसी नगर के लोगों की शिक्षा के स्तर के अनुष्प किया जाता है। एक सचेत, हालांकि विवादास्पद शोध में, संयंत्र की उत्पादकता पर अनुदैर्घ्य आंकड़ों (Panel data) का उपयोग करते हुए, मोरेट्टी (2004) कहते हैं कि संयुक्त राज्य अमेरिका में विनिर्माण संयंत्रों के लिए किसी नगर में कॉलेज की शिक्षा प्राप्त लोगों के प्रतिशत में एक 1 प्रतिशत की वृद्धि से संयंत्र की उत्पादकता {टीएफपी} में 0.6 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है। बड़े नगरों के आर्थिक आधारों के घटक शोध एवं विकास (कार्लिनो, चटर्जी एवं हंट, 2007) और विज्ञापन (अर्ज़ग़ी एवं हेंडरसन, 2008) जैसे उद्योग पर कार्य से, जैसा कि हम आगे देखेंगे, पता चलता है कि उच्च घनत्व स्थानिक उद्योग के विस्तार से होने वाले सकारात्मक बाहरी लाभ और ज्ञान के उद्रेक को प्रोत्साहन देने में एक महत्वपूर्ण कारक होता है। विकासशील देशों में बड़े नगर प्रौद्योगिकी के आयात और अनुकूलन का केंद्र भी होते हैं, जिसके परिणामों का अभी तक गहराई से पता नहीं लगाया गया है।

सिद्धांत और प्रयोगाश्रित साक्ष्य से पता चलता है कि मान एवं ज्ञान एक दूसरे पर प्रभाव डाल सकते हैं, जिसके फलस्वरूप ज्ञान के संचयन से लागत लाभ में वृद्धि होती है। अभी तक ऐसा कोई शोध नहीं हुआ है, जिसमें इस परस्पर प्रभाव पर प्रत्यक्ष रूप से विचार किया गया हो। दुर्भाग्यवश, शोधकर्ता परस्पर प्रभाव अथवा ज्ञान के प्रभावों पर अलग–अलग विचार नहीं करते हैं। हेंडरसन एवं वांग (2007) के शोध में कुछ प्रत्यक्ष साक्ष्य मिलते हैं। उनके अनुसार ज्ञान संवर्धित परस्पर प्रभाव से नगर के आकारों का विस्तार होगा, क्योंकि नगरों के लागत लाभ का संवर्धन शहरी अपमितव्ययिता के अनुरूप होता है।

इस विमर्श में दो सिद्धांतों की कल्पना की गई है – नगरों के आकार सीमित हैं और नगरों के अलग–अलग औद्योगिक घटक हैं, और संबद्ध अलग–अलग आकार। ये सिद्धांत हमारे प्रतिरूपण और शहरी तारतम्य के ज्ञान के पहलुओं से निकलते हैं।

3.4.1 नगरों के सीमित आकार एवं विशेषज्ञता

बड़े पैमाने की लागत (लागत लाभ) से ज्ञात होता है कि औद्योगिक गतिविधि नगरों में क्यों संपिंडित होती है। दूसरी तरफ शहरी अपमितव्ययिता और अन्य कारक होते हैं, जो संकुलन के लाभों को बिगाड़ देते हैं, यही कारण है कि नगरों का आकार सीमित होता है। नगरों की परंपरागत प्रणालियों के विश्लेषण के बाद (हेंडरसन, 1974; देखें

टिप्पणी

दुरंतन एवं पुगा, 2004), प्रति कर्मचारी वास्तविक उत्पाद शहर के संपूर्ण रोजगार के एक आकलन के अनुसार स्थानीय मान का एक उत्साह और प्रेरणा में पनिवर्तनों के बीच संबंध का कार्य (Inverted U-shape function) कार्य मान लिया जाता है। रोजगार के निम्न स्तरों पर, समूहबद्ध कंपनियों की उच्च पैमाने की लागतों, और लदान की परिवहन लागतों में कटौती कम करने में आर्थिक बचतों का लाभ होता है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। किंतु, नगरों के सीमित आकारों (अर्थव्यवस्था में एक बड़े नगर की बजाय) की स्थिति में किसी स्थल पर नगरों के आकार में जैसे–जैसे वृद्धि होगी, ये बचतें समाप्त हो सकती हैं, आवागमन की लागतों और शहरी अपमितव्ययिता में वृद्धि होगी और किसी नगर के बाजार का विस्तार होगा, इस तरह प्रत्येक कर्मचारी की शुद्ध कमाई में बड़ी वृद्धि होगी और फिर नगरों के आकार के विस्तार के कारण उसमें गिरावट आएगी। नए आर्थिक भूगोल का विषय किसी नगर की आबादी के आकार को सीमित और उसके बढ़ने की गति को शिथिल करने या रोकने वाले कारक (Limiting factor) के रूप में बाजार के क्षेत्रीय आकार पर जोर देता है।

यह विशेषीकरण क्यों होता है? जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अनुभवाश्रित लेखन से पता चलता है कि विनिर्माण की व्यापक मानकीकृत गतिविधि को उसके अपने ही उद्योग समुदाय से लाभ मिलता है, स्थानीय समुदाय के सामान्य स्तर से कोई खास लाभ नहीं मिलता। उत्पादकता में सुधारों के लिए यदि केवल उसके अपने उद्योग की गतिविधि का स्तर कोई मायने रखता है, तो मानकीकृत विनिर्माण सामान्य स्थिति में उच्च मजदूरी और किराया वाले बड़े मैक्रो क्षेत्रों में स्थापित होना नहीं चाहेगा। वे छोटे विशेषीकृत नगरों में स्थापित होना चाहेंगे जहां शहरी आकार की अपमितव्ययिताओं (Disceonomies) की तुलना में उनके अपने उद्योग का लागत लाभ (लागत में कमी) अधिक से अधिक हो। तीव्र तकनीकी प्रगति के दौर से गुजर रहे उद्योगों की बड़े नगरों में स्थापित होने की प्रवृत्ति क्यों होती है, इस पर पूर्व में हुए हमारे विमर्श के अनुरूप वे उद्योग मैक्रो के बृहत्तर, अपेक्षाकृत अधिक विविधतापूर्ण क्षेत्रों का रुख कर सकते हैं, जिनमें उत्पादकता में स्थानीय संकुलन का योगदान भी होता है। इसके उदाहरणों में लॉस एंजलीस का विमान उद्योग या टोक्यो के इलेक्ट्रॉनिक्स का शोध एवं विकास विभाग शामिल है (फुजिता एवं इशी, 1994)। मानकीकृत और उच्च तकनीकी के विनिर्माण के स्थान के इस अंतर का संबंध नीचे वर्णित उत्पाद चक्र की धारणाओं से है।

बृहत्तर मैक्रो क्षेत्र और समग्र तारतम्य

छोटे विशिष्ट विनिर्माण शहरों के दूसरे छोर पर, और अब संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों में, सेवानिवृत्ति सेवाओं, स्वास्थ्य सेवाओं और बीमा जैसी उपभोक्ता सेवाओं की विशिष्ट गतिविधियों पर केंद्रित छोटे शहर, वे विशाल मीट्रो क्षेत्र हैं जो वस्तुतः वैश्विक वित्तीय और सेवा उन्मुख नगर हैं, जैसे न्यूयॉर्क या लंदन। इन नगरों में व्यक्तिगत उपयोग के छोटे पैमाने के उत्पादों समेत प्रायः सभी चीजों का उत्पादन होता है, किंतु कुल मिलाकर विनिर्माण के क्षेत्र में बहुत कम लोग काम करते हैं, और मुख्य व्यवसाय और वित्तीय गतिविधियों में काम करने वालों की संख्या बहुत अधिक है।

न्यूयॉर्क और लंदन जैसे नगरों का परिवेश आर्थिक–विधिक रूप का है – वैश्विक सेवाओं के लिए हितकर : अनुबंधों को लागू करने के लिए एक पारदर्शी विधिक प्रणाली, खुले प्रतिभूति बाजारों, पारदर्शी लेखा प्रथाओं और ऋण पात्रता–मूल्यांकन प्रणालियों (Credit rating systems) समेत एक पारदर्शी, प्रतिस्पर्धी वित्तीय क्षेत्र, आदि।

टिप्पणी

इन सुदृढ़ संस्थाओं के बिना, अंतरराष्ट्रीय व्यवसाय की प्रतिस्पर्धा में बने रहना कठिन है। ये नगर सांस्कृतिक केंद्रों का कार्य भी करते हैं, जहां निर्बंध संस्कृति का एक विशाल उद्योग होता है और फैशन डिजाइन, भवन निर्माण, कला और रंगमंच व सिनेमा के क्षेत्र में अकसर हजारों युवा लोग काम करते देखे जाते हैं। टोक्यो जैसे कुछ वैश्विक नगरों में उच्च तकनीकी का एक सुदृढ़ शोध एवं विकास का क्षेत्र भी होता है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है। ये सभी उद्योग उच्च कोटि के सृजन का द्योतक हैं और जेन जैकब्स (1969) के शहरीकरण के अर्थ–प्रबंध के सिद्धांत का लाभ उठाते हैं।

वैश्विक नगरों और छोटे व मझोले आकार के विशिष्ट नगरों के बीच विशाल मीट्रो क्षेत्रों का एक शृंखला समूह होता है, जो पूरी विशेषज्ञता भी प्राप्त कर लेना चाहते हैं, किंतु फिर भी उनमें उद्योग के नानारूप आधार होते हैं। मीट्रो क्षेत्र के आकार में जैसे–जैसे वृद्धि होती है, इन नगरों में सेवा गतिविधि के प्रति रुझान बढ़ता जाता है। इन प्रतिमानों और समय के साथ उनमें होने वाले परिवर्तन को समझने में हमें अभी लंबा वक्त लगेगा। किंतु हमने इन व्यापक सिद्धांतों के समग्र प्रयोगाश्रित व सैद्धांतिक प्रतिरूपण की दिशा में कुछ प्रगति की है।

विकास के साथ बदलता औद्योगिक संघटन

बड़े नगरों का हमारा विमर्श न्यूयॉर्क और लंदन पर केंद्रित रहा। आज ये सेवा उन्मुख नगर हो चले हैं, पर स्थिति हमेशा ऐसी नहीं थी; और संभव है कि आय के निम्न स्तरों वाले विकासशील देशों में, किसी देश के बड़े नगर बड़े स्तर पर विनिर्माण उन्मुखी हों, और ऐसे भी क्षेत्र हों जहां उस देश की सीमित सार्वजनिक आधारभूत संरचना पर्याप्त हो और भारी संख्या में उच्च कौशल प्राप्त कामगार काम करते हों। विनिर्माण की सघनता को अंशतः 'शिक्षा', और इस तथ्य के साथ काम करना होता है कि विकास का एक मार्ग निर्यात उन्मुखी विनिर्माण पर जोर दे सकता है। बड़े नगर, जो विदेशी निवेशकों के लिए सर्वाधिक अनुकूल होते हैं, विदेशी प्रौद्योगिकियों के प्रवेश द्वार का काम करते हैं, जिन्हें अपनाने के लिए स्थानीय कंपनियां उनसे संबद्ध जानकारी प्राप्त कर रही हैं। दुरंतन और और पुगा (2001) द्वारा निरूपित उत्पाद की दिशाओं और उत्पादन की विधियों, जिन पर ली (1989), ली एवं चो (1990) और मोहन (1994) ने शोध किया, को समझने की कोशिश कर रही कंपनियों के लिए वे प्राण रक्षक हैं।

जब किसी देश का आर्थिक विकास होता है, तब बड़े नगर कई कारणों से इस योग्य नहीं रह जाते कि वे मानक विनिर्माण स्थलों की अपेक्षाओं को पूरा कर सकें। पहला, कंपनियों, और समग्र रूप में उद्योग, ने विदेशी प्रौद्योगिकियों को चालू करने की जानकारी बहुत हद तक प्राप्त कर ली है, और बड़े नगरों के शैक्षिक परिवेश से अब बहुत लाभ नहीं लेतीं। ये नगर अत्यंत महंगे हो जाते हैं, जहां किराया और श्रम पर व्यय बहुत ज्यादा आता है। अन्य क्षेत्रों में आधारभूत संरचना और कौशल प्राप्त श्रमिक अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। और अंत में व्यवसाय सेवा क्षेत्र का विस्तार हो रहा है, जिससे उन नगरों में केंद्रीय नगर की भूमि के लिए बड़े नगरों के क्षेत्रों और विनिर्माण को बढ़ाने की मांग बढ़ रही है।

आलोड़न (विलोड़न/हलचल) एवं स्थिर आकार वितरण

विकासशील देशों के लिए, विनिर्माण की गतिविधियों के क्षेत्र के इस विकास के अध्ययन से दो संबद्ध किंतु पर्याप्त भिन्न बिंदु सामने आते हैं। पहला दुरंतन (2007) द्वारा

टिप्पणी

प्रतिपादित उद्योग विशेष के आलोड़न (विलोड़न/हलचल) का सिद्धांत और दूसरा यह सिद्धांत कि बड़े नगर लंबे समय तक आकार की अपनी सापेक्ष स्थिति बरकरार रखते हैं। जहां तक आलोड़न (विलोड़न/हलचल) की बात है, विकसित देशों में भी विशिष्ट नगरों में समय के साथ औद्योगिक गतिविधि में बदलाव आता है। दुरंतन के अनुसार, उद्योग ग्रॉसमैन–हेल्पमैन क्वॉलिटी लैडर मॉडेल (ग्रॉसमैन–हेल्पमैन गुणवत्ता सोपान प्रतिदर्श) के अनुरूप बदलाव करते हैं, किंतु इसमें अंतर–औद्योगिक परिवर्तन (Cross-industry innovation/अंतर–औद्योगिक परिवर्तन) हो सकता है।

ब्लैक एवं हेंडरसन का मानना है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में बीते 100 वर्षों के दौरान, हालांकि आकार की दृष्टि से शीर्ष के 5 प्रतिशत नगरों में नगरों की चरम संख्या में वृद्धि हुई है, किंतु 100 वर्षों पूर्व की उस श्रेणी के नगर आज वहीं हैं (इस स्थल पर जापान एवं फ्रांस के लिए देखें ईटन एवं इक्स्टीन (1997))। बड़ा बड़ा ही रहता है। किंतु यह स्थिति विशिष्ट उद्योगों के साथ नहीं है। जिन नगरों में किसी उद्योग विशेष में बड़ी संख्या में लोग काम करते हों, उसकी आगे चलकर भारी सापेक्ष क्षति होने की प्रबल संभावना रहती है।

शहरीकरण और विकास साथ–साथ चलते हैं। उत्पादन में शहरी लागत लाभ बड़े शहरों के अस्तित्व का आधार होते हैं, जबकि जीवन में अपव्ययिताएं (Diseconomies) उनके आकारों को सीमित रखती हैं, और यह कि एक शहरी तारतम्य होता है, जिसमें छोटे नगरों में विनिर्माण के अलग–अलग मानकीकृत उत्पादन और सेवा गतिविधियों में विशेषज्ञता हासिल करने की प्रवृत्ति होती है, जबकि बड़े नगरों के नानारूप आर्थिक आधार होते हैं, जो उच्च तकनीकी के विनिर्माण और कुछ व्यावसायिक सेवाओं पर केंद्रित होते हैं। किंतु शहरी विकास के कुछ गतिक स्वरूप भी होते हैं। आर्थिक विकास के आरंभिक चरणों में, बड़े नगरों में विनिर्माण उन्मुखी होने की प्रवृत्ति होती है, किंतु जैसे–जैसे विकास बढ़ता है, विनिर्माण का विकेंद्रीकरण होता है और वह भीतरी प्रदेशों में पहुंच जाता है और बड़े नगर सेवा उन्मुखी हो जाते हैं। अंत में बीते 50 वर्षों के दौरान ज्यादातर विश्व में बड़े पैमाने पर शहरीकरण प्रौद्योगिकी में आए अविश्वसनीय बदलावों–सुधारों और सरकार की एक अत्यंत व्यापक भूमिका के बावजूद, नगरों के आकार का सापेक्ष वितरण स्थिर है। और विश्व भर में शहरों के ज्यादातर लोग 3 मिलियन आबादी से नीचे मीट्रो क्षेत्रों और नगरों में रहते हैं। इन अनेकानेक तथ्यों और उनमें निहित सिद्धांतों के साथ, हम अब विकासशील देशों में हो रहे आज के शहरीकरण के प्रति अति मौलिक अनुत्तरित प्रश्नों से प्रेरित और इनमें से कुछ आज के कुछ उन देशों की सरकारों की सुदृढ़ भूमिका से प्रेरित एक शोध कार्य की सहायता लेंगे, जहां शहरीकरण द्रुत गति से हो रहा है।

शहरीकृत होते विश्व का एक कार्यक्रम

आइए, हम दो मुद्दों से जुड़े शोध पर चर्चा करें। इस शोध का ज्यादातर अंश नया है और विकासशील देशों में शहरीकरण के प्रति नीतिगत विचार–विमर्श की समुचित जानकारी देने हेतु ठोस तथ्य प्रस्तुत करने में अभी बहुत समय लगेगा। पहले मुद्दे का संबंध इस बात से है कि किसी देश में शहरी आबादी का संकेंद्रण स्थानिक तौर पर किस प्रकार होना चाहिए, जिसके जन सुविधाओं की स्थिति और निवेश तथा शहरी आबादी के प्रबंधन के संदर्भ में गहरे निहितार्थ हैं।

टिप्पणी

स्थानिक सघनता

एक शोध प्रबंध होता है, जिसमें अलग–अलग देशों में स्थानिक सघनता के निर्धारक कारकों की परख की जाती है। स्थानिक सघनता का वर्णन करने में शोधकर्ताओं ने सघनता के गिनी गुणांक (किसी आबादी की आय के वितरण का एक मापदंड / Gini measure), परेटो प्राचलों और हर्शमैन–हर्फिंदाह्ल मानों का उपयोग किया है। किंतु अतीत में देशों के किसी विशााल प्रतिदर्श के विश्लेषण हेतु ये मान या मापदंड उपलब्ध नहीं थे, इसलिए किसी देश में किसी खास आकार के सभी महानगरीय क्षेत्रों के लिए उन्हें जनसंख्या के विवरण की आवश्यकता होती थी। बल्कि शोधकर्ताओं को हाल तक केवल 1 या 2 केंद्रों में शहरी आबादी की सघनता – विशेष रूप से राष्ट्रीय शहरी जनसंख्या में सबसे बड़े महानगरीय क्षेत्र के अंश – पर निर्भर करना पड़ता था।

अदिस एवं ग्लेजर (1995) और डेविस व हेंडरसन (2003) के अनुसार मुख्य सिद्धांत यह है कि किसी देश की सरकार का उस देश के कुछ खास क्षेत्रों या नगरों के प्रति लगाव होता है, विशेष रूप से अनेकानेक सुविधाओं और सुअवसरों से युक्त राजधानी क्षेत्र के प्रति – पूंजी बाजारों की सुविधा, निर्यात एवं आयात के लाइसेंसों की सुगमता, बेहतर वित्तीय परिवेश आदि। उदाहरणस्वरूप, हेंडरसन (1988), हेंडरसन एवं कुंकोरो (1996) और ली एवं चो (1990), जेफरसन एवं सिंहे (1999) ने ब्राजील, इंडोनेशिया, कोरिया और चीन के प्रति इस पक्षपात के पहलुओं पर चर्चा की है। इनमें राजस्व या कर प्रेरित आचरण (अधिक से अधिक राजस्व या लाभ प्राप्त करने हेतु राजनीतिक प्रक्रिया का लाभ लेना) सबसे ऊपर है : लाइसेंस केवल नौकरशाह ही मुहैया करा सकते हैं, ऐसे में यदि वे लाइसेंस जारी करने की प्रक्रिया को विकेंद्रित नहीं करें, तो अधिक से अधिक राजस्व या कर अर्जित कर सकते हैं। और सरकारी पदाधिकारी उन स्थानों के जीवन की स्थिति में सुधार लाना चाहते हैं, जहां वे रहते हैं। किंतु सुविज्ञ नीति निर्धारक यह भी कह सकते हैं कि राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र उद्योग स्थापित करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त स्थान होता है।

नीति विमर्श

दुर्भाग्यवश सघनता, विशेष रूप से बड़े देशों में सघनता, की यह समस्या अत्यंत गंभीर है। चीन और भारत जैसे देश राष्ट्रीय स्तर पर शहरों में व्यापक वृद्धि पर एक नीति तैयार करने पर विचार कर रहे हैं। इन देशों पर विचार करने से पहले, हम इस पर गौर करें कि बड़े देशों, या बड़े क्षेत्रों में हम आज क्या देखते हैं। हम संयुक्त राज्य अमेरिका का उदाहरण लें, किंतु उदाहरण के लिए ध्यान रखें कि वही ढांचे ब्राजील, इंडोनेशिया और यूरोपीय संघ (EU) में प्रचलित हैं। अमेरिका का एक विशाल महानगर (सुपर सिटी) है, न्यू यॉर्क का महानगरीय क्षेत्र, जिसे यदि न्यू जर्सी, पेन्सिल्वेनिया और कनेक्टिकट से जोड़ दिया जाए तो उसकी आबादी 23 मिलियन (कंबाइंड स्टैस्टिकल एरिया {सीएसए}) होती है, जिसमें कई महानगरीय क्षेत्र आते हैं, जिनका कुछ संबंध पार–आवागमन से है। दूसरे क्षेत्र लॉस एंजलीस को पश्चिमी तट की सुपरसिटी (महानगर) कहा जा सकता है। यूरोपीय संघ (जहां की आबादी 18 मिलियन है। किंतु, अन्य 13 शहरी क्षेत्रों में आबादी 3.5 एम से 9.7एम है, जिसमें ज्यादातर की आबादी 5 से 6एम के बीच है। यूरोपीय संघ (EU) की स्थिति भी ऐसी ही है, इसमें सुपरसिटी लंदन क्षेत्र की आबादी 15एम हो सकती है।

टिप्पणी

चीन और भारत शहरीकरण के एक बहुत ही अलग किस्म के ढांचे पर विचार कर रहे हैं, जिसमें शहरीकरण ज्यादातर बड़े महानगरीय क्षेत्रों के एक सीमित विन्यास में होगा। चीन पर मैकिन्से ग्लोबल इन्स्टिट्यूट की एक रिपोर्ट (2008) http://www.mckinsey.com/mgi/publications/china_urban_summary_of_findings.asp है, जिस पर चीन गंभीरता से विचार कर रहा है। यह रिपोर्ट दो में से एक दृश्य की पुष्टि करती है, इस तर्क के साथ कि उनसे प्रति व्यक्ति यथार्थ आय में वृद्धि होगी, शहरीकरण के मौजूदा बिखरे ढांचों की तुलना में, वह विशालतम क्षेत्र, जहां चीन केवल दो सुपरसिटी का समर्थन करता है, जिसमें 17 मिलियन लोगों का समावेश हो। यदि चीन की मौजूदा नीतियों का अनुसरण किया जाए, तो इस रिपोर्ट के अनुसार चीन अमेरिका और शेष विश्व के समानांतर शहरी सघनता के संदर्भ में विकास करेगा।

इसकी बजाय, इस रिपोर्ट में दो वैकल्पिक दृश्यों पर विचार किया गया है। एक है सुपरसिटी का दृष्टिकोण, जिसके अनुसार चीन 15 सुपरसिटी का निर्माण करेगा, जिनमें प्रत्येक की आबादी औसतन 25 एम होगी। दूसरा है 11 महाकाय शहरी तंत्र क्षेत्रों की 'हब एंड स्पोक (धुरी एवं आरा)' प्रणाली जिसमें प्रत्येक की औसत आबादी 25एम होगी। जहां तक भारत की बात है, एक रिपोर्ट, जिसमें इसी दृष्टिकोण पर विचार किया जा रहा है, अभी शुरुआती चरणों में है। एक विचाराधीन प्रस्ताव यह है कि भारत में यथा अनुमानित 500 से 600एम की 60 प्रतिशत आबादी 12 सुपरसिटी क्षेत्रों में रहेगी अर्थात औसतन 25 से 30एम जिसमें विशालतम सुपरसिटी क्षेत्रों में 70 से 80एम लोग रहेंगे।

स्थानिक आय असमानता

ऐसे अनेकानेक शोध हुए हैं, जिनमें विभिन्न देशों की विकास प्रक्रिया में स्थानिक असमानता में होने वाले परिवर्तनों का विस्तृत उल्लेख मिलता है (जैसे कनबर, वेनाबल्स एवं वान, 2006 के शोध)। इस साहित्य में विलियम्सन–कुजनेत्स (1965) की परिकल्पना शामिल है, जिसके अनुसार जब किसी देश में विकास शुरू होता है, तो अंतर–क्षेत्रीय आय असमानता बढ़ने लगती है, चरम पर पहुंचती है और फिर गिरने लगती है, जैसा कि आज के विकसित देशों के ऐतिहासिक प्रमाण की वर्ष 2009 की डब्ल्यूडीआर की समीक्षा से पता चलता है। मान्यता यह है कि यह विकास संक्रमण का हिस्सा है। प्रौद्योगिकी और व्यापार अथवा अन्य नीति की प्रेरणा से कोई देश विनिर्माण में वृद्धि तथा विकास पर बल देते हुए विकास के मार्ग पर दौड़ना शुरू कर सकता है, जिससे ग्रामीण–शहरी प्रवासन तथा किसी क्षेत्र विशेष में लोगों का संकुलन होना स्वाभाविक है। किंतु यह कोई फौरन शुरू होने वाली प्रक्रिया नहीं है। ग्रामीण श्रम बाजार की तुलना में शहरी श्रम बाजार में अवसरों में अधिक वृद्धि होती है किंतु शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच मजदूरी में यथार्थ अंतर को दूर करने के लिए प्रवासन प्रतिक्रिया में समय लगता है। शहरीकरण की प्रक्रिया जितनी अधिक पूरी होगी, अंतर उतना ही कम होगा। ऐसा केवल इसलिए नहीं है कि लोगों के आवागमन के चलते अंतर स्वतः दूर हो गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में अपने आप विकास होता है और कृषि प्रौद्योगिकी श्रम से हटकर पूंजी और उच्च कौशल वाले कार्य पर केंद्रित हो जाती है। बैरो एवं सला–ई–मार्टिन (1992) का मानना है कि जापान में पिछड़े क्षेत्रों के आधुनिकीकरण के चलते क्षेत्रीय आय के अंतर समाप्त हो गए। यह भी हमारे पूर्व के विमर्श के अनुरूप है, जिसमें भीतरी क्षेत्रों में विकास के साथ होने वाले विनिर्माण के विकेंद्रीकरण का (किंतु आबादी के विकेंद्रीकरण का नहीं) उल्लेख किया गया है।

टिप्पणी

3.4.2 ग्रामीण–शहरी विभाजन

शोध और नीति का सरोकार यह है कि कुछ देशों में जब गांव के श्रमिक नगर जाते हैं और ग्रामीण क्षेत्र का उत्थान होता है, तो ग्रामीण–शहरी आय के उच्च अंतर केवल किसी संक्रमण प्रक्रिया का हिस्सा भर नहीं होते। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, नीतियों के ऐसे कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि किसी देश की सरकार का उसके एक या दो नगरों अथवा क्षेत्रों के प्रति पूर्वाग्रह होता है। दूसरा प्रमाण पसंदीदा क्षेत्रों की कुछ स्थानीय नीतियां हैं, जो पसंदीदा क्षेत्र में लोगों के प्रवाह को रोकते हुए देश के पूर्वाग्रह के नकारात्मक पक्षों को दूर करने की कोशिश करती हैं। दूसरी नीति को पूरा करने के क्रम में प्रवास पर रोक लगाई जाती है, जिससे पसंदीदा नगरों में प्रवासियों का रहन–सहन अत्यंत दुखदायी हो जाता है, फलतः नगरों के भीतर लंबे समय से रह रहे निवासियों और प्रवासियों के बीच एक खाई पैदा हो जाती है। तीसरी वे राष्ट्रीय नीतियां हैं, जिनके तहत श्रमिकों के आगमन और ग्रामीण और शहरी स्थितियों को प्रत्यक्ष रूप से नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है। ये अंतिम नीतियां ज्यादातर पूर्व की 'नियोजित' अर्थव्यवस्थाओं पर लागू होती हैं, जैसे चीन की अर्थव्यवस्था; किंतु बाजार में हुए सुधारों के चलते उनकी क्षमता धूमिल हुई है।

हम मुद्दों के एक चरम उदाहरण के रूप में चीन का दृष्टांत लें और फिर वापस इस महत्वपूर्ण शोध पर विमर्श करें। बीते 30 वर्षों के दौरान आरंभिक ग्रामीण–शहरी प्रवासन पर नियंत्रण के लिए चीन ने ज्यादातर अपनी घरेलू पंजीकरण (हुकोऊ) प्रणाली का उपयोग किया। नियंत्रण के दो पहलू थे : पहला ''क्षेत्र छोड़ो, गांव नहीं (Leave the land, not the village)'' यानी ग्रामीण उद्योग को अनुमति (कसबा एवं ग्रामीण उद्यम), शहरी उद्योगों में काम के लिए शहर भेजने की बजाय गांवों में खेती से इतर रोजगारों का सृजन करना और लोगों को वहीं रोकना। दूसरा, शहरीकरण हेतु, जो स्पष्टतः खास तौर पर उस क्षेत्र के संदर्भ में हुआ, जहां नगरों को पूंजी के आवंटन में असंगतियां थीं (जेफरसन एवं सिंहे (1999), नियंत्रण का उपयोग यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया कि शहरीकरण सीमित किंतु अलग–अलग नगरों में हो। ये योजनाएं कुछ हद तक हुकोऊ प्रणाली में लागू की गईं, जिसमें यह तय किया गया कि लोग किन क्षेत्रों में जाएंगे – अस्थायी अथवा स्थायी रूप से।

इन नीतियों के परिणाम पर शोधकर्ताओं ने बहुत कुछ लिखा है (जैसे, चैन, 2003 और फुजिता, हेंडरसन, कानिमोतो एवं मोरी (2004))। पहली बात तो यह कि चीन में संभवतः वांछित शहरीकरण नहीं हुआ है, वह इस क्रम में बहुत नीचे है। दूसरा, चीन के कई नगरों का आकार छोटा है, जैसा कि ऑ एवं हेंडरसन (2006ए, 2006बी) का मानना है। तीसरा, शहरी–ग्रामीण आय में भारी अंतर हैं। आय में ये अंतर व्यय में अंतर (नाइट, शी एवं सोंग, 2004) और शहर व ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमिकों की उपांतीय उत्पादन क्षमता में अंतर (ऑ एवं हेंडरसन, 2006ए) दोनों के अनुरूप हैं।

आज चीन में प्रवासन को सीमित करने की हुकोऊ प्रणाली की क्षमता कमजोर हो चली है। प्रवासन को कुछ चुनिंदा मुख्य नगरों, विशेष रूप से अति विशाल एवं पसंदीदा नगरों, तक सीमित करने के लिए चीन ने इसके स्थान पर उन नीतियों के समान एक सुस्पष्ट नीति अपनाई है, जो अन्यथा अस्पष्ट हो सकती हैं। इससे वहां के प्रवासियों का रहन–सहन दयनीय हो चला है। इसके फलस्वरूप जो स्थिति बनी है, उसे 'दोहरा विभाजन' ('Double Divide') कहा जाता है – शहरी–ग्रामीण विभाजन एवं नगरों के भीतर विभाजन। चीन में महानगरों के प्रवासियों (ग्रामीण क्षेत्रों के नागरिकों

टिप्पणी

के रूप में पंजीकृत) को सामान्यतया अधिकृत क्षेत्रों में घर नहीं मिल सकता; वे अधिकृत क्षेत्रों में किराए पर घर नहीं ले सकते; और खरीदने के लिए कोई घर रेहन पर नहीं ले सकते। वे 'शहरी गांवों' में किराए का मकान लेने को विवश होते हैं, जिनकी स्थिति भीड़ भरी झोपड़ी जैसी होती है, जहां जमीन पर अभी भी ग्राम शासन का नियंत्रण है। आम तौर पर इस तरह की जमीन नगरों के सीमाई क्षेत्रों में होती है, वैसे बीजिंग जैसे नगरों में इस तरह के गांव जहां–तहां बसे हुए हैं। दूसरा उनके बच्चों की पढ़ाई के लिए सीमित और महंगे स्कूल होते हैं, या फिर सरकारी स्कूलों की सुविधा नहीं होती; और वे अर्ध–कानूनी रूप से जमीन के नीचे बने स्कूलों में पढ़ने को विवश होते हैं, जहां शिक्षक अयोग्य होते हैं और स्कूलों के बंद होने की संभावना रहती है (क्वांग, 2004)। अंत में इन प्रवासियों को स्वास्थ्य बीमा, सामाजिक सुरक्षा, कार्य–प्रशिक्षण कार्यक्रम आदि जैसी सुविधाएं नहीं दी जातीं। बल्कि उनकी स्थिति अमेरिका में अवैध विदेशियों जैसी होती है, अंतर बस इतना है कि अमेरिका में ऐसे प्रवासियों के लिए कोई निर्धारित क्षेत्र नहीं होता, जहां वे रहें और उनके बच्चे सरकारी स्कूल जा सकें (वू एवं रोजेनबॉम, 2007)। हम चीन की इन सब बातों से अवगत हैं, पर यह पूरी तरह से नहीं जानते कि इनके दूरगामी परिणाम क्या होंगे। क्या शहरी गांव पूरी तरह से बस्ती (गरीबों की बस्ती) शैली के समुदाय का रूप ले लेंगे, नगर शासन से मुक्त, जो अवैध गतिविधियों और सामाजिक अशांति का गढ़ बन जाते हैं?

यदि हम भारत और अफ्रीका के उप–सहारा क्षेत्र के देशों में झुग्गियों के बेतहाशा हो रहे विकास पर विचार करें, तो हमें एक आसान–सा प्रश्न पूछना चाहिए कि झुग्गियों का यह विकास विकास का एक स्वाभाविक हिस्सा है या नहीं। इसका परिणाम एक विशाल अनौपचारिक क्षेत्र की मंजूरी के रूप में सामने आता है, जहां जन सुविधा सेवाओं और जन सेवाओं की कमी होती है। फिर जैसे–जैसे देश का विकास होता है, धीरे–धीरे अनधिकृत क्षेत्र की साफ–सफाई और सेवाएं मुहैया कराने का कार्य शुरू होता है और फिर उसे अधिकृत रूप दे दिया जाता है।

किंतु, इस शोधपत्र में उस विचार पर जोर दिया गया है कि सेवा की कमी अंशतः इरादतन हो सकती है – या फिर किसी कार्यनीतिक नीति का विकल्प, जैसे चीन में। पसंदीदा क्षेत्रों के निवासी यह नहीं चाहते कि शहर में उन्हें मिलने वाले पक्षपात के लाभ प्रवासियों की भीड़ के कारण नष्ट हो जाएं। ब्राजील के प्रति फेलर एवं हेंडरसन का मानना है कि वर्ष 1980 में प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था लागू होने से पहले जिन क्षेत्रों में प्रवासियों के बसने की संभावना थी, उनमें आवास व प्रतिवेशों को अपेक्षित सेवा मुहैया न कराना मीट्रो क्षेत्रों के भीतर स्थानीय जिलों की एक नीति थी – प्रवासियों को उनके जिलों से बाहर करने का प्रयास। स्थानीय आबादी में वृद्धि को रोकने में ये नीतियां सफल रहीं; और किसी मीट्रो क्षेत्र में इस तरह के क्षेत्रों ने समीपवर्ती अन्य जिलों की नीतियों की देखा–देखी युक्तिपूर्वक इन नीतियों को अपनाया।

यह परस्पर क्रिया शहरी विकास का एक मुख्य पहलू प्रतीत होती है, जिसमें देश की सरकारें पूंजी बाजार के आवंटन और लाइसेंस प्रदान करने के क्रम में नगरों को तो अपनाती हैं, किंतु रोजगार के लिए आने वाले लोगों के प्रवास को रोकने का प्रयास करती हैं, पर हमने केवल कुछ विषयों पर अध्ययन करना अभी शुरू किया है। यह परस्पर क्रिया वर्ष 1970 से 2000 के बीच उप–सहारा क्षेत्र के विरोधाभास से भी संबद्ध प्रतीत होती है – प्रति व्यक्ति आय की निम्न या शून्य वृद्धि के बावजूद तेजी से होता शहरीकरण और भारी शहरी झुग्गियों का विकास। इस स्थिति में शहरीकरण पूर्वाग्रह से प्रेरित हो

सकता है – ग्रामीण आधारभूत संरचना में निवेश अपेक्षा से कम और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्रों में सरकारी राजस्व का व्यय। और एक तरफ जहां झुग्गियां कुछ हद तक भारी बोझ तले दबी संस्थाओं और शहरी प्रबंधन की क्षमताओं का नतीजा हो सकती हैं, तो दूसरी तरफ उनमें प्रवास को रोकने का एक कार्यनीतिक संघटक भी हो सकता है। राष्ट्रीय आय की असमानता में इस दोहरे विभाजन का कितना योगदान है और आर्थिक संवृद्धि के परिणाम क्या हैं? हमारे पास इन प्रश्नों का वस्तुतः कोई उत्तर नहीं है।

आज के विकासशील देशों में शहरीकरण की यह प्रक्रिया गंभीर चुनौतियां और समस्याएं खड़ी करती है, विशेष रूप से उन गुरु गंभीर भूमिकाओं के समक्ष जो 21वीं शताब्दी में कुछ देशों की सरकारों ने इस प्रक्रिया में अपना ली हैं। एक तरफ जहां ज्यादातर देशों में शहरी आबादी व्यापक स्तर पर फैली हुई है, तो वहीं दूसरी तरफ ध्यान ज्यादातर बड़े शहरी क्षेत्रों में शहरों में बस रहे लोगों के आवास के विचार पर दिया जा रहा है। जहां तक शहरीकरण की प्रक्रिया पर आधारित हमारे ज्ञान की बात है, यह एक बुरे विचार जैसा लग सकता है, इन विशाल नगरों में जीवन की शहरी अपव्ययिता के बारे में हम बहुत कम जानते हैं, और उत्पादन में शहरी लागत लाभ के हमारे ज्ञान में बहुत अंतर हैं।

शहरीकरण की प्रक्रिया में बीते वर्षों के दौरान सरकार की इस बड़ी भूमिका के फलस्वरूप एक अनुकूल लगाव पैदा हुआ है, और पूंजी व वित्त आवंटन के मामले में कुछ खास क्षेत्रों तथा नगरों को सरकार की विशेष कृपा प्राप्त है, इन क्षेत्रों को वित्तीय लाभ दिया जाता है। यह लाभ भारी संख्या में प्रवासियों को खींच सकता है। आज की तारीख में देशों के कई कृपा प्राप्त नगर प्रवासियों के रहन–सहन की स्थितियों को दुरूह बनाकर इस प्रवास को रोकने का प्रयास करते हैं। इससे स्नेह प्राप्त और अन्य क्षेत्रों दोनों के लोगों के बीच और नगरों के भीतर लंबे समय से रह रहे निवासियों व प्रवासियों के बीच असमानता की विकराल समस्या जन्म लेती है। एक बार फिर हमें सामाजिक परिणामों का और इन प्रक्रियाओं के चलते होने वाली असमानता की उच्चतर सीमा का कोई ज्ञान नहीं है।

अपनी प्रगति जांचिए

5. किसके बिना स्थायी आर्थिक विकास असंभव है?

   (क) शहरीकरण के (ख) खेती के

   (ग) राजनीति के (घ) आस्था के

6. किसके आरंभिक चरणों में बड़े नगरों में विनिर्माण उन्मुखी होने की प्रवृत्ति होती है?

   (क) सामाजिक विकास के (ख) आर्थिक विकास के

   (ग) राजनीतिक विकास के (घ) पारिवारिक विकास के

3.5 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)

टिप्पणी

3. (ग)
4. (घ)
5. (क)
6. (ख)

3.6 सारांश

पूर्व में मानक वर्गीकरण में दूसरे दर्जे के अथवा गौण शहरी क्षेत्रों के रूप में प्रस्तुत शहरी क्षेत्रों की पुनर्व्याख्या मुख्य शहरी क्षेत्रों से निकटता और निर्भरता के आधार पर की जाती थी। इस निर्भरता का निर्धारण करने के लिए जनगणना से प्राप्त लोगों के घर के सामान्य पते और कार्यालय के पते का सहारा लिया जाता था। कार्यालय का पता एक सामान्य किंतु प्रभावकारी निर्धारक चर कारक प्रदान करता है, क्योंकि यह शहर की मौजूदा सीमाओं की व्याख्या करते समय छह मानदंडों में से कुछ के लिए एक प्रतिनिधि का काम करता है। शहरी क्षेत्र के मानक वर्गीकरण में ग्रामीण क्षेत्रों की दो श्रेणियाँ आती हैं– ग्रामीण केंद्र और अन्य ग्रामीण। ग्रामीण केंद्रों की व्याख्या जनसंख्या के आकार के आधार पर किया जाता है, एक समुचित ढंग से सुगठित क्षेत्र जिसमें 300 से 999 तक की आबादी हो और जो आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों (जिला भूभाग) की सहायता करता हो। उनकी एक स्पष्ट सांख्यिकीय सीमा (एक क्षेत्रीय इकाई) होती है, पर कोई कानूनी दर्जा नहीं होता। 'अन्य ग्रामीण' शहरी क्षेत्र के वर्गीकरण की शेष श्रेणी होता है और इसमें वे सभी क्षेत्रीय इकाई आती हैं, जो शहरी क्षेत्रों अथवा ग्रमीण केंद्रों में नहीं होतीं। इस श्रेणी में शहरी क्षेत्रों के बाहर के नाके (भीतर आने के मार्ग/पतली खाड़ियाँ), द्वीप, द्वीप का पानी और समुद्र का पानी होते हैं।

नगर एक विशाल मानव बस्ती होता है। इसकी व्याख्या प्रशासनिक स्तर पर निर्धारित सीमाओं वाली एक स्थायी और घनी बस्ती के रूप में की जा सकती है, जिसमें रहने वाले लोग मुख्य रूप से कृषि से इतर कार्य करते हों। नगरों में आम तौर पर आवास, परिवहन, साफ–सफाई, जन सुविधाओं, भूमि उपयोग और संचार की व्यापक प्रणालियां होती हैं। उनका घनत्व लोगों, सरकारी संगठनों और कंपनियों के बीच परस्पर कार्य–व्यापार को सरल बनाता है, और इस प्रक्रिया में कभी–कभी विभिन्न पक्षों को लाभ पहुंचाता है, जैसे सामग्री और सेवा वितरण की क्षमता में सुधार। इस संकेंद्रण के महत्वपूर्ण नकारात्मक परिणाम भी हो सकते हैं, जैसे शहरी उष्ण क्षेत्र (क्षेत्र का तापमान आसपास के वायुमंडल से किंचित अधिक रहता है) का निर्माण, भारी प्रदूषण और जलापूर्ति तथा अन्य संसाधनों का दबाव।

ऐतिहासिक दृष्टि से औद्योगिकीकरण ने आर्थिक विकास और रोजगार के अवसरों का सृजन करते हुए शहरीकरण का मार्ग प्रशस्त किया है। ये अवसर लोगों को नगरों की ओर खींच लाते हैं। शहरीकरण तब शुरू होता है, जब किसी क्षेत्र में किसी कारखाने अथवा कई कारखानों की स्थापना होती है, और इस प्रकार कारखानों में काम करने वालों की अत्यधिक आवश्यकता होती है। फिर कारखाने या कारखानों की स्थापना के बाद कामगारों की उत्पादों की मांग को पूरा करने के लिए भवन निर्माताओं, खुदरा विक्रेताओं और सेवा मुहैया कराने वालों का प्रवेश होता है। इसके फलस्वरूप रोजगार के और अवसर तथा आवास की आवश्यकता बढ़ती है, इस प्रकार किसी शहरी क्षेत्र की स्थापना होती है।

शहरीकरण और आर्थिक विकास आपस में दृढ़ता से गुंथे हुए हैं। वास्तव में शहरीकरण से विकास नहीं होता, किंतु शहरीकरण के बिना स्थायी आर्थिक विकास असंभव है। यह शोधपत्र इस 'तथ्य' से शुरू होता है कि विकास और शहरीकरण के बीच प्रत्ययात्मक व अनुभवाश्रित संबंधों के बारे में हम क्या जानते हैं। अनुभवाश्रित साक्ष्य अंशतः संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विकसित देशों में ऐतिहासिक अनुभव पर आधारित है, किंतु मैंने लातीनी अमेरिका और पूर्वी एशिया के उन कुछ देशों के अनुभव से भी कुछ निकालने का प्रयास किया है, जो शहरीकरण की प्रक्रिया से गुजरे हैं और देश के रूप में जिन्होंने मध्य आय की स्थिति की ओर कदम बढ़ाया है। फिर हमने एक कार्यावली तैयार की है, जिसमें उन मुख्य समस्याओं पर विमर्श किया गया है, जिनके लिए शोध की एक अति सीमित संस्था है और जिन पर अधिक से अधिक शोध की जरूरत है ताकि उन समस्याओं और नीतिगत मुद्दों का पता चले जिनसे शहरीकरण की राह पर तेजी से चल रहे देशों को जूझना पड़ता है : चीन और भारत जैसे विशाल देश, और आम तौर पर दक्षिण तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के और अफ्रीका के उप–सहारा क्षेत्र के देश।

शहरीकरण की प्रक्रिया में बीते वर्षों के दौरान सरकार की इस बड़ी भूमिका के फलस्वरूप एक अनुकूल लगाव पैदा हुआ है, और पूंजी व वित्त आवंटन के मामले में कुछ खास क्षेत्रों तथा नगरों को सरकार की विशेष कृपा प्राप्त है, इन क्षेत्रों को वित्तीय लाभ दिया जाता है। यह लाभ भारी संख्या में प्रवासियों को खींच सकता है। आज की तारीख में देशों के कई कृपा प्राप्त नगर प्रवासियों के रहन–सहन की स्थितियों को दुरूह बनाकर इस प्रवास को रोकने का प्रयास करते हैं। इससे स्नेह प्राप्त और अन्य क्षेत्रों दोनों के लोगों के बीच और नगरों के भीतर लंबे समय से रह रहे निवासियों व प्रवासियों के बीच असमानता की विकराल समस्या जन्म लेती है। एक बार फिर हमें सामाजिक परिणामों का और इन प्रक्रियाओं के चलते होने वाली असमानता की उच्चतर सीमा का कोई ज्ञान नहीं है।

3.7 मुख्य शब्दावली

- **निकटता** : समीपता, नजदीकी।
- **अनुषंगी** : संबद्ध, आसक्त, अनुरक्त।
- **शयनागार** : शयनकक्ष, सोने का कमरा।
- **न्यूजीलैंड** : एक छोटा, शांतिप्रिय और विकसित देश।
- **निर्धारित** : सुनिश्चित, तय।
- **वितत** : विस्तृत, चौड़ा, फैला हुआ।
- **हाता** : एहाता, घेरा, चहारदीवारी से घेरी हुई जगह, सूबा।
- **सृजन** : सर्जन, निर्माण, रचना, त्याग, छोड़ना।

3.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मुख्य शहरी क्षेत्र से आप क्या समझते हैं?
2. स्वतंत्र शहरी क्षेत्र क्या हैं?

टिप्पणी

3. नगर किसे कहते हैं?
4. क्या औद्योगिकीकरण के बाद शहरीकरण जारी रहता है?
5. नगरों के सीमित आकार से आप क्या आशय निकालते हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. शहरी केंद्रों और नगरों के वर्गीकरण का विश्लेषण कीजिए।
2. अलग–अलग प्रभावों वाले ग्रामीण क्षेत्रों की समीक्षा कीजिए।
3. शहरीकरण और औद्योगिकीकरण की विवेचना कीजिए।
4. औद्योगिक नगर की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. शहरीकरण और उद्योग केंद्रित विकास की व्याख्या कीजिए।

3.9 सहायक पाठ्य सामग्री

DeFilipps, James, *Unmarking Goliath: Community Control in the Face of Global Capital.* New York, NY: Routledge, 2003.

King, Anthony D., *Global Cities: Post-imperialism and the Internationalization of London.* New York, NY: Routledge, 1991.

Gans, Herbert J., *Urban Villagers: Group and Class in the Life of Italian-Americans.* New York, NY: The Free Press, 1982.

Gans, Herbert, *The Levittowners.* New York, NY: Columbia University Press, 1982.

Levitt, Peggy, *The Transnational Villagers.* Berkeley, CA: University of California Press, 2001.

Mollenkopf, John Hull, *The Contested City.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 1983.

Burgess, Ernest W., and Robert E. Park, *The City.* Chicago, IL: University of Chicago Press, 1984.

Sassen, Saskia, *The Global City: New York, London, Tokyo.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 2001.

Sugrue, Thomas J., *The Origins of the Urban Crisis: Race and Inequality in Postwar Detroit.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 2005.

Castells, Manuel, *The Castells Reader on Cities and Social Theory.* Edited by Ida Susser. Malden, MA: Blackwell Publishing Limited, 2002.

Wellman, Barry, *Networks in the Global Village: Life in Contemporary Communities.* Boulder, CO: Westview Press, 1999.

Whyte, William Foote, *Street Corner Society: The Social Sructure of an Italian Slum.* Chicago, IL: University of Chicago Press, 1993.

इकाई 4 बदलती व्यावसायिक संरचना और इसके प्रभाव

टिप्पणी

संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 व्यावसायिक संरचना : एक परिशीलन
  4.2.1 भारत की व्यावसायिक संरचना
  4.2.2 व्यावसायिक संरचना की असफलता के कारक
4.3 सामाजिक स्तरण (श्रेणी) पर प्रभाव
4.4 भारत में नगरों का विकास
4.5 आवास और झुग्गियों के विकास की समस्या
4.6 भारत की शहरी पर्यावरण से संबंधित समस्याएं
4.7 शहरी गरीबी
4.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.9 सारांश
4.10 मुख्य शब्दावली
4.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.12 सहायक पाठ्य सामग्री

4.0 परिचय

आर्थिक विकास से किसी अर्थव्यवस्था में नानारूप व्यवसायों का सृजन होता है। इन सभी विभिन्न व्यवसायों का विस्तार से तीन श्रेणियों में वर्गीकरण किया जा सकता है, जैसे प्राथमिक (पहले दर्जे का), द्वितीयक (दूसरे दर्जे का) और तृतीयक (तीसरे दर्जे का)। प्राथमिक व्यवसायों में सभी आवश्यक गतिविधियां आती हैं जैसे कृषि और उससे संबद्ध गतिविधियां अर्थात पशुपालन, वानिकी, मछली पालन, मुर्गी पालन आदि। दूसरे दर्जे (द्वितीयक) की गतिविधियों में विनिर्माण उद्योग शामिल है, जिसमें लघु एवं बृहद उद्योग व खनन आते हैं। गौण (तृतीयक) गतिविधियों में परिवहन, संचार, बैंककारी, बीमा, व्यापार आदि जैसी अन्य सभी गतिविधियां आती हैं। व्यावसायिक संरचना में इन नानारूप व्यवसायों में जनसंख्या के वितरण और समावेश का संकेत मिलता है।

प्रस्तुत इकाई में बदलती व्यावसायिक संरचना और इसके प्रभावों का सविस्तार वर्णन एवं विवेचन किया गया है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- बदलती व्यावसायिक संरचना के प्रभावों को समझ पाएंगे;
- व्यावसायिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों के संदर्भ में शहरीकरण के परिदृश्य का उल्लेख कर पाएंगे;

टिप्पणी

- समाज के संरचनात्मक परिवर्तन के बारे में जान पाएंगे;
- भारत में नगरों के विकास का वर्णन कर पाएंगे;
- आवास और झुग्गियों के विकास की समस्या का विश्लेषण कर पाएंगे;
- भारत की शहरी पर्यावरण से संबंधित समस्याओं का वर्णन कर पाएंगे;
- शहरी गरीबी की विवेचना कर पाएंगे।

4.2 व्यावसायिक संरचना : एक परिशीलन

अल्पविकसित देशों में, ज्यादातर लोग अभी भी कृषि और प्राथमिक क्षेत्र के अन्य कार्य करते हैं। जापान, इंग्लैंड, नॉर्वे जैसे कुछ विकसित देशों में भी मछली पकड़ना एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है और बड़ी संख्या में लोग यह व्यवसाय करते हैं।

जैसा कि विकास के अनुभव से ज्ञात होता है, किसी पिछड़ी अर्थव्यवस्था के क्रमिक विकास में उद्योगों और तीसरे दर्जे की गौण गतिविधियों के विकास के कारण प्राथमिक व्यवसायों का महत्व धीरे–धीरे कम होता जाता है। दूसरे दर्जे के क्षेत्र में, अपेक्षाकृत अधिक पूंजी–प्रधान होने के कारण बृहद उद्योगों में रोजगार के अधिक अवसर उत्पन्न नहीं हो सकते।

किंतु श्रम–प्रधान होने के कारण लघु और कुटीर उद्योगों, खनन गतिविधियों के विकास से बड़ी संख्या में रोजगार के अवसरों का सृजन हो सकता है।

पुनः तीसरे दर्जे के गौण व्यवसायों का भी अपना विशेष महत्व है, क्योंकि इनमें रोजगार की बहुत संभावना होती है। विकसित देशों में इस क्षेत्र की समावेशन क्षमता अत्यधिक है। विश्व विकास रिपोर्ट, 1983 से पता चलता है कि विकसित देशों के कुल जनबल के लगभग 45 से 66 प्रतिशत कामगार तृतीयक क्षेत्र में कार्य करते थे, किंतु भारत में कुल जनबल के केवल 18 प्रतिशत कामगार ही इस क्षेत्र में कार्यरत थे।

व्यावसायिक संरचना में परिवर्तनों का आर्थिक विकास से गहरा संबंध होता है। जब प्राथमिक क्षेत्र को छोड़ कर कामगार दूसरे और तीसरे दर्जे के क्षेत्रों में काम करने लगते हैं, तब आर्थिक विकास की दर और प्रति व्यक्ति आय के स्तर में वृद्धि होती है।

ए. जी. बी. फिशर के अनुसार, ''हम कह सकते हैं कि प्रत्येक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में रोजगार और निवेश का आवश्यक 'प्राथमिक गतिविधियों' से दूसरे दर्जे की सभी प्रकार की गतिविधियों और उससे भी अधिक तीसेर दर्जे के उत्पादन में निरंतर गमन हुआ है।''

व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन के महत्व के मद्देनजर कॉलिन क्लार्क कहते हैं, ''प्रति व्यक्ति शुद्ध आय का एक उच्च औसत स्तर तीसरे क्षेत्र के उद्योगों में कार्यरत कामगारों के उच्च अनुपात से हमेशा संबद्ध होता है, प्रति व्यक्ति निम्न शुद्ध आय हमेशा तीसरे क्षेत्र के उद्योगों में काम कर रहे कामगारों के निम्न अनुपात और प्राथमिक उद्योग के एक उच्च प्रतिशत से जुड़ी होती है।''

इस प्रकार आर्थिक विकास की एक उच्च दर का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए, श्रमशक्ति का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्थानांतरण बहुत जरूरी है। यह तभी हो सकता है, जब खेती में उन्नत तकनीकी को शामिल किया जाए, जिससे उसकी उत्पादकता में वृद्धि हो।

टिप्पणी

खेती की उत्पादकता में वृद्धि से अधिशेष कामगार खेती छोड़कर अन्य क्षेत्रों को अपना लेते हैं। श्रमशक्ति के क्षेत्र परिवर्तन की सीमा और गति बहुत हद तक अन्य क्षेत्रों की उत्पादकता की तुलना में प्राथमिक क्षेत्र की उत्पादकता में वृद्धि पर निर्भर करती है।

'सीए एवं एमबीए के लिए समता शोध अवसर', 'दूर–विपणन (Tele-Marketing) प्रबंधक', 'एक तकनीकी लेखक चाहिए', 'एक अनुपालन प्रबंधक की आवश्यकता है', 'एक ग्राहक देखभाल प्रबंधक (Customer Care Executive) चाहिए'। ये रोजगार के कुछ अवसर हैं, जो रोज सप्ताह के सभी दिन अखबारों में प्रकाशित होते हैं।

'प्रत्येक रविवार को अखबारों में, विवाह के वर्गीकृत विज्ञापन व्यावसायिक कोटियों के अनुरूप या कन्या अथवा वर के विवरण में दिखाई देते हैं, जिनमें रोजगार के विवरण का उल्लेख होता है अथवा उसे बढ़ा–चढ़ाकर दिखाया जाता है।'

'रोज सुबह किसी नगर अथवा शहर में कोई किसी दोराहे को पार करता है; या छोटे अथवा बड़े बाजार से गुजरता तथा कुदालों या बांस की टोकरियों अथवा हंसियों जैसे उपकरणों के साथ लोगों की एकत्रित भीड़ को देखता है। पहली नजर में यह कोई मेला प्रतीत होता है, किंतु यदि कोई व्यक्ति आधा घंटा भी वहां गुजारे, तो उसे पता चलेगा कि ये 'मजदूर हाट' हैं, जहां मजदूर के ठेकेदार आते और किसी न किसी फुटकर काम के लिए उन्हें मजदूरी पर रख लेते हैं।'

इन दृष्टांतों का वर्णन हम कैसे करें, क्या इसका अर्थ यह है कि हमारे समक्ष नई अर्थव्यवस्था में नए प्रकार की व्यावसायिक संरचनाएं हैं? या क्या भारत की अर्थव्यवस्था ने अपना आधार ग्रामीण क्षेत्रों की पुरातन परंपरागत अर्थव्यवस्था से हटकर एक नई अर्थव्यवस्था का रूप ले लिया है, जो अपेक्षाकृत अधिक शहर केंद्रित है? इन दृष्टांतों पर एक सूक्ष्म दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि कई अलग–अलग विषय एक दूसरे से जुड़े हैं और स्पष्ट समझ के लिए हमें इन विषयों पर विशेष रूप से विचार करना चाहिए–

क्या भारतीय अर्थव्यवस्था, जो अब तक कृषि आधारित थी, अब खेती से इतर अर्थव्यवस्था हो गई है?

क्या अर्थव्यवस्था में ग्रामीण क्षेत्र का योगदान शहरी क्षेत्रों के समान है या फिर शहरी क्षेत्रों का योगदान बड़ा है?

एक स्वाभाविक परिणाम के रूप में, क्या ऊपर वर्णित तथ्यों के चलते ग्रामीण एवं शहरी व्यावसायिक संरचना में बदलाव आया?

अंत में नए व्यवसायों के आलोक में, क्या पुरातन व्यवसायों के प्रति लोगों का नजरिया बदल गया है?

नई अर्थव्यवस्था में उभर कए सामने आ रही व्यावसायिक संरचनाओं को समझने के लिए यहां हम ऊपर वर्णित विषयों पर चर्चा करेंगे।

भारत की नई अर्थव्यवस्था

अर्थव्यवस्था को उदार और वैश्विक बनाने के ध्येय से वर्ष 1991 के मध्य से, भारत में अनेकानेक आर्थिक सुधार किये गए हैं। इस प्रयास में आंतरिक और अंतरराष्ट्रीय दोनों आर्थिक गतिविधियों को नियंत्रणमुक्त और उदार कर दिया गया। आंतरिक उदारीकरण में एक जटिल औद्योगिक लाइसेंस प्रणाली को समाप्त करना, पहले सरकार के लिए सुरक्षित कई क्षेत्रों को निजी निवेशकों के लिए मुक्त करना, सार्वजनिक क्षेत्र में स्टॉक

टिप्पणी

का कुछ विनिवेश, नियंत्रित मूल्यों को नियंत्रणमुक्त करना, और वित्तीय उदारीकरण शामिल हैं। बाह्य उदारीकरण के प्रयास में आयातों को नियंत्रणमुक्त करना, आयात शुल्कों में कटौती, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एवं प्रौद्योगिकी के आयात को प्रोत्साहन, भारतीय कंपनियों को विदेश से ऋण लेने की छूट और भारतीय स्टॉक बाजार को विदेशी निवेशकों के लिए खोलना शामिल हैं। इन नीतिगत बदलावों के अनेकानेक परिणाम सामने आए; कुछ चरम स्थिति में उच्चतर मूल्य के कारण नरम स्थिति में व्यय की ओर अंतरण पर आधारित और कुछ अन्य अनुभवाश्रित प्रमाण की चाल का उद्धरण देते हुए। उनका मानना है कि विदेशी प्रतिस्पर्धा और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से आवंटी और उत्पादक क्षमता में सुधार होगा। उनकी दृष्टि में व्यापार उदारीकरण से अर्ध–कुशल और अकुशल कामगारों की मांग बढ़ेगी, उनकी मजदूरी बढ़ेगी और फिर गरीबी कम होगी तथा आय के वितरण में सुधार होगा।

रोजगार और मजदूरी मुख्य शक्तिशाली वाहिकाएं हैं, जिनसे होकर उन्नत खुलापन और वैश्वीकरण के सामाजिक प्रभाव की अनुभूति होती है। भारत में संपूर्ण रोजगार के मूल्यांकन का एक तरीका श्रमशक्ति के उपलब्ध आंकड़ों का उपयोग करना और औपचारिक क्षेत्र से प्राप्त रोजगार के आंकड़ों को यह मानते हुए लागू करना है कि अनौपचारिक क्षेत्र में कोई प्रत्यक्ष बेरोजारी नहीं है। इस दृष्टिकोण के बाद ऐसा लगता है कि वर्ष 1980 के दशक में जहां रोजगार में वृद्धि सामान्यतः आबादी में वृद्धि से नीचे की दर पर होती थी, वहीं 1990 के दशक रोजगार की दर किंचित ज्यादा था, हालांकि ज्यादातर वृद्धि 1997 में हुई।

श्रमशक्ति के क्षेत्रीय वितरण कुछ आश्चर्यजनक बातें भी सामने आती हैं। वर्ष 1993–94 में संपूर्ण रोजगार में खेती और उससे संबद्ध क्षेत्रों के अंश 63.9 प्रतिशत में कमी आई और वर्ष 1999–2000 में यह घटकर 59.8 प्रतिशत हो गया। रोजगार यह भारी गिरावट आजादी के बाद पहली बार देखी गई। खेती से इतर इस रुझान में, जो वर्ष 1980 के दशक में भी देखा गया था, 1987–88 और 1993–94 के बीच अधिकांशतः सुधारों के आरंभिक वर्षों के दौरान स्थिरता आई। विनिर्माण में रोजगार में किंचित वृद्धि हुई और वर्ष 1993–94 के 10.7 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 1999–2000 यह 11.1 प्रतिशत हो गया जब व्यावहारिक दृष्टि से शहरी क्षेत्रों में संकेंद्रण शहरी क्षेत्रों में हुआ। श्रमशक्ति में सर्वाधिक वृद्धि निर्माण एवं व्यापार, होटलों और रेस्त्राओं में हुई और इसकी प्रति वर्ष चक्रवृद्धि दर दोनों क्षेत्रों में 6 प्रतिशत से अधिक रही। आज श्रमशक्ति का आकार के मामले में होटल एवं रेस्त्रां का क्षेत्र विनिर्माण के क्षेत्र को टक्कर दे रहा है।

बेरोजगारी के एक विश्लेषण से पता चलता है कि कामगारों में ग्रमीण पुरुषों और महिलाओं दोनों के रोगार की दर में तेजी से वृद्धि हुई। शहरी पुरुषों की बेरोजगारी में किंचित वृद्धि हुई हालांकि शहरी बेरोजगारी में वस्तुतः गिरावट आई। इस प्रकार हम देखते हैं कि कुल मिलकार वर्ष 1990 के दशक में विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की स्थिति बद से बदतर रही। यही नहीं सुधारों के परिणामों में नियमित श्रमिकों की अल्पकालिक नियुक्ति (Casualization) में वृद्धि और स्वरोजगार के अंश में गिरावट भी रही। रोजगार में अनियत कामगारों का 1988 का 31.2 प्रतिशत अंश वर्ष 1998 में बढ़कर 37 प्रतिशत हो गया। नियमित श्रमिकों की उत्तरोत्तर बढ़ती अल्पकालिक पुनर्नियुक्ति निश्चय ही श्रमशक्ति की अधिकांश वृद्धि की कारक सेवाओं – यहां तक

टिप्पणी

कि नियमित रोजगार के क्षेत्रों, छंटनी, बंदी में भी – के अनुरूप है, और तालाबंदी में भी वृद्धि हुई है।

नीचे के खंड में हम सुधारीकरण के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में श्रम भागीदारी दर (WPR) के मद्देनजर व्यावसायिक संरचना पर विमर्श करेंगे। राष्ट्रीय परिवार एवं स्वास्थ्य सर्वेक्षण (National Family and Health Survey (NFHS)) 1 व दो के दौरान संग्रहीत विवरण विश्लेषण का आधार है। एनएफएचएस 1 का तात्पर्य आरंभिक सुधार काल और एनएफएचएस 2 का आंतिम सुधार काल है क्योंकि इसका संचालन 1998–99 में किया गया।

श्रम भागीदारी अनुपात

श्रम भागीदारी अनुपात (WPR) की व्याख्या आबादी के अनुरूप पुरुष एवं महिला कामगारों के प्रतिशत (अंश) के रूप में की जाती है। आरंभिक विश्लेषण से पता चलता है कि इस काल में श्रम भागीदारी की दर में गिरावट आई थी। श्रम भागीदारी दर में सबसे बड़ी गिरावट 45 वर्ष और उससे ऊपर के आयु वर्ग में देखी गई। दूसरी तरफ, शहरी भारत में विशेष श्रम आयु वर्ग (25 से 54 वर्ष आयु वर्ग) में वृद्धि हुई थी। ऐसा देखा जाता है कि शहरी भारत में कौशलप्राप्त शारीरिक कार्य क्षेत्र में रोजगार सबसे ज्यादा है, जो नगर के आकार के परे समान रूप से उच्च है। राजधानी/बड़े नगरों में यह 11. 2 प्रतिशत, छोटे नगरों में 14 प्रतिशत और कस्बों में 12.7 प्रतिशत है। दूसरा सबसे ज्यादा प्रचलित रोजगार सौदागरों, दुकानदारों, थोक विक्रेताओं और खुदरा व्यापारियों के क्षेत्र में है जो महिला श्रम भागीदारी दर के लोगों में जिनका अनुपात सभी स्थानों में लगभग समान है। भारत के अपेक्षाकृत छोटे नगरों की तुलना में बड़े नगरों में लिपिक वर्ग और उससे संबद्ध क्षेत्र के कामगारों का अनुपात ज्यादा है। श्रमशक्ति में 10.3 प्रतिशत शारीरिक कौशल प्राप्त कामगार हैं, और उनके बाद अकुशल कामगार तथा मजदूर आते हैं। अन्य मुख्य व्यवसायों में, 6.5 प्रतिशत प्रषासन कर्मचारी, पदाधिकारी और प्रबंधन कर्मचारी तथा 2.1 प्रतिशत चिकित्साकर्मी हैं। भारत के महानगरों की कुल श्रमशक्ति में वास्तुकारों और अभियंताओं का अंश 1.3 प्रतिशत जबकि किसानों और खेती से जुड़े अन्य कामगारों का अंश 1 प्रतिशत से कम है।

किंतु, व्यावसायिक संरचना में पुरुष और महिला, जाति एवं धर्म की दृष्टि से पर्याप्त अंतर है। जहां तक भारत के बड़े नगरों में महिला कामगारों का विषय है, वे ज्यादातर घरेलू कार्य और उसके बाद लिपिक वर्ग तथा उससे संबद्ध अन्य कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त वे परिवारों में निम्न स्तर के कार्य करती हैं। व्यावसायिक संरचना में जाति और धर्म के आधार पर भी अंतर है। अनुसूचित जातियों के श्रमिक वर्ग का एक बड़ा तबका अन्यों की तुलना में अल्पार्जक कार्यों (Low paid jobsद्ध में लगे हैं। दूसरी तरफ, देखने में आता है कि कुशल हस्तचालित व्यापार, दुकानदारी और व्यापार के क्षेत्र में मुसलमानों का अनुपात हिंदुओं से ज्यादा है, जबकि प्रशसनिक, प्रबंधकीय, शिक्षण और लिपिक वर्गीय तथा उससे संबद्ध अन्य कार्यों हिंदुओं की संख्या अधिक है।

इस विश्लेषण से पता चलता है कि सुधारीकरण की अवधि के उत्तरार्ध में राजधानी/बड़े नगरों आदि को छोड़कर छोटे नगरों अथवा कस्बों और महिला–पुरुष प्रकरण में डब्ल्यूपीआर में बड़े आयु वर्ग (45 वर्ष एवं उससे ऊपर) में कमी आई है। किंतु युवा आयु वर्ग के मामले में यह सच नहीं है। डब्ल्यूपीआर में शहरी क्षेत्रों के प्रकार के

टिप्पणी

आधार पर अंतर से पता चलता है कि जहां बड़े/राजधानी नगरों में इसमें नाम मात्र की कमी आई है/यह स्थिर है, वहां समग्र डब्ल्यूपीआर में छोटे नगरों और कसबों में किंचित वृद्धि देखी गई। जहां तक महिला डब्ल्यूपीआर का संबंध है, इसमें ईपीआर (सुधारीकरण का पूर्वार्ध) और एलपीआर (सुधारीकरण का उत्तरार्ध) दोनों में वृद्धि हुई पर यह वृद्धि अशिक्षित और अल्पशिक्षित महिलाओं में अधिक हुई। यही अंतर परिवारों के जीवन सूचक में भी देखा जाता है। शहरी भारत में उच्च वेतन–मजदूरी वाले कार्य में लगे 10 प्रतिशत कामगारों की तुलना में श्रमशक्ति के लगभग 2/5 भाग लोग अल्प वेतन या अल्प मजदूरी वाले कार्यों (Low paid jobs) में लगे हैं। किंतु, अल्पार्जक कार्य में लगे लोगों का अनुपात छोटे नगरों और कस्बों की तुलना में बड़े/राजधानी नगरों में कम है। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों के आधार पर रोजगार में महिला–पुरुष अंतर से पता चलता है कि महानगरों में एक बड़ी संख्या में कामगार महिलाएं घरेलू कार्य करती हैं। महिलाओं के बीच कौशलपूर्ण शारीरिक कार्य सर्वाधिक प्रचलित है और उसके बाद शिक्षण–अध्यापन स्थान है। व्यावसायिक संरचना में जाति वर्ग के आधार पर अंतर के विश्लेषण से पता चलता है कि रोजगार में पर्याप्त अंतर है। वहीं, अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जातियों के एक बड़ी संख्या में लोग अन्य कार्यों की तुलना में अल्पार्जक कार्यों में लगे हैं। इसी प्रकार शहरी भारत में व्यावसायिक संरचना में धर्म का अंतर भी देखा जाता है।

4.2.1 भारत की व्यावसायिक संरचना

जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण किसी अर्थव्यवस्था के विकास के मान और प्राप्त विविधता को प्रतिबिंबित करता है। आइए, अब हम भारत की व्यावसायिक संरचना पर चर्चा करें। भारत की व्यावसायिक संरचना स्पष्ट रूप से देश की अर्थव्यवस्था में व्याप्त पिछड़ेपन को प्रतिबिंबित करती है।

वर्तमान शताब्दी के आरंभ के समय से भारत में व्यावसायिक संरचना का झुकाव प्राथमिक क्षेत्र की ओर था। बीते 80 वर्षों के दौरान (1901–1981), प्राथमिक क्षेत्र के व्यवसायों में लगे कामगारों का अनुपात अत्यंत स्थिर बना रहा, यानी लगभग 70 प्रतिशत लोग, और द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में यह अनुपात केवल 28 से 30 प्रतिशत के बीच था।

आइए, अब हम 100 वर्षों की इस अवधि के दौरान भारत की व्यावसायिक संरचना का एक विस्तृत विवेचन करें।

सन् 1901 से 1951 के दौरान व्यावसायिक संरचना

वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्द्ध के दौरान, भारत में व्यावसायिक संरचना में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। खेती का वर्चस्व बना रहा और इसकी समावेशन क्षमता में मामूली वृद्धि हुई– सन् 1901 की 66.9 प्रतिशत से 1951 की 69.7 प्रतिशत।

अंग्रेजों की वाणिज्यिक नीति ने इंग्लैंड के मशीन–निर्मित सामानों को भारत के बाजार में उतारने की शुरुआत का मार्ग खोल दिया, जिससे पारंपरिक भारत का हस्तशिल्प ध्वस्त हो गया। फलस्वरूप इस घरेलू उद्योग के श्रमिक अपनी आजीविका कमाने के लिए कृषि कार्य करने को विवश हो गए।

इन सभी स्थितियों के चलते कुल श्रमशक्ति में भूमिहीन खेतिहर मजदूरों का अनुपात सन् 1901 में 17 प्रतिशत से बढ़कर सन् 1951 में लगभग 20 प्रतिशत हो गया। वानिकी, पशुपालन, मछली पालन आदि जैसे अन्य संबद्ध गतिविधियों में काम कर रहे लोगों का प्रतिशत सन् 1901 के 4.3 प्रतिशत से घट कर सन् 1951 में मात्र 2.3 प्रतिशत रह गया।

इस अवधि के दौरान, औद्योगिक गतिविधि केवल बागान–उद्योग और वस्त्र–उद्योग तक सीमित रही। इसे आयातित यंत्रों ने भी सहारा दिया, जिसके फलस्वरूप सीमित उद्योग–आपूर्तिकार संबंध प्रभाव (सीमित विपणन सुविधा प्रभाव / पश्चानुबंधन / Backward lingage effects) और औद्योगिकीकरण के विस्तृत प्रभाव के प्रसार की कमी होती है। इस प्रकार औद्योगिकीकरण की इस प्रक्रिया का रोजगार के अवसरों के सृजन पर बहुत कम प्रभाव पड़ा। (बैकवर्ड लिंकेज प्रभाव और औद्योगीकरण के प्रसार प्रभाव की कमी थी।

इसके अतिरिक्त, अधोमुख और अति संकुलित खेती का विपणन योग्य अधिशेष सामग्री का कोई उल्लेखनीय अनुपात नही रहा जिससे औद्योगिक उत्पादों की मांग में वृद्धि हो सके। वहीं, तृतीयक क्षेत्र अपनी समावेशन क्षमता का विशेष संवर्धन नहीं कर सका।

सन् 1951 से 2000 के दौरान व्यावसायिक संरचना

स्वतंत्रता के बाद और खास तौर पर भारत में योजना–कार्यक्रम की शुरुआत के बाद श्रमशक्ति के एक तबके को खेती के क्षेत्र से द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में स्थानांतरित कर योजना–कार्यक्रम में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को गति देने और व्यावसायिक संरचना में बलाव लाने का भी प्रयास किया गया।

तदनुसार, दूसरी योजना में कहा गया कि ''वर्ष 1975–76 तक, समग्र श्रमशक्ति में कृषि श्रमशक्ति का अनुपात 60 प्रतिशत के आसपास कमी होनी चाहिए। किंतु ऐसा हो इसके लिए खनन एवं कारखाने के प्रतिष्ठानों में काम करने वालों की संख्या में कमोवेश चौगुना वृद्धि करनी होगी और योजनाओं में निवेश संरचना का इन आवश्यकताओं से समायोजन होना आवश्यक है।''

इन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए विकासशील अर्थव्यवस्था की खाद्य एवं कच्चे माल की जरूरतों को पूरा करने हेतु आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपना कर खेती की उत्पादकन क्षमता में वृद्धि करना आवश्यक था। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के वैकल्पिक अवसरों का सृजन कर खेती पर निर्भरता को कम करना भी जरूरी था।

भारत में खेती के उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि हेतु तथा अधिशेष श्रमशक्ति को खेती से हटाकर तृतीयक क्षेत्र में लगाने के लिए खेती में भूमि सुधार कार्यक्रमों के साथ–साथ ये सभी प्रौद्योगिकी कार्यक्रम लागू किये गए।

दूसरी तरफ, भारत में व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन लाने के लिए, रोजगार की एक अनुकूल नीति तैयार करने की आवश्यकता महसूस की गई। योजना कार्यक्रम के लागू होने के बाद, रोजगार के अवसरों में यथासंभव वृद्धि की आशा की जाती थी।

सुनियोजित आर्थिक (योजना परिव्यय) विकास में सिंचाई, बिजली, बुनियादी उद्यो, अन्य विनिर्माण एवं घरेलू उद्योग के विस्तार और सेवा क्षेत्र में तृतीयक क्षेत्र के कार्यों के विस्तार जैसे व्यापार, बैंककारी, बीमा, परिवहन एवं यातायात आदि के विस्तार

टिप्पणी

में तीव्र प्रगति का अनुमान था। किंतु योजना कार्यक्रम शुरू होने के दो दशकों बाद तब भारत में व्यावसायिक संरचना में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ।

हालांकि द्वितीयक व तृतीयक दोनों क्षेत्रों का विस्तार हुआ और उनकी समावेशन क्षमता में भी पर्याप्त वृद्धि हुई, किंतु रोजगार के अवसरों में वृद्धि दर श्रमशक्ति की वृद्धि दर से काफी दूर थी।

इसके अतिरिक्त, व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन को साकार करने की एक और महत्वपूर्ण शर्त अर्थात् खेती की उत्पादकता में सार्थक वृद्धि पूरी नहीं हो सकी। फिर प्राथमिक क्षेत्र की संबद्ध गतिविधियों और ग्राम उद्योग के विकास से खेती से बचे कामगारों को अन्य क्षेत्रों में काम में लगाने की दिशा में कोई उन्नति नहीं हुई। इन सारी स्थितियों के फलस्वरूप खेती पर कामगारों का दबाव बढ़ा और ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक स्तर पर बेरोजगारी फैल गई।

इस स्थिति के मद्देनजर, योजना आयोग ने अपनी पांचवीं योजना के दस्तावेज में उल्लेख किया कि, ''बड़े पैमाने पर खेती से श्रमिकों को स्थानांतरित कर खेती से इतर क्षेत्रों में लगाने के औद्योगिकीकरण के मौजूदा गतिक्रम को निरस्त किया जाता है। खेती के प्रति कामगारों के बढ़ते रुझान को देखते हुए उन्हें खेती में ही पूर्ण रोजगार मुहैया कराया जाना चाहिए।''

फिर वर्ष 1971 से 2000 तक की अगली अवधि के दौरान, प्राथमिक क्षेत्र के कामगारों के अनुपात में गिरावट आई और यह 56.7 प्रतिशत रह गया। एक और उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ कि काष्तकारों के अनुपात में कमी और वर्ष 1951 के 50 प्रतिशत से घट कर वर्ष 1991 में यह 38.4 प्रतिशत रह गया। वहीं इस दौरान कृषि मजदूरों की संख्या 20 प्रतिशत से बढ़कर 26 प्रतिशत हो गई।

इससे पता चलता है कि जमीन अमीर एवं खुशहाल किसानों के हाथों में चली गई और छोटे व उपांतीय किसान भूमिहीन कृषि मजदूर होकर रह गए। इसके अतिरिक्त, वर्ष 1971 से 2000 के दौरान द्वितीयक क्षेत्र में लगे कामगारों के अनुपात में किंचित वृद्धि हुई और यह 11.2 प्रतिशत से बढ़कर 17.5 प्रतिशत हो गया। वहीं, इसी अवधि के दौरान तृतीयक क्षेत्र में कार्यरत कामगारों के अनुपात में भी किंचित वृद्धि हुई और यह 16.7 प्रतिशत से बढ़कर 25.8 प्रतिशत हो गया।

वर्ष 1971 से 2000 तक की अवधि के दौरान द्वितीयक एवं तृतीयक दोनों क्षेत्रों की समावेशन क्षमता में समान रूप से 28 प्रतिशत से 43.3 प्रतिशत तक की वृद्धि हुई।

पुनः विश्व विकास रिपोर्ट (वर्ल्ड डिवेलपमेंट रिपोर्ट), 1995 से पता चलता है कि वर्ष 1993 में, खेती, उद्योग व सेवाओं में श्रमिकों का प्रतिशत क्रमशः 63.2, 14.2 और 22.6 रहा।

ऊपर उल्लिखित स्थिति के मद्देनजर हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि कामगारों का प्राथमिक क्षेत्र से द्वितीयक और तृतीयक क्षेत्रों में वस्तुतः कोई स्पष्ट संक्रमण नहीं हुआ। इस प्रकार भारत की योजना प्रक्रिया अपनी व्यावसायिक संरचना में किसी प्रकार का परिवर्तन लाने में पूरी तरह से असफल रही है।

टिप्पणी

4.2.2 व्यावसायिक संरचना की असफलता के कारक

1. भारत के योजनाकार ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास हेतु सुषुप्तावस्था में पड़ी विशाल श्रमशक्ति का उपयोग करने के साथ–साथ श्रमिकों की उत्पादकता का संवर्धन करने में भी असफल रहे। कमजोर संगठन के चलते, बेरोजगारी और अल्प–रोजगार की समस्या को कम करने कार्यक्रम बुरी तरह से असफल रहे।

   इसके अतिरिक्त, योजनाकारों ने ऐसा कोई गंभीर प्रयास भी नहीं किया, जिससे गांवों में खेती से इतर रोजगार की सीमा विस्तार हो।

2. भारत में भूमि सुधार प्रक्रिया अपने लक्ष्य को पूरा करने और छोटे किसानों को स्वामित्व दिलाने में बुरी तरह से असफल रही। ये सुधार बड़ी संख्या में उपांतीय किसानों के बीच जमीन के स्वामित्व का वितरण नहीं कर सके।

3. सरकार द्वारा मुहैया अन्य कई सुविधाओं जैसे सस्ता ऋण, विपणन, उर्वरक पर आर्थिक सहायता आदि का लाभ केवल अमीर किसानों को मिला, उपांतीय किसानों को इनका कोई लाभ नहीं मिल पाया जिससे वे अपनी खेती की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में असफल रहे।

4. योजनाकारों के उद्योगों का विकास करने के इन योजनाकारों के प्रयासों से पूंजीगत सामग्री क्षेत्र को बड़ी सहायता मिली, पर लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास को इनका बहुत लाभ नहीं मिल पाया। बृहत् अति पूंजी प्रधान उद्योग रोजगार के अधिक अवसरों का सृजन नहीं कर सके और इस प्रकार देश की व्यावसायिक संरचना पर उनका कोई लाभ नहीं मिल सका।

5. श्रमशक्ति की वृद्धि की उच्च दर भी एक महत्वपूर्ण कारक है, जो भारत में व्यावसायिक संरचना में सुधार या परिवर्तन के मार्ग में बाधा खड़ी करता रहा है।

   इसके फलस्वरूप कृषि क्षेत्रों में निर्भरता और प्रच्छन्न बेरोजगारी बढ़ी।

इस प्रकार इस मौजूदा स्थिति में भारत में व्यावसायिक संरचना में सुधार उपयुक्त तभी हो सकता है, जब देश अपने श्रम प्रधान क्षेत्रों का विकास करना शुरू करेगा, जिनमें प्राथमिक क्षेत्र के लघु एवं कुटीर उद्योग और उनसे संबद्ध गतिविधियां आती हैं, जैसे पशु पालन, मछली पालन, मुर्गी पालन आदि। इनके अतिरिक्त सेवा क्षेत्र भी हैं, जिनका विकास होना चाहिए ताकि कृषि से इतर रोजगार के अवसरों का सृजन हो। वहीं आधुनिक बृह उद्योग के क्षेत्र का विकास भी उतना ही आवश्यक है।

श्रम प्रधान इस इस विशाल क्षेत्र के विकास से ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में रोजगार व आय के स्तर का विकास होगा, जिसके फलस्वरूप बृहत् उद्योगों में निर्मित विभिन्न सामग्री और सेवाओं की समग्र मांग में वृद्धि होगी।

इस प्रकार श्रम प्रधान इस विशाल क्षेत्र के विकास से खेती इतर व्यवसायों के में लगे कामगारों के व्यावसायिक वितरण में परिवर्तन हो सकेंगे और बृहत क्षेत्र में विनिर्माण क्षेत्र के उत्पादों की मांग में वृद्धि से उसकी सहायता भी हो सकेगी। इन सब प्रयासों से बृहत उद्योगों को टूटने से बचाया जा सकेगा।

पिछले दो दशकों के दौरान श्रम के विभाजन में बदलाव आया है। तकनीकी परिवर्तन और विशेष रूप से सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (आईसीटी) में तीव्र प्रगति के फलस्वरूप उत्पादन प्रक्रिया का एक सुष्ठ विश्लेषित विवरण सामने आया है, जिसका

टिप्पणी

प्रभाव कई देशों में काम के संयोजन और रोजगार की संरचना पर पड़ा है (ब्रेसनाहन एवं अन्य, 2002; ऑटोर एवं अन्य, 2003)। आईसीटी ने विशिष्ट कार्यों की शैली को बदल दिया है और श्रमिकों के बीच संचार की नई संभावनाएं पैदा की हैं। यह न केवल कंपनियों के भीतर और मध्य बल्कि समस्त विश्व में भी देखा जाता है। कई मामलों में, उत्पादन के लिए भौतिक दूरी का महत्व कम हो जाता है क्योंकि दूरी पर संचार उतना ही प्रभावशील हो सकता है जितना कि वैयक्तिक रूप में। (ब्लूम एवं अन्य, 2009)। वहीं, आधुनिक उत्पादन प्रक्रियाओं में नगर मानवीय अंतःक्रियाओं के बढ़ते महत्व के कारण फलते–फूलते हैं (ग्लेजर एवं मरे, 2001)। कामगारों के कौशलों और कार्यस्थल के कार्यों के बीच की तुल्यता को कम करने हेतु इन रुझानों के साथ शोध की नई पद्धतियां भी शामिल की गई हैं। इन पद्धतियों की मुख्य विशेषता यह है कि श्रमिक कार्यों में अपने कौशलों का उपयोग मजदूरी के बदले करते हैं। कौशलों और कार्यों के बीच यह अंतर तब महत्वपूर्ण हो जाता है जब समय के साथ कार्यों के लिए कौशलों के कार्यभार का विकास हो रहा हो, क्योंकि अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक कार्यों में तकनीकी परिवर्तन के कारण परिवर्तन हो जाता है, जिससे अनंतरता की आवश्यकता में भी बदलाव आता है। आईसीटी के प्रभावों और कार्य के लिए बाहरी स्रोत से सहायता की नई संभावनाओं पर हुए हाल के शोधों से पता चलता है कि कुछ कार्य कंप्यूटरीकरण और बाहरी स्रोत से सहायता के प्रति अन्य माध्यमों से अधिक संवेदनशील रहे हैं (ग्रॉसमैन एवं रोसी–हैंसबर्ग, 2008) और यह कि इन विकासों का अध्ययन करने और उन्हें समझने के लिए एक कार्य–आधारित पद्धति अपनाए जाने की जरूरत है (बाल्डविन एवं निकूद, 2010; एसमोग्लू व ऑटोर, 2011; ऑटोर, 2013)।

अमेरिका के 168 बड़े महानगरीय क्षेत्रों में वर्ष 1990 से 2009 तक की अवधि के दौरान रोजगार के रुझानों को दर्ज करने के साथ–साथ उनकी व्याख्या करने हेतु शोधपत्र में कार्य–आधारित पद्धति अपनाई गई है। अमेरिका के वर्ष 2009 के कुल रोजगार का 75 प्रतिशत अंश इन्हीं नगरों में था। नगरों में रोजगार के रुझानों की व्याख्या अक्सर औद्योगिक संरचना में अंतरों के आधार पर की जाती है (एलिसन एवं ग्लेजर, 1997)। दुरंतन और पुगा (2001) तथा देसमेत व रोसी–हैंसबर्ग (2009) का मानना है कि महंगे क्षेत्रों में व्याप्त नए उद्योगों को ज्ञान के उद्रेक का लाभ मिलता है, जबकि अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व उद्योग अपेक्षाकृत कम महंगे क्षेत्रों में चले जाते हैं क्योंकि उत्पादन प्रक्रियाओं का अधिक मानकीकरण कर दिया गया है। किसी कार्य आधारित पद्धति का मुख्य लाभ यह है कि इसमें हमें इसका विश्लेषण करने का अवसर मिलता है कि रोजगार कार्यों और समूहबद्ध शक्तियों के बीच अन्योन्य क्रियाओं के कारण नगरों में किस प्रकार रोजगार में वृद्धि होती है। इस तंत्र को इस तथ्य की व्याख्या करने के लिए समझना अति आवश्यक है कि कुछ नगर प्रगति के मार्ग पर बढ़ चले हैं, जबकि कुछ अन्य नगरों को पतन का मुंह देखना पड़ा है।

सबसे पहले हम यह देखें कि नगरों से कार्य किस प्रकार जुड़े होते हैं। इसके लिए, व्यवसायों पर कार्यों के गट्ठरों के रूप में विचार किया जाता है। संयोजकता से पता चलता है कि कार्यों को अन्य मौजूद कार्यों से किस सीमा तक लाभ मिलता है और वे किस सीमा तक समूहबद्ध होते हैं। अनुभव के अनुरूप, कार्य संयोजकता के हमारे पैमाने में 326 (तीन–अंक) व्यवसायों और 142 (तीन–अंक) उद्योगों के व्यावसायिक सूचना तंत्र (ONET/Occupational Information Network) में वर्णित 41 रोजगार कार्यों

की निकटता अथवा सह–समूहन के महत्व का मूल्यांकन किया जाता है। ओनेट (ONET) में रोजगार कार्यों के महत्व के मद्देनजर सभी व्यवसायों का वर्गीकरण किया जाता है। अपने अनुभवाश्रित विश्लेषण में वर्ष 1990 से 2009 की अवधि के दौरान रोजगार में आए बदलावों को रखें। उद्योग, व्यवसाय और स्थानिक कार्य निविष्टि की एक सुसंगत सूची तैयार करने हेतु, हम अमेरिका के 168 बड़े नगरों का एक आंकड़ा कोष तैयार करें, जिसमें हम ओनेट (ONET) आंकड़ा कोष से रोजगार कार्य की आवश्यकताओं का प्रतिनिधि–विवरण लेकर उसे वर्तमान जनसंख्या सर्वेक्षण एवं जनगणना से जोड़ें। हमारे प्रयोगाश्रित विश्लेषण की सत्यता और क्षमता को सिद्ध करने के लिए 2 कार्य संयोजन के वैकल्पिक मापदंडों के आकलनों और नगरों, कामगारों व व्यवसायों के वैकल्पिक खंडों और भागों की सहायता ली जा सकती है।

हमारे मुख्य परिणामों का सार–संक्षेप इस प्रकार है। कार्य संयोजकता की माप प्रक्रिया में पिछले दो दशकों के दौरान अमेरिका में रोजगार के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों के एक बड़े भाग की व्याख्या की गई है। हम दृढ़तापूर्वक सूचित करते हैं कि वर्ष 1990 से 2009 तक की हमारी विश्लेषण की अवधि के दौरान कार्य संयोजकता में एक मानक विचलन की वृद्धि का संबंध रोजगार में 30 से 45 प्रतिशत की वृद्धि से है। जिन नगरों में संबद्ध कार्यों का अंश अधिक है, उनका विकास आरंभिक रोजगार, स्थान के अभिलक्षणों और अन्य समाश्रयी कारकों के अनुरूप अन्य नगरों की तुलना में अधिक तेजी से हुआ है। नगरों के कार्य संयोजन, जैसे कार्यों की स्थानिक सघनता, के अन्य मापदंडों में, अमेरिका में इस अवधि के दौरान हुए रोजगार के ढांचों में परिवर्तनों की व्याख्या नहीं की गई है। हमारे प्रयोगाश्रित विश्लेषण के परिणाम पुष्ट हैं, जिनमें रोजगार अथवा उद्योगों की संरचना (ग्लेजर एवं अन्य, 1992; एलिसन व ग्लेजर, 1997; ग्लेजर एवं कर, 2009) में अंतरों, सामाजिक कौशलों के महत्व में वृद्धि (बैकोलॉड एवं अन्य, 2009), और रोजगार के कुछ अंशों का नेमीकरण व कंप्यूटरीकरण (ऑटोर एवं अन्य, 2003) का समावेश है। इसके अतिरिक्त, इस अवधि में रोजगार में हुए परिवर्तनों की व्याख्या में कार्यों में संयोजकता को विनिर्माण या सेवा के कुछ उद्योगों अथवा किन्हीं कौशल समूहों तक सीमित नहीं रखा गया है।

शोधपत्र का संबंध अनुभवजन्य शोध की अपेक्षाकृत एक नई और प्रगतिशील प्रणाली से है, जिसमें एक कार्य आधारित पद्धति का उपयोग करते हुए रोजगार व मजदूरी की संरचना में परिवर्तनों को दर्ज कर उनकी व्याख्या की गई है। कार्य आधारित इस पद्धति में रोजगार कार्यों को कामगारों के कौशल प्रदान किये जाते हैं। रुझानों के विश्लेषण की इस प्रक्रिया में ऑटोर एवं अन्य (2003), ऑटोर व अन्य (2006), बोरघैंस एवं तर वील (2006), गूस व मेनिंग (2007), गूस एवं अन्य (2009), फिरपो एवं अन्य (2009), ब्लाइंडर (2006) और क्रिसक्युआलो एवं गैरिसानो (2010) जैसे शोधकर्ताओं के शोधपत्रों का योगदान है। क्षेत्रीय और वृत्तिमूलक विशेषताओं में भेद करते हुए दुरंतन एवं पुगा (2005) ने रोजगार की एक संबद्ध समस्या को अपना विषय बनाया है। एसमोग्लू और ऑटर (2011) इन अंतरराष्ट्रीय रुझानों की समीक्षा करते हैं और मानते हैं कि कार्यों को दोबारा प्रदान किये गए कौशलों पर बाजार मूल्यों में परिवर्तनों के नियंत्रण या फिर प्रौद्योगिकी की प्रगतियों, व्यापार या कार्यों के संचालन में बाहरी सहायता के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में कार्यों की मांग में होने वाले परिवर्तन के कारण रोजगार कार्यों को कामगार के कौशल प्रदान करते समय एक कार्य आधारित पद्धति सहायक होती है।

टिप्पणी

पृष्ठभूमि एवं अनुभवजन्य पद्धति

अमेरिका में वर्ष 1990 से 2009 तक की अवधि के दौरान रोजगार में परिवर्तनों पर किसी नगर की आरंभिक कार्य संरचना के प्रभाव का निर्धारण करने के पहले, इस खंड में पहले अनुभवाश्रित विश्लेषण के पीछे की अंतर्दृष्टि पर विमर्श किया जाएगा। फिर हम एक प्रयोगाश्रित मापदंड में इस विचार की व्याख्या करेंगे, जिसका उपयोग रोजगार में होने वाले परिवर्तनों की जांच करने में किया जाएगा।

मुख्य सिद्धांत

एक बड़ी संख्या में कार्यों का संबंध उत्पाद के उत्पादन से होता है। इन कार्यों का किसी क्षेत्र विशेष की किसी कंपनी विशेष के कामगारों में बंटवारा किया जाता है। कामगारों के कार्य अलग से पूरे नहीं किए जा सकते, किंतु वे अर्थव्यवस्था में कामगारों के व्यवसायों में भरे रहते हैं। यही नहीं, कुछ कार्यों (जैसे योजना) का निर्गम कुछ अन्य कार्यों (जैसे उत्पादन) की निविष्टि होते हैं। कार्य कोई एक कामगार पूरे कर सकता है, किंतु उन्हें अलग–अलग कामगार भी कर सकते हैं। कोई कंपनी सारे कार्यों को कंपनी के भीतर ही पूरा कराना चाह सकती है, किंतु कुछ कार्यों को पूरा करने के लिए बाहरी सहायता भी ली जा सकती है (Outsourcing)। अंत में, उत्पादन प्रक्रिया की व्यवस्था किसी एक क्षेत्र में की जा सकती है, किंतु उत्पादन विभिन्न क्षेत्रों में या विश्व भर में भी किया जा सकता है। कार्यों का कामगारों, कंपनियों और क्षेत्रों में बंटवारा संयोजन और उत्पादन लागतों के बीच आदान–प्रदान पर निर्भर करता है। एक अधिक व्यापक विभाजन से उत्पादन की लागतों में लाभ का सृजन होता है : प्रत्येक कार्य सर्वोत्कृष्ट स्थान में अति सक्षम कंपनियों के सर्वाधिक सक्षम कामगार कर सकते हैं। किंतु कार्यों के बीच संयोजन की लागतों में श्रम के विभाजन के साथ वृद्धि होती है। कार्य की विषय वस्तु का मूल्यांकन 326 व्यवसायों में कामगारों के 41 कर्यों के समानांतर करेंगे और इन लागतों और लाभों के बीच आदान–प्रदान पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

समस्त क्षेत्र में कार्यों के विभाजन का निर्धारण संयोजन व उत्पादन लागतों के कीच आदान–प्रदान के आधार पर किया जाता है। एक तरफ, किसी एक स्थान में कार्यों के निष्पादन से परिवहन, यातायात व संचार और संयोजन की अन्य लागतों में बचत होती है और सकारात्मक समूहन शक्तियों का उपयोग होता है। वस्तुओं और सेवाओं के भौतिक वितरण के परे, उत्पादन के लिए संयोजन, परामर्श और योजना की जरूरत होती है, जो समीपता में सहज ही मिल जाते हैं। अंतगर्भित, अकूटीकृत ज्ञान का संचार की अन्य तकनीकों की बजाय आमने–सामने आदान–प्रदान आसानी से हो जाता है। इसके अतिरिक्त आमने–सामने संपर्क से प्रोत्साहन संबंधी समस्याओं के समाधान और मानव पूंजी की लागत या लाभ को समझने में सहायता मिलती है (स्टॉर्पर एवं वेनाबल्स, 2004)। दूसरी तरफ, अलग–अलग कार्यों के अलग–अलग स्थानों में निष्पादन से मध्यवर्ती उत्पादों के उत्पादन में लागत का लाभ मिलता है। क्षेत्र में कामगार के कार्यों का परिणामी विभाजन इन आर्थिक शक्तियों पर निर्भर करता है।

संयोजन एवं उत्पादन लागतों के बीच स्थानिक आदान–प्रदान अलग–अलग कार्यों में अलग–अलग रूप से होता है। कुछ कार्यों की कुछ अन्य कार्यों के साथ मिल जाने की प्रवृत्ति होती है। कार्यों की इस प्रवृत्ति के कारण संयोजन लागतों में बचत होती है और समूहन का लाभ मिलता है। कुछ कार्यों के कहीं अन्यत्र निष्पादन का संभावित लागत लाभ इस प्रभाव का बराबर भार अथवा बल से प्रतिकार करता है। कुछ कार्यों को

टिप्पणी

एक दूसरे से दूर रखा जाए या नहीं, यह समीपता और लागत लाभों के बीच संतुलन पर निर्भर करता है। विशेष रूप से, कार्यों को एक दूसरे से दूर रखा जाए या नहीं यह श्रम विभाजन के तीन पक्षों पर निर्भर करता है।

पहला, यह समस्त क्षेत्र में कार्यों के विभाजन के लाभों के मुकाबले किसी कार्य विशेष के संयोजन में लगे समय पर निर्भर करता है। बीते कुछ दशकों के दौरान प्रौद्योगिकी में आए परिवर्तन के चलते इस संतुलन में बदलाव होते रहे हैं। संचार की उन्नत प्रौद्योगिकी कार्यों को एक दूसरे से दूर रखने में लगने वाले समय में कमी करती है (दुरंतन एवं जयेत, 2001)। इसके अतिरिक्त, तकीनीकी में सुधार का कार्य के संयोजन पर प्रभाव पड़ता है। उत्पादन समय के विभाजन में सुधार या बदलाव हो सकता है, जिससे कामगारों और क्षेत्र में कार्यों के विभाजन के निर्णय में परिवर्तन किया जा सकता है (बोरघैंस एवं तरवील, 2004; गैरिसाना एवं रॉसी–हैंसबर्ग, 2006)। अंत में, कामगारों के कौशल कंप्यूटर तकनीक के लिए पूरक या स्थानापन्न के रूप में कार्य कर सकते हैं। कुछ कार्य कंप्यूटर तकनीक के हवाले किये जा सकते हैं, इससे अन्य कार्यों के निष्पादन में भी सुधार होता है (बोरघैंस एवं तरवील, 2004)।

दूसरा, यह कामगारों के कार्य पर निर्भर करता है। कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिनका विपणन नहीं होता और वे वाजिब लागतों पर एक दूसरे से दूर नहीं किए जा सकते (जैसे कार्यालयों की धुलाई–सफाई)। इसलिए, हमें सभी नगरों में ऐसे अनेकानेक बुनियादी कार्य दिखाई देते हैं, जो एक दूसरे के निकट ही किये जा सकते हैं। यह वैसा ही तर्क है, जो पूर्व में ऑटर एवं अन्य (1998) के प्रकरण में देखा गया है, जिनके अनुसार अल्प–कुशल कामगारों के श्रम–बाजार के परिणामों पर कंप्यूटरीकरण का हानिकर प्रभाव पड़ता है, किंतु निचले सिरे पर नहीं क्योंकि निचले स्तर के कुछ सेवा व्यवसायों पर तकनीकी में इस प्रकार के परिवर्तन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

अंत में, समूहन शक्तियों के कारण कार्य एक दूसरे से जुड़े होते हैं। सहयोग के बंटवारे और सूचना एवं ज्ञान के आदान–प्रदान के संदर्भ में संयोजन लागतों में तब कमी आती है, जब कार्य एक साथ किये जाते हैं (दुरंतन एवं पुगा, 2004)। जिन कार्यों के लिए सहयोग का बंटवारा और सूचना व ज्ञान का आदान–प्रदान होता है, वे महत्वपूर्ण होते हैं और अन्य कार्यों के लिए पूरक का कार्य करते हैं तथा क्षेत्र में एक दूसरे से जुड़े होते हैं। जिन कार्यों के लिए उच्च स्तर के कौशल की जरूरत (ग्लेजर एवं रोसेंजर, 2010), जिनके लिए अधिक संयोजन और आमने–सामने की परस्पर क्रियाओं (गैस्पर एवं ग्लेजर, 1998; ब्लुम एवं गोल्डफार्ब, 2006) की आवश्यकता और जिनके लिए ज्ञान (वॉन हिप्पेल, 1994) की जरूरत होती है, यह बात विशेष रूप से उन कार्यों के प्रति सही प्रतीत होती है। बैकोलॉड एवं अन्य (2009) और फ्लोरिडा व अन्य (2012) का मानना है कि विश्लेषणात्मक और सामाजिक कार्यों के लिए शहरी मजदूरी लाभ उच्च और शारीरिक व तकनीकी कार्यों के लिए निम्न होते हैं। शार्लो एवं दुरंतन (2004) का मानना है कि बृहत्तर और अपेक्षाकृत अधिक शिक्षित नगरों के लिए ऐसे कामगारों की आवश्यकता होती है जिनमें ज्ञान और विचारों के आदान–प्रदान की क्षमता अधिक हो। अपनी इस परिकल्पना की पुष्टि में वे फ्रांसीसी कंपनियों के एक प्रतिदर्श के शोध का परिणाम प्रस्तुत करते हैं और कहते हैं कि जिन कामगारों में यह क्षमता अधिक होती है, उनकी मजदूरी अधिक होती है। संकुलन की लागतों जैसे समूहन के दोश नगरों के आकार को सीमित करते और छोटे नगरों को लाभ पहुंचाते हैं।

हाल के दिनों में तकनीकी में आए परिवर्तन का प्रभाव परिवहन, संयोजन और उत्पादन की लागतों और इन मार्गों से समस्त क्षेत्र में कार्यों के होने वाले विभाजन पर पड़ा है। तकनीकी में हुई इन प्रगतियों के कारण नगरों की निकटता के लाभों और उत्पादन की लागतों के बीच आदान–प्रदान में बदलाव आता है। इस स्थिति के चलते कुछ खास कार्यों के स्थलों (अमेरिका में) स्थानांतरण हो गया है और वे नगरों से हट गए हैं (या तो गांव या फिर विदेश चले गए हैं)। किंतु उत्पादन की आधुनिक प्रक्रियाओं में नगरों की निकटता के लाभों का महत्व बढ़ चला है (ग्लेजर एवं मेयर, 2001)। इसके अतिरिक्त, कुछ कार्य स्वचालित होते हैं और उनके लिए श्रम सहयोग की आवश्यकता नहीं होती। इन प्रगतियों से नगरों की आर्थिक संरचना का समायोजन धीमी गति से ही हो पाता है। इसलिए, हम आशा करें कि जिन नगरों ने आरंभ में हाल की तकनीकी प्रगतियों के पूरक कार्यों पर ध्यान दिया वे अन्य नगरों के विपरीत समृद्ध होंगे।

अपनी प्रगति जांचिए

1. व्यावसायिक संरचना में परिवर्तनों का किससे गहरा संबंध होता है?
   (क) मानसिक विकास से (ख) सैन्य विकास से
   (ग) धार्मिक कृत्यों से (घ) आर्थिक विकास से
2. किस संरचना में पुरुष और महिला, जाति एवं धर्म की दृष्टि से पर्याप्त अंतर है?
   (क) व्यावसायिक (ख) रासायनिक
   (ग) भौतिक (घ) अव्यावसायिक

4.3 सामाजिक स्तरण (श्रेणी) पर प्रभाव

व्यावसायिक संरचना का उपयोग अक्सर 'वर्ग' समूहन (समूहीकरण) का सृजन करने में किया जाता है। वर्ग मापदंड के इस उपागम का वर्णन 'रोजगार समुच्चय' के रूप में किया जा सकता है, और यह इतना व्यापक है कि व्यावसायिक संरचना और वर्ग संरचना को अक्सर एक दूसरे का पर्याय माना लिया जाता है।

वर्ष 1970 से 'वर्ग विश्लेषण' के अग्रणी टीकाकार तर्क देते रहे हैं कि अग्रणी शोधकर्ताओं (जैसे ब्लाउ एवं डंकन, 1967) ने वर्गीकरण की जिन विधियों का उपयोग किया उनमें 'वर्ग' का मूल्यांकन किसी सच्चे सामाजिक अर्थ में नहीं किया गया। हालांकि अपेक्षाकृत भिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोणों से, राइट और गोल्डथोर्प दोनों का मानना था कि पूर्व में जिन व्यावसायिक पैमानों का उपयोग किया जाता था, वे वस्तुतः 'संबंधपरक' वर्ग योजनाओं की बजाय वर्गीकृत ('कोट निर्धारण') स्थिति के मापदंड थे। इस प्रकार वर्ष 1980 के दशक के दौरान, दो मुख्य परस्पर राष्ट्रीय परियोजनाओं का गठन किया गया, जिन दोनों ने अपनी रोजगार आधारित वर्ग योजनाओं का विकास किया। राइट (1985, 1997) निर्देशित अंतरराष्ट्रीय वर्ग परियोजना अपनी प्रेरणा में स्पष्टतः मार्क्सवादी थी और जिस योजना (योजनाओं) की खोज उन्होंने की थी, उसमें (उनमें) कार्यों का वर्गीकरण उत्पादन में प्रभुत्व और शोषण के संबंधों के एक मार्क्सवादी विश्लेषण के अनुरूप किया गया था। औद्योगिक समुदायों में सामाजिक

टिप्पणी

गतिशीलता का तुलनात्मक विश्लेषण (The Comaparative Analysis of Social Mobility in Industrial Societies/CASMIN) प्रकल्प में एक व्यावसायिक वर्गीकरण का उपयोग किया गया था, जिसका प्रणयन पहले अपनी सामाजिक गतिशीलता में गोल्डथोर्प ने किया था।

किंतु, इन परिष्कृत संस्करणों में भी, कई समस्याओं के साथ यह पूर्वधारणा है कि कार्य या व्यवसाय संरचना का वर्गीकरण किया जा सकता है ताकि इससे 'वर्गों' का सृजन हो। व्यावसायिक संरचना से धन अथवा जायदाद की धारिता का कोई संकेत नहीं मिलता। ऐसा नहीं है कि सभी वयस्क लोगों का कोई व्यवसाय हो और इसलिए किसी विशिष्ट 'वर्ग स्थिति' के आवंटन में समस्याएं हैं – यह स्थिति खास कर 'आर्थिक दृष्टि से अक्रिय' जैसे गृहिणियों के प्रति समस्यात्मक या अनिश्चित रही है। व्यावसायिक संरचना में वर्गीकरण करने वाले अन्य प्रमुख की छाप भी होती है – जैसे महिला, जाति और आयु – जिन्हें 'वर्ग' के कारकों से अलग करना कठिन है।

व्यावसायिक संरचना से एक 'जीवन के अवसरों' का एक तर्कसंगत संकेत तो मिलता है, किंतु जायदाद या धन का कोई ठोस पैमाना नहीं। रोजगार समुच्चय राजनीतिक स्तर पर जागरूक समूहों के अनुरूप नहीं हैं। इसकी बजाय सामाजिक वर्ग योजनाओं को वर्ग अवकलन की प्रक्रियाओं के परिणामों के एक सही मापक के रूप में देखा जा सकता है (यह संभवतः हमारे पास सर्वोत्तम मापक है)। इन प्रक्रियाओं की पहचान को लेकर राइट व गोल्डथोर्प अलग नजरिया रखते हैं। वर्ग विशेष में कार्यों के स्थान का राइट सिद्धांत मार्क्सवादी वर्ग सिद्धांत से प्रेरित है। किंतु, गोल्डथोर्प, जोर देते हुए कहते हैं कि उनकी वर्ग योजना में किसी भी सिद्धांत विशेष का कोई योगदान नहीं है, जिसकी परख उसके अनुभवाश्रित विश्वसनीयता के आधार पर की जानी चाहिए – ये परिणाम हैं, प्रेरणाएं नहीं, जो मायने रखते हैं।' तथापि योजनाओं में परस्पर गहरा संबंध है और वस्तुतः राइट का मानना है कि उनकी योजना की व्याख्या 'वेबर की अथवा मिली–जुली ढंग' से की जानी चाहिए।

समाज का संरचनात्मक परिवर्तन

जब से औद्योगिकीकरण के चलते व्यावसायिक संरचनाओं में अभूतपूर्व ढंग से बदलाव आया है, तभी से परिवर्तन श्रम विभाजन की एक आधारभूत विशेषता रहा है। इसका श्रम विभाजन के सभी स्तरों पर, और सभी आयामों में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। पिछले दशक के दौरान अति विकसित समाजों का परिवर्तन उत्तर औद्योगिक समाजों में हो चुका है। रोजगार के मुख्य क्षेत्र के रूप में औद्योगिक उत्पादन को पीछे छोड़ सेवा उद्योग अथवा ज्ञान उद्योग शुरू किया जा चुका है। श्रम के व्यावसायिक विभाजन का विस्तार अब नए क्षेत्रों में होने लगा है। ज्ञान आधारित सेवाएं, मूल्यांकन, सूचना, मार्गदर्शन, विश्लेषण आदि की सुविधा आज औद्योगिक उत्पादन से आगे बढ़ चुकी है। उद्योगवाद के जरिए श्रम संरचना में भारी परिवर्तन और सेवा व ज्ञान कार्य में वृद्धि इस तथ्य में दिखाई देती है कि कुछ देशों में औद्योगिकीकरण के पहले के समुदायों में 50 से अधिक शिल्पों और व्यापारों की तुलना में आज 30,000 तक कार्य सूचीबद्ध हैं।

टिप्पणी

ज्ञान और सॉफ्टवेयर इस 'नई अर्थव्यवस्था' के मुख्य विषय बन चुके हैं (लीडबेटर, 1999)। ऐसे में ज्ञान–व्यवसायों के रूप में कई कार्यों और व्यवसायों के व्यावसायिक स्तर में वृद्धि का महत्व उत्तरोत्तर बढ़ रहा है (लेन एवं अन्य, 2000)। तुलनात्म दृष्टि से देखें, तो उत्पादन कार्य और हार्डवेयर का महत्व कम हुआ है। यह बात शारीरिक श्रमसाध्य कार्य में निरंतर आ रही गिरावट और सफेदपोष–कार्य में उत्तरोत्तर हो रही वृद्धि से सिद्ध हो जाती है। अक्सर, अन्य देशों में शारीरिक श्रम को अपना लिया जाता है या फिर उसके स्थान पर सभी कार्यों को यंत्र केंद्रित कर स्वचालित कर दिया जाता है। इसके साथ ही कार्य को पूरा करने के लिए अक्सर बाहरी सहायता ली जाती है, जिससे स्थानिक (अथवा भौगोलिक) स्तर पर श्रम विभाजन में पर्याप्त परिवर्तन आता है। सूचना एवं संचार की इन नई तकनीकियों ने श्रम विभाजन विश्व स्तर पर विस्तार के इन रुझानों में और वृद्धि की है, जिनके अंतर्गत समस्त विश्व एक कार्यशाला या कारखाने का रूप ले चुका है।

महिला पर प्रभाव

व्यवसायों में महिलाओं और पुरुषों के रोजगार के वितरणों में अंतर श्रम बाजार की एक मुख्य विशेषता रहे हैं और बने हुए हैं। इस विषय पर हुए शोधों के अनुसार सन् 1900 के दशक के पूर्वार्ध लगभग 1970 तक एक उच्च स्तर का अंतर कायम रहा। व्यावसायिक वर्गभेद में वर्ष 1970 के दशक की अवधि एक आमूल परिवर्तन की अवधि रही, इसमें व्यावसायिक अंतरों के अंशों में उल्लेखनीय गिरावट आई। नारी आंदोलन में हुई प्रगतियों, स्त्री–पुरुष भेदभाव के विरुद्ध कानून के प्रवर्तन, उच्चतर शिक्षा एवं व्यावसायिक स्कूलों में छात्राओं के नामांकन में वृद्धि, महिला श्रम शक्ति की सुस्थिर भागीदारी में वृद्धि, शिक्षा और रोजगार दोनों में महिलाओं के प्रति रूढ़ विचारों में कमी इन सब का योगदान इस रुझान में रहा। वर्ष 1980 के दशक के दौरान महिलाओं ने पुरुष वर्चस्व वाले व्यवसायों में प्रवेश करना जारी रखा, हालांकि परिवर्तन की गति धीमी रही।

इस विश्लेषण में महिलाओं और पुरुषों के बीच व्यावसायिक अंतरों पर पूर्व में हुए शोधों में बीते दो दशकों के दौरान, विशेष रूप से 1980 के दशक के मध्य से 1990 के दशक के मध्य तक, के रुझानों का मूल्यांकन करते हुए सुधार का प्रयास किया गया है। इसमें व्यवसायों में रोजगार के स्त्री–पुरुष वितरण के मौजूदा प्रतिमानों और बीते दो दशकों में उनमें आए परिवर्तनों के तरीकों की एक समीक्षा की गई है। तदनंतर सार–संक्षेप के एक मापदंड – असमानता अथवा अंतर सूचकांक – का उपयोग करते हुए व्यावसायिक अंतरों के समुच्चय का एक विश्लेषण किया गया है। अंत में, महिला वर्चस्व वाले कार्यों में आए अंतर पर विमर्श किया गया है।

व्यावसायिक रोजगार में महिला–पुरुष अंतर (भेदभाव)

व्यावसायिक रोजगार में महिलाओं के प्रति भेदभाव अभी भी कायम हैं; नानाविध कारकों के अनुरूप इन भेदभावों के अंशों में अंतर होता है, जैसे विद्या अर्जन तथा आयु।

अंतर (भेदभाव) एवं रुझान

महिलाओं और पुरुषों के कार्यों के मान में अंतर होता है, जिसके कई कारक होते हैं– कर्मचारियों की शिक्षा का स्तर और प्रकार; उन कार्यों के प्रकार जिनका विस्तार हुआ

हो या जिनमें गिरावट आई हो; व्यक्तिगत प्राथमिकताएं; महिलाओं के कार्यों या भूमिकाओं के प्रति समाज की सोच, जिसका प्रभाव पुरुषों और महिलाओं के कार्य और कार्य के निर्णयों में पारिवारिक दायित्वों के प्रवेश के ढंग, और कुछ मामलों में भेदभाव, पर पड़ सकता है। पिछले दो दशकों के विस्तृत व्यावसायिक समूहों के जो आंकड़े उपलब्ध हैं, वे स्पष्टतः दो मुख्य बिंदुओं का संकेत देते हैं। पहला, कई व्यवसायों में कार्य के महिला–पुरुष वितरण में पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। दूसरा, इन परिवर्तनों के बावजूद, महिलाओं और पुरुषों की अलग–अलग व्यवसायों में सघनता बढ़ी है : उदाहरण के लिए, महिलाओं की संख्या मुख्यतः लिपिक वर्गीय और सेवा व्यवसायों के क्षेत्र में जबकि पुरुषों की संख्या शिल्प, मशीन चालन और श्रम के क्षेत्र में अधिक है। महिलाओं की अभिरुचि सामान्यतः उन व्यावसायिक समूहों के प्रति तेजी से बढ़ी है, जिनमें बीते दो दशकों के दौरान रोजगार बढ़ता रहा है। (देखें तालिका 1)। इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि तेजी से बढ़ रहे व्यवसायों में कामगारों की बड़ी मांग है, वृद्धि के कारण कार्य में प्रवेश में आने वाली बाधाओं, जैसे महिला भेदभाव, में कमी आ सकती है। वर्ष 1975 से 1995 तक के दौरान, कार्य में सबसे ज्यादा वृद्धि प्रबंधकों और संव्यावसायिकों के बीच हुई और मशीन चालकों, हेल्परों व मजदूरों तथा कृषि के व्यवसायों में बहुत धीमी वृद्धि देखी गई। इस अवधि के दौरान, रोजगार के क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में वृद्धि हुई।

परिवार पर प्रभाव

यह बात अब व्यापक स्तर पर स्वीकार कर ली गई है कि शहरीकरण जितना सामाजिक प्रक्रम है उतना ही आर्थिक और क्षेत्रीय प्रक्रम भी है। इसके फलस्वरूप सामाजिक संगठन, परिवार की भूमिका, जनसांख्यिकीय संरचनाएं, कार्य का स्वरूप और हमारे रहन–सहन का ढंग सब कुछ बदल जाते हैं। इसके घरेलू भूमिकाओं और परिवार के भीतर संबंधों को भी बदल देता है और निजी व सामाजिक दायित्व की धारणाओं की नए सिरे से व्याख्या करता है।

जनन दर

आरंभ में, गांव छोड़कर शहर प्रवास के कारण जनसंख्या वृद्धि की स्वाभाविक दरों में अंतर आता है। इस बात का कोई लिखित उदाहरण नहीं है कि तथ्य कहां सच सिद्ध नहीं हुआ है। किंतु लोक अनुभव के विपरीत, अकसर घटिया रहन–सहन के बावजूद, कई नगरों में, उदाहरण के लिए, जैसे उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप और उत्तर अमेरिका में और मौजूदा दौर में विकासशील देशों के नगरों में (स्मिथ, 1996), इसके चलते सबसे पहले मृत्यु दर में कमी आती है। केवल बाद में शहरीकरण जन्म दर (अर्थात् जनन दर) में कमी लाता है। घटती मृत्यु एवं जन्म दरों के बीच का यह समय–अंतराल आरंभ में शहरी जनसंख्या में तीव्र वृद्धि का संकेत देता है; तदनंतर जनन दर तेजी से गिरती है और फिर शहरी जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी आती है।

फलतः, परिवारों का आकार अपेक्षाकृत तेजी से छोटा हो जाता है, केवल इसलिए नहीं कि माता–पिता के औसतन कम बच्चे होते हैं, बल्कि इसलिए भी कि ग्रामीण क्षेत्रों के विस्तृत परिवार जैसे परिवार शहरी क्षेत्रों में नगण्य होते हैं। अधिक श्रमिकों व उत्पादकों की इकाइयों के रूप में शहरी बस्तियों में बच्चे ग्रामीण संविन्यास की तुलना में स्पष्टतः कम उपयोगी होते हैं, किंतु इसके विपरीत उन पर व्यय अधिक आता है।

टिप्पणी

वस्तुतः, विकसित देशों में जनन स्तर इतने नीचे आ गए हैं कि नगरों में अपनी जनसंख्या पैदा करने की क्षमता बहुत कम होती है। यदि उनका विकास होता भी है, तो बहुत हद तक अन्य नगरों या फिर ग्रामीण क्षेत्रों से आए लोगों के प्रवास के कारण और उत्तरोत्तर हो रहे आप्रवासन से। पश्चिमी देशों में ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का आना अब लगभग बंद हो चुका है।

विडंबना यह है कि तीसरी दुनिया की असीम आबादी और ऐतिहासिक दृष्टि से विकसित देशों के न्यून जनन स्तरों के चलते विकसित देशों के उन नगरों में लोगों का व्यापक प्रवासन हुआ है, जो समकालीन द्वार अथवा विश्व नगर का काम करते हैं (सासेन 2001; कासल्स व मिलर 1998)। ऐसे में इस प्रवसान के कारण, सामाजिक एवं नष्जाति–सांस्कृतिक अर्थों में, इन नगरों का रूप बदल चुका है (पोलेसे एवं स्ट्रेन, 2000)।

परिवार एवं जीवन यापन के प्रबंध

किसी शहरी समाज के विकास को अक्सर परिवार की स्थिति में आई एक गिरावट और परिवार के अपरंपरागत स्वरूपों तथा परिवारों के नए प्रकारों की अपार वृद्धि से जोड़ा जाता है। अपरंपरागत से हमारा तात्पर्य उन परिवारों से है, जिनमें दो माता–पिता और/या बच्चे नहीं होते। यह रुझान अंशतः 'जीवन यापन के प्रबंध के विकल्पों' की बढ़ती विविधता का प्रतिबिंब है। इस धारणा का उपयोग विद्वत्तापूर्ण साहित्य में उन अनगिनत तरीकों का उल्लेख करने के लिए किया जाता है, जिनमें किसी शहरी समाज के लोग सामूहिक इकाइयों (जैसे, परिवार) का गठन करने के ध्येय से संघटित होते हैं। ये संयोजन परंपरागत प्रबंध विवाह से या फिर आवास प्रणाली के भीतर लोगों के किसी अन्य संबंध से बन सकते हैं – उन लोगों का संबंध वैवाहिक या रक्त का हो या फिर उनमें कोई संबंध न हो।

श्रम बाजारों के संबंध

शहरी समाजों में जीवन यापन के प्रबंधों और परिवार के संघटन में इस विविधता का रोजगार जगत – से भी गहरा संबंध है – शहरी अर्थव्यवस्था और व्यवसायों में। शहरीकरण में न केवल रोजगार और कामकाजी जीवन में परिवर्तन आते हैं, बल्कि इससे घरों (सामग्री एवं सेवा इकायां) और श्रम बाजारों (उत्पादन क्षेत्र) के बीच संबंधों में भी बदलाव आता है। लोग काम करते और पारिश्रमिक कमाते हैं, किंतु ये घर (और परिवार) हैं, जहां वह कमाई खर्च की जाती है। इस प्रकार, परिवारों और घरों के संघटन का प्रभाव उन घरों के लोगों के बदलते कल्याण और उसके सदस्यों की व्यावसायिक स्थिति पर पड़ता है।

घरेलू संबंध

कार्य कारण (कारण एवं प्रभाव) के रूप में, श्रम बाजार के ये परिवर्तन घर और परिवार के भीतर घरेलू संबंधों में आए बदलाव से भी परस्पर संबद्ध होते हैं। इन परिवर्तनों का प्रभाव विवाहिताओं पर स्पष्टतः देखा जाता है। न केवल उन्नत औपचारिक श्रम बाजार में उनकी सहभागिता (जुड़ाव/संबंध) है, बल्कि परिवार के भीतर उनकी आर्थिक स्थिति भी ऐसी ही है। इससे निर्णय निर्धारण में उन्हें अधिक स्वायत्तता मिलती है, पर यह दोष से मुक्त नहीं है। कई महिलाओं के लिए कार्य के संतुलन की चुनौती, घरेलू दायित्व और दैनिक शहरी जीवन की अनिवार्यताएं बढ़ी हैं। छोटे परिवारों, और शहर का रूप

ले चुके समकालीन समाजों में विस्तृत परिवारों के बिखराव ने इन महिलाओं को उपलब्ध रक्त–संबंध समर्थन प्रणालियों के स्तर को कम कर दिया है।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

3. किस संरचना का उपयोग अकसर 'वर्ग' समूहन का सृजन करने में किया जाता है?

   (क) नई (ख) पुरानी

   (ग) व्यावसायिक (घ) विशिष्ट

4. किसके संघटन का प्रभाव उन घरों के लोगों के बदलते कल्याण और उनके सदस्यों की व्यावसायिक स्थिति पर पड़ता है?

   (क) परिवारों और घरों के (ख) मुहल्ले के

   (ग) कसबे के (घ) शहर के

4.4 भारत में नगरों का विकास

भारत में शहरीकरण में तेजी स्वतंत्रता के बाद शुरू हुई, देश के एक मिश्र अर्थव्यवस्था अपनाने के कारण, जिसके फलस्वरूप निजी क्षेत्र का विकास शुरू हुआ। सन् 1901 की जनगणना के अनुसार, भारत में शहरी क्षेत्रों में रह रही आबादी का प्रतिशत 11.4 था, जो वर्ष 2001 की जनगणना तक बढ़कर 28.53 प्रतिशत हो गया, और वर्ष 2017 में विश्व बैंक के अनुसार यह बढ़ कर 34 प्रतिशत हो गई। संयुक्त राश्ट के एक सर्वेक्षण के अनुसार, वर्ष 2030 में देश के शहरी क्षेत्रों की आबादी अनुमानतः 40.76 प्रतिशत होगी। विश्व बैंक के अनुसार, 2050 तक चीन, इंडोनीशिया, नाइजीरिया और अमेरिका के साथ भारत शहरी आबादी के मामले में अग्रणी होगा।

अगले दो दशकों के दौरान, उच्च जनन दर के कारण उत्तर भारत में शहरों और नगरों में वृद्धि दक्षिण भारत से अधिक तेजी से होगी। आवास एवं अन्य शहरी सुविधाओं में सार्वजनिक निवेश के क्रम में इस तथ्य को ध्यान में रखना आवश्यक होगा।

प्रवास एवं उसके प्रभाव

प्रवासन रहने और कार्य करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान जाने की एक प्रक्रिया है। काम, आश्रय अथवा कुछ अन्य कारणों से लोगों का अपना घर छोड़कर दूसरे नगर, राज्य अथवा देश जाना प्रवासन कहलाता है। भारत में पिछले कुछ वर्षों के दौरान ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में प्रवासन में वृद्धि हुई है।

प्रवासी

काम अथवा आवास की तलाष में जो लोग एक स्थान से दूसरे स्थान जाते हैं, उन्हें प्रवासी कहा जाता है। अक्सर प्रवासी लोग कौशल प्राप्त अथवा शिक्षित नहीं होते, इसलिए उन्हें सामान्यतया दिहाड़ी मजदूर (कामगार, जिन्हें उनके काम के बदले रोज शाम को मजदूरी का भुगतान किया जाता है) का काम करना पड़ता हैं। इन दिहाड़ी मजदूरों को इतनी मजदूरी नहीं मिलती कि वे अपने परिवार का भरण–पोषण कर सकें।

कम मजदूरी के कारण उन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है – वे न तो भर पेट खाना खा सकते, न ही उन्हें साफ–सफाई, चिकित्सा की सुविधा और रहने के लिए कोई समुचित स्थान मिल पाता है।

टिप्पणी

प्रवासन के प्रभाव

नगरीय जीवन के लिए प्रवासन उत्तरोत्तर एक अति महत्वपूर्ण विषय का रूप ले रहा है। अनेकानेक अवसर और बड़े नगरों का आकर्शण बड़ी संख्या में लोगों को बड़े नगरों की ओर खींचते हैं। प्रवासियों के जीवन पर प्रवासन के पड़ने वाले प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक हो सकते हैं।

सकारात्मक प्रभाव

1. बेरोजगारी में कमी आती है और लोगों को रोजगार के बेहतर अवसर मिलते हैं।
2. प्रवासन से लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने में सहायता मिलती है।
3. यह लोगों के सामाजिक जीवन में सुधार लाने में सहायता करता है, उन्हें नई संस्कृति, रीति–रिवाजों और भाषाओं की जानकारी मिलती है, जिससे के उन्हें लोगों के बीच भाईचारा बढ़ाने में सहायता मिलती है।
4. कौशल प्राप्त लोगों के प्रवासन से क्षेत्र की अर्थव्यवस्था मजबूत होती है।
5. बच्चों को उच्चतर शिक्षा के बेहतर अवसर मिलते हैं।
6. जनसंख्या के घनत्व और जन्म दर में कमी आती है।

नकारात्मक प्रभाव

1. ग्रामीण क्षेत्रों के किसी व्यक्ति निकल जाने का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों के विकास स्तर पर पड़ता है।
2. कामगारों के शहर आगमन से काम, आवास, स्कूल की सुविधाओं आदि की प्रतिस्पर्धा बढ़ती है।
3. प्राकृतिक संसाधनों, सुख–सुविधा और सेवाओं पर भारी आबादी का दबाव पड़ता है।
4. शहरी क्षेत्रों में गुजारा करना किसी ग्रामीण के लिए कठिन होता है क्योंकि शहरी क्षेत्रों में प्राकृतिक पर्यावरण और स्वच्छ हवा नहीं होती। उन्हें हर चीज के दाम चुकाने पड़ते हैं।
5. प्रवासन से किसी क्षेत्र की जनसंख्या में परिवर्तन होता है, इसलिए भारत में जनसंख्या का वितरण असामान्य है।
6. कई प्रवासी पूर्णतः अशिक्षित होते हैं, इसलिए वे ज्यादातर कामों के लिए न केवल अयोग्य होते हैं, बल्कि उनमें बुनियादी ज्ञान और जीवन के कौशलों की कमी होती है।
7. गरीबी के कारण वे एक सामान्य और स्वस्थ जीवन व्यतीत नहीं कर सकते।
8. गरीबी में पल रहे बच्चों को समुचित पोषण, शिक्षा और स्वास्थ्य सुलभ नहीं होते।

टिप्पणी

9. प्रवासन के कारण नगरों में झुग्गी क्षेत्रों की वृद्धि होती है, जिससे कई समस्याएं जन्म लेती हैं, जैसे अस्वास्थ्यकर परिवेश, अपराध, प्रदूषण आदि।
10. कभी कभी प्रवासियों का शोषण होता है।
11. प्रवासन एकल परिवारों में वृद्धि के मुख्य कारणों में से एक है, जहां बच्चों को बढ़ने का कोई व्यापक पारिवारिक दायरा नहीं मिल पाता।

अपनी प्रगति जांचिए

5. काम अथवा आवास की तलाश में जो लोग एक स्थान से दूसरे स्थान जाते हैं, उन्हें क्या कहा जाता है?

   (क) प्रवासी (ख) घुमक्कड़

   (ग) अप्रवासी (घ) नागरिक

6. प्राकृतिक संसाधनों, सुख–सुविधाओं और सेवाओं पर किसका दबाव पड़ता है?

   (क) ग्रामीणों का (ख) शहरी लोगों का

   (ग) मेहमानों का (घ) भारी आबादी का

4.5 आवास और झुग्गियों के विकास की समस्या

- झुग्गियां सार्वजनिक जमीन पर आबाद अवैध शहरी बस्तियां होती हैं और आम तौर पर एक समयावधि के दौरान एक स्थिर एवं अनियमित ढंग से विकसित होती हैं। इस तथ्य के बावजूद, झुग्गियों को शहरी क्षेत्र में शहरीकरण तथा समग्र सामाजिक–आर्थिक नीतियों और योजना के एक अभिन्न अंग के रूप में देखा जाता है। झुग्गियों का अस्तित्व और तीव्र विकास को पूरी दुनिया में व्याप्त एक व्यापक शहरी परिघटना के रूप में देखा गया है।
- संयुक्त राष्ट्र की संस्था यूएन–हैबिटैट के अनुसार, झुग्गी किसी नगर का एक छिन्न–भिन्न क्षेत्र होता है, जहां घटिया आवास और गरीबी होती है और भूसंपत्ति की सुरक्षा की कमी होती है। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, वर्ष 1990 से 2005 के बीच विकासशील विश्व में झुग्गियों में रहने वाले शहरी निवासियों में 47 प्रतिशत से 37 प्रतिशत तक की कमी आई। किंतु, बढ़ती आबादी के कारण झुग्गियों में रहने वालों की संख्या दिन–व–दिन बढ़ रही है।
- झुग्गियों का वर्णन इस प्रकार भी किया जा सकता है, ''बेतरतीबी से अधिग्रहीत, अव्यवस्थित ढंग से विकसित और आम तौर पर उपेक्षित क्षेत्र, जहां आबादी घनी और टूटे–फूटे तथा उपेक्षित घरों की भरमार होती है'' (इंडियन कॉन्फेरेंस, 1957)। उनका विकास शहरी विकास प्रक्रिया के कारण होता है और वे अनियोजित, अनियत बस्तियां होती हैं – शहरी विकास की समस्त प्रक्रिया में उपेक्षित।
- एशिया की सबसे बड़ी झुग्गी बस्ती धारावी मुंबई के बीचोबीच मुख्य जमीन पर स्थित है (मेक्सिको में नेजा दुनिया की सबसे बड़ी झुग्गी बस्ती है)।

टिप्पणी

- धारावी के 230 हेक्टेयर क्षेत्र पर कमोवेश आधा करोड़ लोग रहते हैं।
- यह बस्ती सन् 1882 में ब्रिटिश राज में बसाई गई थी। अठारहवीं शताब्दी के दौरान, अनियोजित बस्तियों का विकास शुरू हुआ था, जब मुंबई शहरीकरण की प्रक्रिया चल रही थी।
- हाल में, महाराष्ट्र सरकार ने एक कार्यक्रम पर हस्ताक्षर किए : धारावी का अलग उप–समूह की बजाय एक संपूर्ण बस्ती के रूप में विकास करने की विशेष उद्देश्य की एक संरचना, पूर्व की कल्पना के अनुरूप।

झुग्गी बस्तियों के बढ़ने के कारण

1. जनसंख्या विस्फोट गरीबी शहर के गरीब लोगों को झुग्गियों में रहने को विवश करते हैं, जिससे झुग्गी बस्तियों के आकार में वृद्धि होती है। यही नहीं, विकास में क्षेत्रीय असंतुलन के कारण भी लोग गांवों से शहर को पलायन करते हैं, इस प्रकार समस्त शहरी आबादी के घनत्व में वृद्धि होती है जिससे शहर के गरीब झुग्गियों में रहने को विवश होते हैं।
2. बीते 15 वर्षों में, भारत की शहरी आबादी के घनत्व में 45 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अनुमान है कि वर्ष 2026 तक शहरी क्षेत्रों में 40 प्रतिशत की आबादी होगी। उत्तरोत्तर सघन होती शहरी आबादी के कारण जमीन की मांग बहुत अधिक बढ़ गई है। जमीन की यह कमी शहरी गरीब लोगों को दिनोदिन सघन होते समुदायों में रहने को विवश करती है, जिससे झुग्गियां पनपती हैं।
3. सामान की बढ़ती लागतें और श्रमिकों की कमी के कारण बढ़ती श्रम लागतें झुग्गी बस्तिों के पनपने का एक और कारण है, जिससे डिवेलपर बाजार में किफायती घर नहीं बना पाते।
4. यही नहीं, भूमि विकास की प्रक्रियाओं के कार्यान्वयन में विलंब के कारण भी लोग घने क्षेत्रों में रहने को विवश होते हैं, जिससे फिर झुग्गियों का निर्माण होता है।
5. अव्यवस्थित नगर प्रबंधन और शहरी स्थानीय निकायों की अक्षमता भी झुग्गी बस्तियों के पनपने के प्रमुख काराणों में से एक है।
6. इसके अतिरिक्त, सामाजिक पिछड़ापन लोगों को सघन क्षेत्रों में रहने को विवश करता है। उदाहरण के लिए, अनुसूचित जातियों (एससी) के अधिक से अधिक लोग झुग्गियों में रहते हैं – प्रत्येक पांच में से एक निवासी।

झुग्गी विकास की उपेक्षा के कारण उत्पन्न समस्याएं

1. झुग्गियां गांवों के गरीब लोगों को नगरीय जीवन के प्रति आकर्षित करती हैं, इस प्रकार वे उनके लिए चुंबक कार्य करती हैं।
2. झुग्गी क्षेत्रों में रह रहे लोगों को जलजन्य बीमारियों, जैसे मीयादी बुखार व हैजा और अपेक्षाकृत अधिक घातक कैंसर व एचआईवी/एआईडीएस, का संकट रहता है।
3. यही नहीं, झुग्गियों में रहने वाली महिलाओं और बच्चों को वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति और बाल तस्कारी जैसी सामाजिक बुराइयों का शिकार होने का खतरा भी रहता

टिप्पणी

है। झुग्गियों में रहने वाले पुरुषों और महिलाओं दोनों को इन सामाजिक बुराइयों का शिकार होने का संकट रहता है।

4. एक आम धारणा यह है कि झुग्गी क्षेत्र ऐसे स्थान होते हैं जहां, आम तौर पर माना जाता है कि अपराध की घटनाएं अधिक होती हैं। ऐसा शिक्षा, कानून–व्यवस्था और झुग्गी क्षेत्रों में सरकारी सेवाओं के प्रति सरकार की उपेक्षा के चलते होता है।
4. फिर, किसी विकासशील देश में ज्यादातर झुग्गीवासी अपना जीविकोपार्जन असंगठित क्षेत्र में करते हैं, जहां उन्हें न तो आर्थिक सुरक्षा मिल पाती है और न ही अच्छे जीवन के लिए पर्याप्त कमाई हो पाती है, इस प्रकार वे गरीबी के दुश्चक्र में घिरे रहते हैं।
5. अंत में, भूख, कुपोषण, अच्छी शिक्षा की कमी, उच्च शिशु मृत्युदर, बाल विवा, बाल मजदूरी झुग्गियों में व्याप्त कुछ अन्य सामाजिक समस्याएं हैं।

सरकार ने शहरी आधारभूत संरचना में सुधार के कई कदम उठाए हैं–

1. बुनियादी सुविधाओं, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, आईटी (सूचना तकनीकी) की सुलभता, अंकरूपण (डिजिटाइजेषन), ई–शासन, संधारणीय विकास, सुरक्षा और संरक्षा के मद्देनजर स्मार्ट सिटी मिशन (सुंदर नगरों के निर्माण हेतु)।
2. वर्ष 2022 तक सब के लिए आवास : झुग्गी पुनर्वास योजना के तहत झुग्गीवासियों के लिए घरों का निर्माण और आर्थिक दृष्टि से कमजोगर वर्गों के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त दरों पर ऋण मुहैया कराने हेतु
3. हृदय : राष्ट्रीय धरोहर नगर विकास एवं संवर्धन योजना : भारत के धरोहर नगरों के संरक्षण और इतिहास सम्मत विकास के लिए।
4. स्वच्छ भारत अभियन : स्वच्छता एवं साफ–सफाई की स्थिति में सुधार हेतु।

अपनी प्रगति जांचिए

7. बीते 15 वर्षों में भारत की शहरी आबादी के घनत्व में कितने प्रतिशत की वृद्धि हुई है?

   (क) 50 (ख) 45

   (ग) 40 (घ) 35

8. झुग्गियां गांवों के किन लोगों को नगरीय जीवन के प्रति आकर्षित करती है?

   (क) गरीब (ख) धनी

   (ग) शिक्षित (घ) युवा

4.6 भारत की शहरी पर्यावरण से संबंधित समस्याएं

अनुमान है कि 2030 तक भारत की लगभग आधी जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में होगी। शहरीकरण की इस गति के साथ कुछ समस्याएं पहले से ही चल रही हैं, जैसे जलापूर्ति, मलजल निपटान, नगरी कूड़ा, खुले प्राकृतिक दृश्य वाले क्षेत्र के ह्रास, वायु एवं जल

टिप्पणी

प्रदूषण और सार्वजनिक परिवहन आदि की समस्याएं। इन पर्यावरणीय समस्याओं में से ज्यादातर नगरों के नियोजित विकास के कारण उत्पन्न हुई हैं, जिसमें संसाधनों का अत्यधिक उपयोग होता है, जैसे भूमि और जल। कई बार तो इस बात पर सब के साथ विचार भी नहीं किया जाता कि कौन सी चुनौतियां अधिक महत्वपूर्ण हैं और उनका समाधान होना चाहिए। इसलिए, अनुभवाश्रित प्रमाण के साथ भारत की गंभीर शहरी पर्यावरण की चुनौतियों को समझना आवश्यक है ताकि नीति निर्धारक उनकी जांच कर सकें। भारत को जिन गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है उनमें मुख्य हैं भूमि उपयोग/भू–सीमा क्योंकि जैसे–जैसे शहरी आबादी में वृद्धि होती है वैसे–वैसे विभिन्न शहरी गतिविधियों के लिए जमीन की मांग बढ़ती जाती है। नगरों के विस्तार के चलते वनों के उन्मूलन, चारागाहों की जोताई या उन पर मवेशी की चराई, आर्द्र प्रदेशों को शुश्क बनाने और फसल की जमीन पर अतिक्रमण की आवश्यकता होती है। यह एक चुनौती का कार्य है क्योंकि इससे हरित क्षेत्र का ह्रास होता है और जीवावशेष ईंधन (Fossil fuel) की खपत बढ़ती है जिसके फलस्वरूप तापमान के स्तर में वृद्धि और ठोस कूड़े की उत्पत्ति होती है। ठोस कूड़े का संग्रह और प्रबंधन एक गंभीर चुनौती का रूप ले लेता है, क्योंकि भारी मात्रा में ठोस कूड़ा सड़ने के लिए सड़कों के किनारे छोड़ दिया जाता है, जो स्वास्थ्य समस्याओं का एक मुख्य कारक है। कूड़े के संग्रह और निपटान का कोई समुचित तंत्र भी नहीं है। साफ–सफाई की समुचित व्यवस्था का अभाव एक चुनौती है, क्योंकि भारी संख्या में लोग आज भी खुले में शौच करते हैं और इसके कारण भी भूतल व भूमिगत जल में प्रदूषण फैलता है।

इस तथ्य के कुछ प्रमाण हैं कि देश में कुछ नगरों के भू–विस्तार का धीरे–धीरे क्षणन हो रहा है, जैसे, जैसा कि विशेषज्ञों का मानना है, बेंगलुरु में वर्ष 1973 से 2007 के बीच भवन निर्माण में 46 प्रतिशत की वृद्धि हुई जिसके फलस्वरूप, जलाशयों में, ज्यादातर शहरीकरण की तीव्र प्रक्रिया के चलते, 61 प्रतिशत क्षेत्र का प्रचंड ह्रास हुआ। विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि भवनों की बढ़ती संख्या के कारण इस नगर में वर्ष 1973 में 68 प्रतिशत की तुलना में वनस्पति वर्ष 2007 तक आते–आते मात्र 25 प्रतिशत शेश रह गई। दिल्ली की स्थिति भी यही है। इसके मुख्यतः पश्चिमी, दक्षिण–पश्चिमी और पूर्वी हिस्सों में विकास अत्यंत तेजी से हो रहा है। शहर के विस्तार के कारण सीमांत क्षेत्रों में खेती की भूमिक का ह्रास हुआ है। खेती की भूमि के इस ह्रास का मुख्य कारण शहरी क्षेत्र में वृद्धि थी। पेड़ों की निरंतर कटाई, उत्खनन और निर्माण गतिविधि के कारण दिल्ली का दिल माने जाने वाले पर्वत पृष्ठ का भी पर्याप्त क्षणन हुआ है और 1992 6.7 प्रतिशत की तुलना में यह वर्ष 2004 में 5.5 प्रतिशत रह गया।

भारत के नगरों और कस्बों में ठोस कूड़ा पर्यावरण के प्रदूषण का एक मुख्य कारक है। ऊर्जा एवं संसाधन संस्थान (Energy and Resources Institute) के एक आकलन के अनुसार भारत में वर्ष 2047 तक कूड़े के उत्पादन में पांच गुणा तक की वृद्धि हो जाएगी और यह सालाना 260 मिलियन टन होने लगेगा। इसका अर्थ यह है कि अभी हर वर्ष 50 मिलियन टन कूड़े का उत्पादन होता है। विश्व बैंक के एक शोध के अनुसार भारत में नगरीय ठोस कूड़े का वार्षिक उत्पादन कुछ कम हो सकता है, अर्थात् 35 से 45 मिलियन टन के बीच, लगभग 100,000 से 120,000 मीट्रिक टन प्रति दिन। अनुमान है कि भारत के नगरों में ठोस कूड़े की मात्रा में सालाना 5 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो सकती है। फिर ठोस कूड़ा स्थलों की स्थिति भी संतोषजनक नहीं है।

टिप्पणी

ठोस कूड़े के त्रुटिपूर्ण प्रबंधन के फलस्वरूप रिसाव से भूगत जल और भूतल जल में संदूषण तथा कूड़े को अनियंत्रित ढंग से जलाने से वायु में प्रदूषण होता है। इसके अतिरिक्त प्रक्रिया एवं निपटान स्थल की अवैज्ञानिक कार्यप्रणालियां भी हैं, जिनके चलते पर्यावरण संकट खड़ा होता है। अनुमान है कि नगरों में 30 से 35 प्रतिशत कूड़े का संग्रह नहीं हो पाता और वह सड़कों के किनारे यों ही पड़ा रह जाता है। इसी प्रकार, ज्यादातर नगरों और शहरों में कूड़ा निपटान सेवाएं पुरानी हैं और ढुलाई नहीं हो पाने के कारण पर्यावरण के समक्ष गंभीर संकट पैदा हो गया है। भारत के 22 नगरों में कूड़ा निपटान की त्रुटिपूर्ण प्रवृत्ति के भारत के चैंबर ऑफ कॉमर्स और उद्योग के हाल के एक विश्लेषण से पता चलता है कि 22 में से 14 नगरों का 75 प्रतिशत कूड़ा निपटान स्थलों पर भेज दिया जाता है। दिल्ली और मुंबई जैसे बड़े नगरों में भी, जहां प्रशोधन और निपटान की पर्याप्त और बेहतर सुविधाएं अपेक्षित हैं, कूड़े का निपटान अवैज्ञानिक ढंग से किया जाता है।

भारत के शहरी क्षेत्रों में खुले में शौच का चलन व्यापक स्तर पर देखा जाता है। यह स्थिति भारत के साथ–साथ अन्य विकासशील देशों में भी है। भारत में अनुमानतः 5.40 मिलियन शहरी परिवार सामुदायिक शौचालयों का और 13.4 मिलियन परिवार साझा शौचालयों का उपयोग करते हैं। जहां तक शहर के गरीब परिवारों का संबंध है, तो स्थिति और भी बुरी है। देश में 17 प्रतिशत सूचित और 51 प्रतिशत असूचित झुग्गियों में शौचालय की कोई सुविधा नहीं है। सूचित और असूचित दोनों प्रकार की झुग्गियों में जहां तक सेप्टिक शौचालयों का प्रश्न है, तो यह सुविधा क्रमशः 66 और 35 प्रतिशत है। शहरी भारत में उत्पादित कुल मानव मल के 37 प्रतिशत से ज्यादा का निपटान असुरक्षित ढंग से किया जाता है। साफ–सफाई की त्रुटिपूर्ण व्यवस्था का सबसे बुरा प्रभाव विशेष रूप से शहर के गरीबों, महिलाओं, बच्चों और वृद्धों पर पड़ता है।

वर्ष 2006 में पर्यावरण एवं वन क्षेत्र में शासन, पारदर्शिता और भागीदारी को लेकर एक कार्य बल का गठन किया गया। इस कार्य बल की मुख्य अनुशंसाओं में से एक यह थी कि सरकार को राष्ट्रीय भूमि उपयोग बोर्ड को तत्काल कार्य रूप देना या उसका पुनर्गठन करना चाहिए, और उसे एक नीति व दीर्घकालिक भावी योजनाओं का विकास करने का दायित्व देना चाहिए, जो देश भर में जमीन और जल के संरक्षण व संधारणीय उपयोग की प्रक्रिया को दिषा निर्देश दे। जमीन व जल के उपयोग पर इस राष्ट्रीय नीति और भावी योजना को कानून बनाकर अनिवार्य रूप से प्रभावी किया जाए और जैवविविधता संरक्षण के निर्वहन और स्थानीय समुदायों द्वारा घरेलू उपयोग, समुदायों द्वारा वाणिज्यिक उपयोग और औद्योगिक/शहरी उपयोग समेत विशिष्ट उपयोगों के लिए जमीन/जल का विशेष विवरण तैयार किया जाए। पारिस्थितिकी सुरक्षा और जैवविविधता पर निर्भर लोगों की आजीविका की सुरक्षा सुनिश्चित करने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। ठोस कूड़ा के प्रति जहां तक सेवा के वांछित स्तर का संबंध है, कई समितियों ने उत्पादित कूड़े के 100 प्रतिशत संग्रह और उसके समुचित निपटान की अनुशंसा की है।

भारत सरकार साफ–सफाई को राज्य के एक विषय के रूप में स्वीकार करती है, और लोक स्वास्थ्य व पर्यावरण के परिणामों के जमीनी स्तर पर कार्यान्वयन और

टिप्पणी

निर्वहन के लिए नगर स्तर की सुदृढ़ संस्थाओं तथा हितधारकों की आवश्यकता है। प्रत्येक राज्य और नगर को राष्ट्रीय नीति का पूरी तरह से पालन करते हुए साफ–सफाई की अपनी कार्यनीति और नगर साफ–सफाई योजना तैयार करनी चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं भारत की प्रमुख शहरी पर्यावरणीय समस्याएं भू–सीमा के उपयोग, ठोस कूड़ा प्रबंधन और नगरों को खुले में शौच से मुक्त कराने हेतु साफ–सफाई के बेहतर प्रबंधन से जुड़ी हैं। भारत की शहरी पर्यावरणीय समस्याओं के प्रबंधन के मार्ग में धन अभी भी सबसे बड़ी बाधा है। किंतु, आशा फिर भी है। सुधार की अनेकानेक उपाय हैं जैसे ठोस कूड़े और साफ–सफाई के बेहतर प्रबंधन के लिए निजी क्षेत्र के साझेदारों की सहायता लेना।

अपनी प्रगति जांचिए

9. अनुमान के अनुसार कब तक भारत की लगभग आधी जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में होगी?

   (क) 2025 (ख) 2030

   (ग) 2035 (घ) 2040

10. किस देश के नगरों और कसबों में ठोस कूड़ा पर्यावरण के प्रदूषण का एक मुख्य कारक है?

    (क) इंग्लैंड (ख) न्यूजीलैंड

    (ग) हालैंड (घ) भारत

4.7 शहरी गरीबी

नगरों का तेजी से विकास हो रहा है, ऐसे में पीछे छूट गए लोगों का जीवन कठिन से कठिनतर होता जा रहा है। भारत में, शहरी गरीबी के कारणों को ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत संरचना की कमी से जोड़कर देखा जा सकता है, जिसके फलस्वरूप इन क्षेत्रों के लोगों काम के लिए महानगरों की शरण लेनी पड़ती है।

जैसे–जैसे लोगों का शहरों में बढ़ता जाता है वैसे–वैस उनके रहने के लिए स्थान कम पड़ता जाता है। अनियमित आबादकारों की बढ़ती संख्या के कारण शहर का विकास नहीं हो सकता और झुग्गियों अथवा उनमें रहने वालों की जवाबदेही लेना नहीं चाहता।

शहर में रहने वाले चार लोगों में से लगभग एक व्यक्ति झुग्गी में रहता है

भारत में शहरी गरीबी कुछ खास है, विशेष रूप से इस अर्थ में कि यह वृद्धि के कुछ प्रतिमानों का अनुसरण करती है। हालांकि रिपोर्टों के अनुसार बीते कुछ दशकों के दौरान शहरी गरीबी में आनुपातिक दृश्टि से कमी आई है, किंतु संख्या रोज बढ़ रही है, जिससे झुग्गियों की संख्या में भी वृद्धि निरंतर हो रही है।

टिप्पणी

राष्ट्रीय रिपोर्ट (आवास एवं शहरी गरीबी उन्मूलन की भारत आवास रिपोर्ट 3) के अनुसार वर्ष 2001 में लगभग 23.5 प्रतिशत शहरी परिवार झुग्गियों में रहते थे। हालांकि वर्ष 2011 तक इसमें 17 प्रतिशत की कमी आई, किंतु झुग्गियों में रहने वाले परिवारों की वर्ष 2001 की 10.5 मिलियन की संख्या बढ़कर वर्ष 2011 में 13.75 मिलियन हो गई।

भारत की नगरीय व्यवस्था : मूलभूत तत्व

भारत की मौजूदा नगरीय व्यवस्था में जनसंख्या के अलग–अलग आकारों वाले लगभग 7933 नगर और शहर हैं, और इनमें से कई नगर व शहर नगरीय वृद्धि के उस व्यापक विस्तार में आते हैं, जो वर्ष 2001 से 2011 के दशक में दर्ज किया गया। संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि भविष्य में शहरी क्षेत्रों में ही आबादी में वृद्धि होगी – वर्ष 2030 तक 165 मिलियन अतिरिक्त लोगों के शहरी क्षेत्रों में बसने की संभावना है।

किफायती आवास की मौजूदा कमी के मद्देनजर, संख्या कुछ भी हो पर इसका बढ़ना तय है। यदि नगरीय गरीबी के कारणों को दूर करना और करोड़ों झुग्गी वासियों के जीवन में सुधार लाना है, तो स्थिति में अनेकानेक परिवर्तन करने होंगे।

शहर की गरीबी के कारण और प्रभाव

पहली समस्या अवसरों और कामगारों के कौशल प्रशिक्षण की कमी है। बीते वर्षों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व स्वास्थ्य, साफ–सफाई, कूड़ा प्रबंधन और कौशल प्रशिक्षण जैसी बुनियादी सेवाओं में वांछित निवेश की कमी के अपने परिणाम हैं। इसके फलस्वरूप कुपोषण के शिकार, अशिक्षित, असावधाान और अकुषल अथव अर्ध–कुशल लोगों की संख्या बढ़ी है, जिनके लिए बेहतर वेतन–मजदूरी वाले काम मिलना कठिन है।

खेती कहने भर को एक लाभदायक विकल्प है, इसलिए नगरों की अनियमित अर्थव्यवस्थाओं में काम की तलाष उनका एकमात्र विकल्प है। लाखों लोग रोज अनियमित काम, जैसे घरेलू सहायक (Helper), मध्य वर्गीय लोगों के लिए कार ड्राइवर, टैक्सी ड्राइविंग, निर्माण स्थल का कार्य आदि करने को ष्हर आते हैं। किंतु, इससे पहले से ही कस कर भरी हुई शहरी आधारभूत संरचना में भीड़ बढ़ती है।

किफायती आवास की कमी के कारण इन लोगों का कागज पर कोई अता–पता नहीं होता। वे जहां भी संभव हो, घर बना लेते हैं। इससे बिजली, पानी और साफ–सफाई आदि की बुनियादी सुविधाएं सुलभ कराने की प्रक्रिया जटिल से जटिलतर हो जाती है, क्योंकि प्राधिकरण और जन–सुविधा तंत्र केवल उन्हीं को सेवा दे सकते हैं, जो कागज पर दर्ज हैं। ऐसे में गरीबी का शुरू होना स्वाभाविक है।

अतिसंकुलन (भारी भीड़) अनियमित बस्तियों के बसने का एक अन्य मुख्य कारक है। हरेक अवैध घर में अक्सर 50 से 100 लोगों के लिए केवल एक स्नान घर होता है, और निजी साफ–सफाई की कार्यप्रणालियों की जानकारी की कमी के कारण बीमारियां और संक्रमण परिवारों को घेर लेते हैं।

इन समुदायों की न्यून आय का अर्थ यह है कि समुचित चिकित्सा सहायता उनके लिए अक्सर एक पूरा न होने वाला सपना सिद्ध होती है। इसलिए, बरसात के दिनों में या बाढ़ की स्थिति में, ये बस्तियां पराश्रयी जंतुओं और छूत की बीमारियों का जनन स्थल बन जाती हैं और यह चक्र चलता रहता है।

टिप्पणी

जनसंख्या वृद्धि और गरीबी

भारत में शहरी गरीबी के कारणों को रोकते हुए जनसांख्यिकीय अवस्थांतर को बढ़ावा देना भी भारत की जनन दर पर अंकुष लगाने का एक महत्वपूर्ण तरीका है। जनसांख्यिकीय अवस्थांतर का अर्थ वह प्रक्रिया है, जिससे विश्व के सभी देश गुजर रहे हैं या उसे पूरा कर चुके हैं। इस प्रक्रिया में निम्नलिखित बिंदुओं पर विचार किया जाता है :

1. उच्च जन्म दर एवं उच्च मृत्य दर (ज्यादातर 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की)
2. उच्च जन्म दर व निम्न मृत्यु दर (उसी आयु के बच्चों की)
3. निम्न जन्म दर और निम्न मृत्यु दर (ज्यादातर परिवारों के केवल 2 बच्चे होते हैं, जो जीवित रहते हैं)

मध्य अवस्था विश्व की आबादी के बढ़ने में सहायक होती है, किंतु हम स्पष्टतः देख सकते हैं कि ज्यादातर विकासशील देशों में प्रत्येक परिवार में 4–5 के प्रति आकर्शण होता है और विश्व की अर्थव्यवस्था में सुधार आने पर इस संख्या में कमी आती है।

विश्व भर में हुए हाल के शोधों और संग्रहीत आंकड़ों से पता चलता है कि गरीबी में जी रहे लोगों में अधिक बच्चों के प्रति आकर्शण रहता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज के दिन और युग में, गरीबी बढ़ती आबादी के कारणों में से एक है। यह स्थिति पहले नहीं थी, क्योंकि मूल दवा उपलब्ध नहीं थी।

जब ग्रामीण गरीबी शहरी गरीबी बन जाए

कभी–कभी, शहरीकरण का प्रभाव बड़े नगरों के सीमाई क्षेत्रों पर पड़ता है, जिसका उन क्षेत्रों के लोगों को अक्सर लाभ मिलता है, क्योंकि उनका नगरीय जीवन से संपर्क बनता है।

किंतु, ये समुदाय आम तौर पर 'शहरी जीवन शैली' के लिए तैयार नहीं रहते। ग्रामीणों के लिए जीवन देखते–देखते अति व्ययशील हो जाता है, उनमें बेहतर वेतन वाले कामों के लिए आवश्यक कौशलों का अभाव होता है, फलतः जीवित रहने के लिए उन्हें अनियमित अर्थव्यवस्था का सहारा लेना पड़ता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना

गांव से शहरों को बड़े पैमाने पर होने वाले पलायन की रोकथाम के लिए, ग्रामीण आधारभूत संरचना की मौजूदा स्थिति में आमूल बदलाव लाना परम जरूरी है। यदि भावी पीढ़ियों को शहरी गरीबी के कारणों से मुक्त रखना है, तो झुग्गी वासियों को किसी न किसी रूप में कुछ ऋण और संसाधन भी उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

भारत ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे एवं मझोले उद्योगों तथा आय–सृजन के अन्य अवसरों को बढ़ावा देने का समुचित प्रयास कर रहा है। किंतु, अधिक से अधिक रोजगारों, समान वेतन, तीसरे दर्जे के क्षेत्र अथवा कृशि के क्षेत्र में वृत्ति और कार्य के अधिक से अधिक अवसरों की मांग को पूरा करने हेतु अधिक से अधिक निवेश करने की आवश्यकता है, ताकि शहरी आधारभूत संरचना सेवाओं पर बढ़ता दबाव कम हो सके।

टिप्पणी

उदाहरण के लिए, खेती में शोध और समुचित प्रशिक्षण का समावेश कर स्थिति में सुधार लाया जा सकता है, ताकि यह ग्रामीण क्षेत्र के विकास के समानांतर प्रभावकारी ढंग से काम कर सके। यही नहीं, ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में बुनियादी सेवाओं, स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और कौशल विकास, में अधिक से अधिक निवेश भी आर्थिक वितरण से संबद्ध समस्याओं का दीर्घकालिक समाधान सिद्ध हो सकता है।

शहरी योजना एवं झुग्गी पुनर्वास की बेहतर व्यवस्था

भारत तेजी से बढ़ते अन्य नगरों के समान विकास के मार्ग पर अग्रसर है, किंतु ऐसे में अनियमित आबादकार उत्तरोत्तर पिछड़ते जा रहे हैं। इन झुग्गियों का जन्म रातोंरात नहीं हुआ। वे दशकों की उपज हैं, बल्कि सदियों से उपेक्षित, विकास की योजना से वंचित।

शहरीकरण के पूर्ण व सफल होने में समय लगता है, किंतु झुग्गियों में जीवन में सुधार तभी हो सकता है, जब उनमें रह रहे लोगों के जीवन के रहन–सहन का उत्थान हो अथवा एक बुनियादी स्तर उसे बेहतर बनाया जाए। यही कारण है कि भारत में हमारे महत्वपूर्ण कार्यक्रमों में से एक झुग्गी पुनर्वास एवं उत्थान में शामिल है : भारत के बड़े नगरों में रह रहे समाज से बहिश्कृत परिवारों के लाखों लोगों के लिए सुरक्षित और सुंदर घरों का निर्माण।

पुनर्वास की प्रक्रिया से हम सुनिश्चित करते हैं कि इन परिवारों को स्वच्छ जल, बिजली, बेहतर रोजगार (कौशलों का प्रशिक्षण देकर) की सुविधा और उन्हें उनके घरों में रहने का अधिकार मिले। ज्यादातर झुग्गी वासियों के लिए जमीन का अधिकार वस्तुतः एक ज्वलंत विषय है, जिनके समक्ष निकाले जाने का संकट हमेशा बना रहता है (अनियमित बस्तियां आखिर अनियमित ही होती हैं)। ऐसे में देश में गरीबी और अस्थिरता और बढ़ जाती है।

पीयूआरए (ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाओं की आपूर्ति / Providing Urban amaneties in Rural Areas / पूरा) जिसका तात्पर्य रोजगार के लिए गांवों से शहर को होने वाले पलायन को रोकने हेतु ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुविधाएं मुहैया कराना है। अपनी विजन 2020 परियोजना में पूर्व राष्ट्रपति एपीजे अबुल कलाम ने पीयूआरए की अवधारणा का प्रस्ताव किया था। इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों को नगरों जैसा ही आकर्षक बनाना है। डॉ. कलाम ने जनवरी, 2004 में चंडीगढ़ में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस के 90वें सम्मेलन में यह सिद्धांत प्रस्तुत किया था। इसका लक्ष्य एवं उद्देश्य भारत को नई ऊंचाइयां और उपलब्धियां, उन्नत स्थिति और आर्थिक व्यवस्था मुहैया करना है।

इसके कुछ मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. गांव को उच्च लागत की उन्नत तकनीकी मुहैया कराना।
2. गांवों की एक श्रृंखला को 30 किलोमीटर व्यास के एक गोल सड़क से जोड़ना जिस पर बस सेवाएं निरंतर जारी रहें। इससे सभी संबद्ध गांवों के एक बाजार में समेकन होगा। फिर, वे गांव एक आभासी नगर (Virtual city) का रूप ले सकते हैं, जिसमें विस्तार और 3 से 5 लाख लोगों के समाजयोजन की क्षमता हो।

टिप्पणी

3. ग्रामीण विकास को कॉर्पोरेट सामाजिक दायित्व के रूप में स्वीकार करना।
4. ग्राम विकास की प्रेरक शक्ति के रूप में संयोजकता को कृषि के स्थान पर प्राथमिकता देना।
5. ग्राम निधि निवेश के लिए है न कि उपभोग के लिए।
6. उद्योग और सेवाओं का रोजगार सृजन में प्राथमिकता दी जानी चाहिए और कृषि क्षेत्र में रोजगार कम किया जाए।
7. अधिग्रहित भूमि के बदले किसानों को उनकी पैदावार के दोगुना मूल्य के बराबर एक वार्षिक राशि देकर क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए।
8. व्यवसाय एवं कर्मचारियों के आवास दोनों के लिए नियोक्ताओं को उप–पट्टे पर दी गई जमीन एक दूसरी के निकट हो। इससे काम के लिए रोज आने–जाने की समस्या का समाधान हो जाएगा, जो नगरों के लिए एक बाध्यता है।
9. नगरों की समान ही प्रति व्यक्ति निवेश की व्यवस्था हो।
10. पीयूआरए की प्राथमिकताएं ग्रामीण विकास के लिए हों, क्योंकि हमारी तीन–चौथाई जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है, उनकी उपेक्षा कर भारत एक विकसित राष्ट्र नहीं हो सकता।

अपनी प्रगति जांचिए

11. राष्ट्रीय रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2001 में लगभग कितने प्रतिशत शहरी परिवार झुग्गियों में रहते थे?

    (क) 23.5 (ख) 20.5

    (ग) 21.5 (घ) 22.5

12. वर्ष 2030 तक कितने मिलियन अतिरिक्त लोगों के शहरी क्षेत्रों में बसने की संभावना है?

    (क) 150 (ख) 155

    (ग) 160 (घ) 165

4.8 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (घ)
2. (क)
3. (ग)
4. (क)
5. (क)
6. (घ)
7. (ख)

टिप्पणी

8. (क)
9. (ख)
10. (घ)
11. (क)
12. (घ)

4.9 सारांश

व्यावसायिक संरचना में परिवर्तनों का आर्थिक विकास से गहरा संबंध होता है। जब प्राथमिक क्षेत्र को छोड़ कर कामगार दूसरे और तीसरे दर्जे के क्षेत्रों में काम करने लगते हैं, तब आर्थिक विकास की दर और प्रति व्यक्ति आय के स्तर में वृद्धि होती है।

ए. जी. बी. फिशर के अनुसार, ''हम कह सकते हैं कि प्रत्येक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था में रोजगार और निवेश का आवश्यक 'प्राथमिक गतिविधियों' से दूसरे दर्जे की सभी प्रकार की गतिविधियों और उससे भी अधिक तीसेर दर्जे के उत्पादन में निरंतर गमन हुआ है।''

व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन के महत्व के मद्देनजर कॉलिन क्लार्क कहते हैं, ''प्रति व्यक्ति शुद्ध आय का एक उच्च औसत स्तर तीसरे क्षेत्र के उद्योगों में कार्यरत कामगारों के उच्च अनुपात से हमेशा संबद्ध होता है, प्रति व्यक्ति निम्न शुद्ध आय हमेशा तीसरे क्षेत्र के उद्योगों में काम कर रहे कामगारों के निम्न अनुपात और प्राथमिक उद्योग के एक उच्च प्रतिशत से जुड़ी होती है।''

जनसंख्या का व्यावसायिक वितरण किसी अर्थव्यवस्था के विकास के मान और प्राप्त विविधता को प्रतिबिंबित करता है। आइए, अब हम भारत की व्यावसायिक संरचना पर चर्चा करें। भारत की व्यावसायिक संरचना स्पष्ट रूप से देश की अर्थव्यवस्था में व्याप्त पिछड़ेपन को प्रतिबिंबित करती है।

वर्तमान शताब्दी के आरंभ के समय से भारत में व्यावसायिक संरचना का झुकाव प्राथमिक क्षेत्र की ओर था। बीते 80 वर्षों के दौरान (1901–1981), प्राथमिक क्षेत्र के व्यवसायों में लगे कामगारों का अनुपात अत्यंत स्थिर बना रहा, यानी लगभग 70 प्रतिशत लोग, और द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों में यह अनुपात केवल 28 से 30 प्रतिशत के बीच था।

व्यावसायिक संरचना का उपयोग अक्सर 'वर्ग' समूहन (समूहीकरण) का सृजन करने में किया जाता है। वर्ग मापदंड के इस उपागम का वर्णन 'रोजगार समुच्चय' के रूप में किया जा सकता है, और यह इतना व्यापक है कि व्यावसायिक संरचना और वर्ग संरचना को अक्सर एक दूसरे का पर्याय माना लिया जाता है।

वर्ष 1970 से 'वर्ग विश्लेषण' के अग्रणी टीकाकार तर्क देते रहे हैं कि अग्रणी शोधकर्ताओं (जैसे ब्लाउ एवं डंकन, 1967) ने वर्गीकरण की जिन विधियों का उपयोग किया उनमें 'वर्ग' का मूल्यांकन किसी सच्चे सामाजिक अर्थ में नहीं किया गया। हालाँकि अपेक्षाकृत भिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोणों से, राइट और गोल्डथोर्प दोनों का मानना था कि पूर्व में जिन व्यावसायिक पैमानों का उपयोग किया जाता था, वे वस्तुतः

टिप्पणी

'संबंधपरक' वर्ग योजनाओं की बजाय वर्गीकृत ('कोट निर्धारण') स्थिति के मापदंड थे। इस प्रकार वर्ष 1980 के दशक के दौरान, दो मुख्य परस्पर राष्ट्रीय परियोजनाओं का गठन किया गया, जिन दोनों ने अपनी रोजगार आधारित वर्ग योजनाओं का विकास किया। राइट (1985, 1997) निर्देशित अंतरराष्ट्रीय वर्ग परियोजना अपनी प्रेरणा में स्पष्टतः मार्क्सवादी थी और जिस योजना (योजनाओं) की खोज उन्होंने की थी, उसमें (उनमें) कार्यों का वर्गीकरण उत्पादन में प्रभुत्व और शोषण के संबंधों के एक मार्क्सवादी विश्लेषण के अनुरूप किया गया था। औद्योगिक समुदायों में सामाजिक गतिशीलता का तुलनात्मक विश्लेषण (The Comaparative Analysis of Social Mobility in Industrial Societies/CASMIN) प्रकल्प में एक व्यावसायिक वर्गीकरण का उपयोग किया गया था, जिसका प्रणयन पहले अपनी सामाजिक गतिशीलता में गोल्डथोर्प ने किया था।

भारत में शहरीकरण में तेजी स्वतंत्रता के बाद शुरू हुई, देश के एक मिश्र अर्थव्यवस्था अपनाने के कारण, जिसके फलस्वरूप निजी क्षेत्र का विकास शुरू हुआ। सन् 1901 की जनगणना के अनुसार, भारत में शहरी क्षेत्रों में रह रही आबादी का प्रतिशत 11.4 था, जो वर्ष 2001 की जनगणना तक बढ़कर 28.53 प्रतिशत हो गया, और वर्ष 2017 में विश्व बैंक के अनुसार यह बढ़ कर 34 प्रतिशत हो गई। संयुक्त राश्ट के एक सर्वेक्षण के अनुसार, वर्ष 2030 में देश के शहरी क्षेत्रों की आबादी अनुमानतः 40. 76 प्रतिशत होगी। विश्व बैंक के अनुसार, 2050 तक चीन, इंडोनीशिया, नाइजीरिया और अमेरिका के साथ भारत शहरी आबादी के मामले में अग्रणी होगा।

अनुमान है कि 2030 तक भारत की लगभग आधी जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में होगी। शहरीकरण की इस गति के साथ कुछ समस्याएं पहले से ही चल रही हैं, जैसे जलापूर्ति, मलजल निपटान, नगरी कूड़ा, खुले प्राकृतिक दृश्य वाले क्षेत्र के ह्रास, वायु एवं जल प्रदूषण और सार्वजनिक परिवहन आदि की समस्याएं। इन पर्यावरणीय समस्याओं में से ज्यादातर नगरों के नियोजित विकास के कारण उत्पन्न हुई हैं, जिसमें संसाधनों का अत्यधिक उपयोग होता है, जैसे भूमि और जल। कई बार तो इस बात पर सब के साथ विचार भी नहीं किया जाता कि कौन सी चुनौतियां अधिक महत्वपूर्ण हैं और उनका समाधान होना चाहिए। इसलिए, अनुभवाश्रित प्रमाण के साथ भारत की गंभीर शहरी पर्यावरण की चुनौतियों को समझना आवश्यक है ताकि नीति निर्धारक उनकी जांच कर सकें। भारत को जिन गंभीर पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है उनमें मुख्य हैं भूमि उपयोग/भू–सीमा क्योंकि जैसे–जैसे शहरी आबादी में वृद्धि होती है वैसे–वैसे विभिन्न शहरी गतिविधियों के लिए जमीन की मांग बढ़ती जाती है।

नगरों का तेजी से विकास हो रहा है, ऐसे में पीछे छूट गए लोगों का जीवन कठिन से कठिनतर होता जा रहा है। भारत में, शहरी गरीबी के कारणों को ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत संरचना की कमी से जोड़कर देखा जा सकता है, जिसके फलस्वरूप इन क्षेत्रों के लोगों काम के लिए महानगरों की शरण लेनी पड़ती है।

जैसे–जैसे लोगों का शहरों में बढ़ता जाता है वैसे–वैस उनके रहने के लिए स्थान कम पड़ता जाता है। अनियमित आबादकारों की बढ़ती संख्या के कारण शहर का विकास नहीं हो सकता और झुग्गियों अथवा उनमें रहने वालों की जवाबदेही लेना नहीं चाहता।

टिप्पणी

भारत में शहरी गरीबी कुछ खास है, विशेष रूप से इस अर्थ में कि यह वृद्धि के कुछ प्रतिमानों का अनुसरण करती है। हालांकि रिपोर्टों के अनुसार बीते कुछ दशकों के दौरान शहरी गरीबी में आनुपातिक दृश्टि से कमी आई है, किंतु संख्या रोज बढ़ रही है, जिससे झुग्गियों की संख्या में भी वृद्धि निरंतर हो रही है।

राष्ट्रीय रिपोर्ट (आवास एवं शहरी गरीबी उन्मूलन की भारत आवास रिपोर्ट 3) के अनुसार वर्ष 2001 में लगभग 23.5 प्रतिशत शहरी परिवार झुग्गियों में रहते थे। हालांकि वर्ष 2011 तक इसमें 17 प्रतिशत की कमी आई, किंतु झुग्गियों में रहने वाले परिवारों की वर्ष 2001 की 10.5 मिलियन की संख्या बढ़कर वर्ष 2011 में 13.75 मिलियन हो गई।

भारत की मौजूदा नगरीय व्यवस्था में जनसंख्या के अलग–अलग आकारों वाले लगभग 7933 नगर और शहर हैं, और इनमें से कई नगर व शहर नगरीय वृद्धि के उस व्यापक विस्तार में आते हैं, जो वर्ष 2001 से 2011 के दशक में दर्ज किया गया। संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि भविष्य में शहरी क्षेत्रों में ही आबादी में वृद्धि होगी – वर्ष 2030 तक 165 मिलियन अतिरिक्त लोगों के शहरी क्षेत्रों में बसने की संभावना है।

किफायती आवास की मौजूदा कमी के मद्देनजर, संख्या कुछ भी हो पर इसका बढ़ना तय है। यदि नगरीय गरीबी के कारणों को दूर करना और करोड़ों झुग्गी वासियों के जीवन में सुधार लाना है, तो स्थिति में अनेकानेक परिवर्तन करने होंगे।

4.10 मुख्य शब्दावली

- **अवसर** : मौका, सुयोग, अवकाश।
- **कामगार** : श्रमिक, मजदूर, सौभाग्यशाली।
- **निरंतर** : लगातार होने वाला, अक्षय।
- **अंतरण** : स्थानांतरण, व्यवधापन।
- **प्रत्यक्ष** : जो आंखों के सामने हो।
- **किंचित** : कुछ, थोड़ा।
- **मद्देनजर** : जो नजर के सामने हो।
- **खुदरा** : थोड़ी मात्रा, रेजगारी।

4.11 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. व्यावसायिक संरचना में परिवर्तनों का आर्थिक विकास से कैसा संबंध होता है?
2. प्रवासी लोगों से आप क्या समझते हैं?
3. झुग्गियां क्या होती हैं?
4. वर्ष 2047 तक भारत के कूड़ा उत्पादन में कितनी वृद्धि होने का अनुमान है?
5. शहरी गरीबी से आप क्या समझते हैं?

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत की व्यावसायिक संरचना और इसके परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।
2. बदलती व्यावसायिक संरचना के सामाजिक स्तरण पर पड़ने वाले प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
3. झुग्गी बस्तियों के बढ़ने के क्या कारण हैं और इनसे संबंधित समस्याएं क्या हैं?
4. शहरी पर्यावरण से जुड़ी भारत की समस्याओं का विश्लेषण कीजिए।
5. शहर की गरीबी के कारणों तथा प्रभावों की व्याख्या कीजिए।

4.12 सहायक पाठ्य सामग्री

DeFilipps, James, *Unmarking Goliath: Community Control in the Face of Global Capital.* New York, NY: Routledge, 2003.

King, Anthony D., *Global Cities: Post-imperialism and the Internationalization of London.* New York, NY: Routledge, 1991.

Gans, Herbert J., *Urban Villagers: Group and Class in the Life of Italian-Americans.* New York, NY: The Free Press, 1982.

Gans, Herbert, *The Levittowners.* New York, NY: Columbia University Press, 1982.

Levitt, Peggy, *The Transnational Villagers.* Berkeley, CA: University of California Press, 2001.

Mollenkopf, John Hull, *The Contested City.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 1983.

Burgess, Ernest W., and Robert E. Park, *The City.* Chicago, IL: University of Chicago Press, 1984.

Sassen, Saskia, *The Global City: New York, London, Tokyo.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 2001.

Sugrue, Thomas J., *The Origins of the Urban Crisis: Race and Inequality in Postwar Detroit.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 2005.

Castells, Manuel, *The Castells Reader on Cities and Social Theory.* Edited by Ida Susser. Malden, MA: Blackwell Publishing Limited, 2002.

Wellman, Barry, *Networks in the Global Village: Life in Contemporary Communities.* Boulder, CO: Westview Press, 1999.

Whyte, William Foote, *Street Corner Society: The Social Sructure of an Italian Slum.* Chicago, IL: University of Chicago Press, 1993.

टिप्पणी

इकाई 5 भारत में नगरीय योजना एवं नगर प्रबंधन की समस्याएं

संरचना

5.0 परिचय
5.1 उद्देश्य
5.2 भारत में नगर योजना
5.3 महानगर प्रबंधन एवं नगर–प्रेरित क्षेत्र योजना
5.4 सामाजिक क्षेत्र नीति एवं शहरी विकास
5.5 क्षेत्रीय एवं स्थानिक योजना
  5.5.1 महानगर योजना एवं शासन का अभाव
  5.5.2 आधारभूत संरचना विकास : नई चुनौतियां
  5.5.3 भारत में शहरी परिदृश्य
5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
5.7 सारांश
5.8 मुख्य शब्दावली
5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

5.0 परिचय

नगरों की योजना क्षेत्रीय संदर्भ के, विशेष रूप से उन निकटवर्ती शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों के, अनुरूप होनी चाहिए, जो उन पर निर्भर हों, हालांकि कुछ नगर अन्य देशों में अपने बाजारों से गहनता से जुड़े होंगे। इससे शहरीकरण और आर्थिक विकास की एक क्षेत्रीय योजना तैयार करने में सहायता मिलेगी जिसका राज्य स्तर पर समेकन किया जाएगा। ऐसे अनेकानेक क्षेत्र सामने आने लगे हैं, किंतु असहयोगी नीतियों और प्रशासकीय बाध्यताओं के कारण सीमित हैं, जिन्हें दूर करने की जरूरत है, उदाहरणस्वरूप आधारभूत संरचना पर मुंबई कार्यबल ने मुंबई, पुणे व नासिक त्रिकोण को अपना क्षेत्र माना, मेरठ, गाजियाबाद, गुरुग्राम, फरीदाबाद आदि समेत दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के इर्द–गिर्द के नगर आर्थिक दृष्टि से पहले से ही गहनता से परस्पर निर्भर हैं, हैदराबाद और विशाखापट्टनम तथा चेन्नई के आसपास के अन्य क्षेत्र भी एक शक्तिशाली सुसंगठित क्षेत्र के रूप में उभरने लगे हैं।

प्रस्तुत इकाई में भारत में नगरीय योजनाओं का विस्तृत अध्ययन किया गया है तथा नगर प्रबंधन से जुड़ी समस्याओं का विवेचन किया गया है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भारत की नगरीय योजना को समझ पाएंगे;
- नगर प्रबंधन की समस्याओं का विश्लेषण कर पाएंगे;

टिप्पणी

- नगर–प्रेरित क्षेत्र योजना की व्याख्या कर पाएंगे;
- सामाजिक क्षेत्र नीति एवं शहरी विकास के बारे में जान पाएंगे;
- स्थानिक योजना के स्वरूप की विवेचना कर पाएंगे।

5.2 भारत में नगर योजना

किसी नगर के अभिकल्प और विकास में सुधार लाने में बेहतर नगर योजना हमेशा ही एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। योजना के संवर्धन हेतु उन्नत तकनीकी और राजनीतिक निर्णयों की आवश्यकता होती है। इसलिए, हमारी नगर योजना के कार्य के विकास के लिए, हमें न केवल बेहतर उपकरण बल्कि कौशलप्राप्त एवं सुशिक्षित भवन निर्माताओं, अभियंताओं और नगर प्रशासन की जरूरत है। तभी हम स्थितियों में बदलाव की आशा कर सकते हैं।

नगर योजना एक प्रक्रिया है। इसमें निर्मित पर्यावरण के लिए सृजनात्मक ढंग से उपयोग की जाने वाली भूमि का अभिकल्प और विकास आते हैं। इसमें वायु, जल और आधारभूत संरचना से जुड़े तकनीकी और राजनीतिक निर्णय आते हैं। विभिन्न समुदायों के लिए समाधान तैयार करने हेतु भवन निर्माण कला, संरचनात्मक अभिकल्प और असैनिक अभियंत्रण की विस्तृत योजना की जरूरत होती है। हमें इस पर विचार करना चाहिए।

हमें नीचे प्रस्तुत कुछ बिंदुओं पर विमर्श करना चाहिए–

1. **खोज** : इसमें ऐसे समुदायों का निर्माण करने हेतु पर्यावरण के विभिन्न पक्षों पर विचार करना और उनका पता लगाना शामिल है, जिन्हें संचार तंत्र, परिवहन आदि की सुविधा सुव्यवस्थित ढंग से सुलभ हो, ताकि सामाजिक परिवेश सुरक्षित रहे।
2. **समस्या समाधान** : शहर की योजना से जुड़ी समस्याओं के समाधान में संगठित, व्यावहारिक, संतुलित, आधुनिक और सुरिचिपूर्ण पद्धति अभिनव विचारों और अभिकल्प स्तर पर उनके क्रियान्वयन से संभव है।
3. **विस्तार प्रक्रिया** : नगर योजना के इस क्षेत्र में आधारभूत संरचना पर आधारित आर्थिक विकास और समुदाय की सहायता हेतु अन्य प्राकृतिक संसाधनों की योजना शामिल है। यह समाज एवं परिवेश योजना की एक कड़ी है।
4. **मानवीय अनुभव** : लोगों के परस्पर व्यवहार और विचारों के आदान–प्रदान का संसाधनों की उपलब्धता और सरल संयोजकता (connectivity) पर एक पारस्परिक प्रभाव पड़ता है। इससे लोगों के अनुभव का संवर्धन होता है और सामाजिक संयोजन सुदृढ़ होता है।
5. **शहर को सुखी–समृद्ध बनाना** : कालांतर (समय का बीतना) जमीन, जल, ऊर्जा और परिवहन की आवश्यकता में बदलाव का एक कारक है और इससे लोगों के रहन–सहन के अनुरूप शहर का पुनर्निर्माण करने का अवसर मिलता है, वहीं यह शहरी क्षेत्रों को आधुनिक तकनीक के अनुकूल बनाने के लिए उनका जीर्णोद्धार करने के साथ–साथ उन्हें सुवस्थित करने में सहायता करता है ताकि वे आधुनिक तकनीकी के अनुकूल हो सकें।

वर्ष 1990 का दशक वह काल था जब आर्थिक उदारीकरण शुरू हुआ और भारत ने विकास के अर्थशास्त्र की एक नई दिशा तैयार की। इसने दो क्रांतिकारी दौर का उदय भी देखा – सूचना तकनीकी जिसने भौगोलिक सीमाओं के पार संस्कृतियों और लोगों को जोड़ना शुरू किया और पूंजी की गतिशीलता को नया रूप दिया। भारत के नगरों ने सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन को गति देना शुरू किया और विश्व के मानचित्र पर स्वयं को दृढ़ता से स्थापित किया। आज, हमारे नगर समस्त विश्व के व्यवसाय–वाणिज्य की गतिविधि तथा रुचि का केंद्र हैं। वे न केवल भारत की अर्थव्यवस्था में पर्याप्त सहयोग करते हैं बल्कि निवेशकों को आकर्षित भी करते हैं। वे शिक्षा, रोजगार सृजन, नवप्रवर्तन, कलाओं और संस्कृति का केंद्र बन चुके हैं।

नगर प्रबंधन में समस्याएं

(क) शहरों का बेतरतीव फैलाव (शहरों का फफूंदियों की तरह उगना)

शहरों के बेतरतीव फैलाव का अर्थ घनी आबादी वाले शहरों और नगरों के लोगों का गांवों के कम आबादी वाले क्षेत्रों में प्रवासन है, जहां रिहायशी मकानों का विकास होता है। इस प्रवासन के कुछ दुष्परिणाम होते हैं, जिनमें मुख्य इस प्रकार हैं–

1. **सार्वजनिक व्यय में वृद्धि** : सार्वजनिक लागतों में वृद्धि में वस्तुतः इनकी भूमिका हो सकती है, क्योंकि इन परिवर्तनों के कारण आधारभूत संरचनाओं और निर्माण में परिवर्तन आते हैं और इसका भुगतान किसी के द्वारा ही होना चाहिए – और वे सामान्यतः करदाता होते हैं।
2. **आवागमन में वृद्धि** : लोग अपनी गाड़ियों का उपयोग जब–तब करने लगेंगे, जिससे सड़कों पर भीड़ बढ़ेगी।
3. **पर्यावरणीय (परिवेशीय) समस्याएं** : यदि हम इन भू–क्षेत्रों के विकास पर विचार करें, तो हमें उन वन्य–जीवों की चिंता करनी होगी, जो इन भू–क्षेत्रों में रहते हैं। आप उन्हें वहां से हटाएंगे, और इसका पर्यावरण पर निश्चय ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

(ख) भूमि का निजी स्वामित्व अथवा छोटे–छोटे टुकड़े

शहरी भूमि के छोटे टुकड़ों के निजी स्वामी कभी–कभी नगर के क्षेत्र के ढांचे के प्रभावी संचालन में दखल दे सकते हैं, जैसा कि नीचे उल्लेख किया गया है–

1. यदि किसी पुरुष अथवा स्त्री को अपनी भूमि का अपनी इच्छा के अनुरूप अप्रतिबंधित उपयोग करने का अधिकार हो, तो वह आवासीय क्षेत्र में कोई दुकान या कारखाना खोल सकता है, इससे निकटवर्ती आवासीय घरों के मूल्य में कमी आएगी।
2. यदि किसी अविरत (संतत) आवासीय क्षेत्र में, जहां दो घरों की दीवारें साझा हों, तो इन क्षेत्रों में समस्याएं तब उत्पन्न होती हैं, जब घर के बिगड़ जाने की स्थिति में किसी घर का स्वामी अपने घर की मरम्मत या जीर्णोद्धार कराना चाहे किंतु दूसरा नहीं। उनमें टकराव पैदा होता है, जो भविष्य में समस्या का रूप ले सकता है।
3. यदि कोई निजी बिल्डर एक ही भूखंड पर निर्माण या पुनर्निर्माण का कोई कार्य करना चाहे, तो उसे दो समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है, एक, उसे

मौजूदा गृहस्वामी को अतिरिक्त पैसा देना पड़ सकता है, और दूसरी उसे किसी पड़ोसी द्वारा खड़ी की गई समस्या का सामना करना पड़ सकता है। ये दोनों ही समस्याएं शहर के विकास में बाधा खड़ी करती हैं।

टिप्पणी

(ग) पर्यावरण की दृष्टि से विशिष्ट स्थल

प्रत्येक नगर/शहर का कोई विशिष्ट पर्यावरणीय स्थल, पहाड़ियां, घाटियां, नदियां, नदी या समुद्रतट होते हैं अथवा कोई अन्य भौतिक विशेषता किसी नगर/शहर को किसी दूसरे नगर/शहर से भिन्न बनाती है, जैसा कि नीचे उल्लेख किया गया है–

1. नगर के भवन स्थलों रूप में अलग–अलग क्षेत्रों के मूल्य अलग–अलग हैं, क्योंकि नींवों की मजबूती, नीचे की मिट्टी (अवभूमि) के आवाह या निकास की विशेषताओं आदि को भूतल के नीचे की मिट्टी और शिलाखंड कमजोर करते हैं। इन सभी कारकों के चलते भूमिगत निर्माण पर आने वाली लागत अलग–अलग होती है। वहीं, अलग–अलग भवनों के लिए असमतल (ऊबड़–खाबड़) भूभाग अलग–अलग गुण और अलग–अलग दोष होते हैं।
2. भूस्थलाकृति का परिवहन एवं यातायात के मार्गों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि कोई भारी रेल मार्ग बनाना हो, तो इसके लिए समतल मार्ग की जरूरत होती है, किंत नगर/शहर में यह विशेषता नहीं होती है, इसलिए परिवहन एवं यातायात पर प्रभाव पड़ता है।
3. परिवहन एवं यातायात में, जैसे जलमार्ग से थलमार्ग अथवा सड़क से रेलमार्ग, में विराम (Breaks/varjky) कुछ विनिर्माण और वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए लाभदायक होता है।
4. नगरों के कुछ हिस्सों में कुछ अन्य नगरों से अधिक सुविधाएं होती हैं। ये सुविधाएं बेहतर दृश्य और बाजार की सुलभता के रूप में हो सकती हैं।

(घ) किफायती आवास

किफायती आवास का तात्पर्य उन घरों से है, जो मध्य आय के लोगों के लिए सुलभ हों। आवास की पसंद (विकल्प) कतिपय जटिल आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारणों की प्रतिक्रिया होती है, जैसा कि नीचे बताया गया है–

1. **आवास व्यय** : किफायती आवास का मूल्यांकन आवास के मूल्यों और किरायों के बीच तथा आवास के मूल्यों और आयों के बीच संबंधों की दृष्टि से किया जा सकता है। किफायती आवास के निर्णय निर्माताओं में वृद्धि हुई है क्योंकि आवास के मूल्य में नाटकीय ढंग से वृद्धि हुई है, जिससे किफायती आवास के मामले में एक संकट पैदा हो गया है।
2. **अर्थव्यवस्था** : किफायती आवास की कमी से स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं पर एक खास प्रकार का बोझ पड़ता है। वहीं, व्यक्तिगत उपभोक्ता रेहन की बकाया राशि और ऋण के बोझ से ग्रस्त हैं और इसलिए वे खर्च में कटौती करते हैं। आवास की उच्च लागतों और ऋण की अधिकता के कारण बचतों में कटौती होती है।

टिप्पणी

3. **परिवहन एवं यातायात** : किफायती आवास की कमी के चलते कम मजदूरी वाले मजदूरों का अभाव हो सकता है, और परिवहन व यातायात की सुलभता की मांग बढ़ सकती है, क्योंकि कामगार दूरवर्ती क्षेत्रों से आते हैं।

मुख्य वित्तीय बाधाएं

शहरी आधारभूत संरचनाओं के लिए निवेश की आवश्यकाताओं का आकलन करना कठिन होता है क्योंकि इसमें मापदंडों का निर्धारण किया जाता है, जो निस्संदेह एक आलोचनात्मक कार्य होता है। फिर भी योजना के प्रयोजन से आकलन करने हेतु यह आवश्यक होता है। अतीत में शहरी आधारभूत संरचना की जरूरतों को पूरा करने हेतु निधि की आवश्यकताओं के अनेकानेक आकलन किये गए हैं। किंतु, वर्तमान में आधारभूत संरचना परियोजना व्याणिज्यीकरण विशेषज्ञ समूह (Expert Group on Commercialization of Infrastructure Projects/ECGIP, 1996) के आकलन सर्वाधिक नवीन हैं, हालांकि वे आठ वर्ष पूर्व किये गए।

वर्ष 1996 में जारी भारतीय आधारभूत संरचना प्रतिवेदन (Indian Infrastructure Report) में वर्ष 1995 से 2005 तक की अवधि के लिए नगर जलापूर्ति, साफ–सफाई और सड़कों के लिए सालाना 280 बिलियन रुपये (6.6 बिलियन अमेरिकी डॉलर) के निवेश का अनुमान प्रस्तुत किया गया। नौवीं पंचवर्षीय योजना के लिए एक अन्य आकलन में शहरी क्षेत्रों में आवास हेतु 526 बिलियन रुपये (12.5 बिलियन अमेरिकी डॉलर) निवेश की आवश्यकता बताई गई। केंद्रीय लोक स्वास्थ्य अभियंत्रण (The Central Public Health Engineering/CPHEEO) के आकलन में 100 प्रतिशत शहरी आबादी के सुरक्षित जल की पूर्ति व साफ–सफाई सेवाओं के साथ समावेश के लिए 2021 तक 1729 बिलियन रुपये (38.40 बिलियन अमेरिकी डॉलर) की आवश्यकता कही गई है। भारतीय रेल तकनीकी एवं आर्थिक सेवा (Rail India Technical and Economic Services) का मानना है कि 100,000 की आबादी वाले नगरों में अगले 20 वर्षों के दौरान शहरी परिवहन एवं यातायात आधारभूत संरचना के लिए 2070 बिलियन रुपये (46.48 बिलियन अमेरिकी डॉलर) की आवश्यकता होगी। ये सभी आकलन, पक्के अथवा कच्चे, शहरी क्षेत्र की बड़ी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु शहरी आधारभूत संरचना में निवेश में वृद्धि की आवश्यकता बताते हैं।

परंपरा के अनुसार शहरी आधारभूत संरचना के व्यवस्थापन को सरकार के एक प्रधान कार्य के रूप में देखा जाता रहा है। इन बुनियादी सेवाओं को आम तौर पर सरकार द्वारा उपभोक्ताओं को निःशुल्क या मामूली व्यय पर मुहैया कराई जाने वाली सामाजिक वस्तु माना जाता रहा है। ऐसा इसलिए कि शहरी आधारभूत संरचना सेवाओं में नैसर्गिक एकाधिकार होने की विशेषता होती है और एक भय हमेशा रहा है कि निजी क्षेत्र के हस्तक्षेप से इसका शोषण–दोहन हो सकता है। सड़कों, सड़क की प्रकाश व्यवस्था, जलापूर्ति और मल–जल निकास प्रणाली शहरी जीवन के लिए अनिवार्य आवश्यकताएं हैं, किंतु कर राजस्व अथवा अन्य शुल्कों की पर्याप्त धनापूर्ति के बिना इसमें आने वाले व्यय वहन करना कठिन है, ऐसे में शहरी आधारभूत संरचना में निजी क्षेत्र का निवेशा आसान नहीं है। यही नहीं, एक आवश्यकता होने के कारण जल जैसी आधारभूत संरचना की कुछ सेवाओं की मांग लोचहीन होती है, इस प्रकार यदि मूल्यों को नियंत्रित न किया जाए, तो इन सेवाओं का निजी व्यवस्थापन शोषणकारी हो सकता है।

हालांकि एक समयबद्ध तरीके से नगरपालिका के वित्त का भरोसेमंद विवरण मिलना कठिन है, किंतु अनुमानतः सभी नगर निकायों द्वारा किया गया व्यय सरकार के कुल व्यय के 5 से 7 प्रतिशत के बीच रहा। शोधों से पता चलता है कि बीते दशक के दौरान हालांकि कुछ बड़े नगरों की वित्तीय स्थिति में सुधार किया गया, किंतु अपने आवश्यक कार्यों के निष्पादन हेतु ज्यादातर छोटे और मझोले शहर पूरी तरह से राजकोश से मिलने वाले वित्त पर निर्भर रहे। इसके अतिरिक्त आधारभूत संरचना में निवेश हेतु शहरी क्षेत्रों को मिलने वाली निधियों में अधिकांश योगदान भारत सरकार और राज्य की सरकारों का होता है।

स्थायी सुधार के लिए बेहतर राजस्व, बेहतर अनुपालन और प्रशासन आवश्यक है। आज भारत के विभिन्न राज्यों के समक्ष खड़ी वित्तीय बाध्यताओं को देखते हुए, मौजूदा व्यय में पूंजीगत व्यय नहीं होता और ऐसे में विकास हेतु आवश्यक कार्यों के लिए बहुत कम धन शेष रह जाता है। करेतर आय जैसे विभिन्न जन सेवाओं/सुविधाओं हेतु उपभोक्ता शुल्क की संग्रह क्षमता में सुधार के अतिरिक्त भारत के विभिन्न राज्य सेवा क्षेत्र से कर लेने और आय प्राप्त करने की भारत सरकार से अनुमति की मांग करते रहे हैं। राज्य और स्थानीय शासनों के कर आधार को विस्तार देने के प्रयास जारी हैं और उन्हें और मजबूत करने की जरूरत है।

भूमि नीतिक बाधाएं

जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है, शहरीकरण आर्थिक वृद्धि का एक मुख्य स्रोत और परिणाम दोनों है। जमीन की उपलब्धता शहरीकरण और स्थायी आर्थिक विकास का एक पहली आवश्यकता है। शहरी परिवेश में प्रतिस्पर्धात्मक उपयोगों में भूमि संसाधनों के नियंत्रण को सर्वाधिक महत्वपूर्ण निवेश का रूप देते हुए इसके लिए स्पर्धा होती है। इस पहलू को ध्यान में रखते हुए, हाल के एक शोध (मैकिन्से, 2001) में वर्ष 1990 के दशक में देश के उदारीकरण के समय से बीते वर्षों में सामने आए विकास में वृद्धि को बनाए रखने की भारत की क्षमता की संभवतः एकमात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण बाध्यता के रूप में शहरी जमीन–जायदाद बाजार (अचल संपदा बाजार) की पहचान की गई। एक अन्य शोध (जेफर साख्स एवं अन्य, 2002) में इसी प्रकार का संकेत मिलता है : अनुभवजन्य प्रमाण से पता चलता है कि केवल विकास राज्यों में तेजी से होता है, जिनका पर्याप्त शहरीकरण हो चुका है, जबकि अन्य राज्य पीछे हैं, अक्सर बहुत पीछे। इसके अतिरिक्त, यदि उनके नगरों में निजी निवेश को बढ़ावा देने वाली उनकी नीतियां बाजार के अनुकूल नहीं हैं, तो वे आगे नहीं बढ़ पाते।

हरे योजना अवधि में शहरी जमीन के मूल्यों में ''अनपेक्षित'' और ''असाधारण'' वृद्धि के प्रति एक चिंता सतत बनी रही है। शहरी जमीन के मूल्यों पर नियंत्रण नगरीय नीति का एक मुख्य उद्देश्य माना गया है। दिल्ली बड़े पैमाने पर भूमि अधिग्रहण की नीति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इस पद्धति में विचार यह था कि बढ़ते नगरों के अभी तक अविकसित सीमाई क्षेत्र की समस्त जमीन का कोई सार्वजनिक प्राधिकरण आरंभ में अधिसूचना जारी कर प्रचलित कृषि मूल्यों पर अधिग्रहण करता है और इस प्रकार परिनगरीय क्षेत्रों में जमीन के किसी भी संभावित कल्पित मूल्य को दूर करता है। अन्य लाभों के अतिरिक्त इस पद्धति के ये लाभ भी हैं :

(1) जमीन के मूल्य में किसी भी प्रकार की वृद्धि उस सार्वजनिक संस्था को मिलेगी, जो सार्वजनिक प्रयोजनों से इसका उपयोग करेगी,

(2) वही क्योंकि सीमाई क्षेत्र के भूखंडों पर उस सार्वजनिक प्राधिकरण का नियंत्रण इसलिए वही भविष्य में नगर के विकास की योजना बेहतर ढंग से तैयार कर सकेगा,

(3) वह सार्वजनिक संस्था गरीबों के लिए भी योजना बना सकेगी।

वैसे, भूमि के सार्वजनिक अधिग्रहण का अनुभव असंतोषजनक रहा है, क्योंकि लोक प्राधिकरण निहायत ही कम मूल्यों पर जमीन प्राप्त कर लेते हैं, जिससे उस जमीन का उपयोग बहुत ही अपव्ययी, अलाभकर और प्रभावहीन पद्धतियों से किया जाता है।

शहरी भूमि नीति के गठन की शहर के विकास की गतिविधियों की जानकारी देते हुए सूचना देने के साथ–साथ सार्वजनिक नीति की क्षमता की सीमाओं को मान्यता दी जानी चाहिए। शहरी भूमि नीति की मूलभूत समस्या सही स्थलों पर, सही समय में और सही मूल्य पर परिष्कृत भूमि की आपूर्ति है। ये चार विचार आपस में घनिष्ठता से जुड़े हैं।

ज्यादातर अवसरों पर प्रत्यक्षतः स्थानीय निकायों द्वारा नियंत्रित भवन उपनियमों का नगरों के स्वरूप पर सार्थक प्रभाव पड़ता है, और फिर इसका व्यापक असर उनकी अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। भवन विनियमन के एक मुख्य अंग सकल भूखंड क्षेत्रफल अनुपात (Floor Area Ratio (एफएआर) में सुधार को, कई शहरी नीतियों के एक व्यापक सुधार का अंग होना चाहिए। एफएआर में सुधार का लाभ तभी होगा जब केंद्रीय व्यावसायिक जिलों में एफएआर के साथ अन्य वाणिज्यिक क्षेत्रों में हुई वृद्धि से मौजूदा संरचनाओं का एक सुदृढ़ पुनर्विकास हो, जिसमें आधारभूत संरचना और यांत्रिक उपकरण से सुसज्जित आधुनिक क्षेत्र की व्यवस्था हो और जो एक आधुनिक तंत्रिका अर्थव्यवस्था (Wired economy) के अनुकूल हो। ऐसा हो इसके लिए किसी शहर के विभिन्न सुधार निम्नलिखित बिंदुओं के मद्देनजर किए जाने चाहिए–

1. भूमि क्रय–विक्रय लागत में कटौती
2. सार्वजनिक शहरी क्षेत्र जैसे सड़कों और पटरियों का बेहतर प्रबंधन
3. शहरी क्षेत्रों में सांस्थानिक जायदादों की लेखा परीक्षा, जिस जमीन का उपयोग बहुत कम होता हो उसे बाजार में रोकते हुए, और नगरपालिका ठोस कूड़ा प्रबंधन का उत्थान

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के एक अंग के रूप में नगरपालिका ठोस कूड़ा (प्रबंधन एवं नियंत्रण) नियम 2000 की अधिसूचना ने नगरपालिका प्राधिकरणों को कूड़ा प्रबंधन की कार्यप्रणालियों के पर्यावरणीय परिणामों में सुधार लाने के प्रयासों के केंद्र में ला खड़ा किया है। छोटे व मझोले आकार की नगरपालिकाओं में लगभग 65 से 70 प्रतिशत कूड़ा जमा होता है, पर यह बड़ी नगरपालिकाओं में बहुत कम लगभग 15 से 20 प्रतिशत कूड़ा उत्पादन से बहुत कम है। विनियमन में उल्लिखित नए मापदंडों का तात्पर्य प्रत्यक्षतः नगर निगमों के व्यय में प्रचुर वृद्धि से हो सकता है। हालांकि यह छोटे व मझोले शहरों में सत्य हो सकता है, किंतु बड़े महानगरों में चालू प्रणालियों की रूपरेखा और संचालन में सुधारों से वर्तमान में उपलब्ध निधियों के बेहतर उपयोग के

अवसर होते हैं। सेवा वितरण में सुधार लाने और राजकोषीय बाधाओं को दूर करने के लिए संप्रति समस्त देश में कई नगरपालिका संस्थाएं निजी क्षेत्र की भागीदारी के तंत्रों के साथ प्रयोग कर रही हैं। उदाहरणस्वरूप कुछ सुधार कार्य इस प्रकार हैं : (1) प्राथमिक संग्रह – त्रिवेंद्रम के पांच वार्डों में घर–घर संग्रह; (2) चेन्नई व दिल्ली में निजी क्षेत्र को संग्रह और ढुलाई का ठेका; और (3) विजयवाड़ा, हैदाबाद, लखनऊ, दिल्ली व बेंगलुरु में कूड़ा प्रशोधन एवं निपटान।

भारत ने अपने लिए कुछ बृहत आर्थिक लक्ष्य निर्धारित किए हैं। इन लक्ष्यों में लगभग आठ प्रतिशत तक स्थायी आर्थिक विकास, मूल्य की स्थिरता और राजकोषीय घाटों में कमी तथा आधारभूत संरचना में बृहत्तर निवेश सर्वाधिक प्रमुख हैं। चुनावों के समय ये लक्ष्य सबसे बड़े दलों के दोनों घोषणापत्रों में दिखाई देते हें। शहर सुधार उस प्रक्रिया के आरंभिक चरणों में है, जो दस वर्ष पूर्व अन्य प्रमुख क्षेत्रों में शुरू हुई, और जो आज चालू है – आर्थिक उदारीकरण प्रक्रिया के शुरू होने के एक दशक से अधिक समय के बाद, किंतु शहर सुधार कार्यक्रम के स्थायी क्रियान्वयन के स्तर से तय होगा कि भारत उच्च आर्थिक विकास के स्थायी स्तरों की आर्थिक महत्वाकांक्षाओं को हासिल करने में सक्षम है या नहीं।

बृहत अर्थशास्त्र की नीतियां और शहरीकरण पर उनका प्रभाव

बृहत अर्थशास्त्र की नीतियां और शहर की आवश्यकताओं से उनके पारस्परिक संबंध एक ऐसा पहलू है, जिसे ठीक से समझा नहीं गया है, किंतु उभरते परिदृश्य में इसका महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता जाएगा। हमने चर्चा की है कि विभिन्न राष्ट्रीय आर्थिक नीतियां शहर के विकास के मार्ग में बाधा खड़ी कर सकती हैं। इस खंड में बृहत स्तर की कुछ मुख्य राष्ट्रीय नीतियों का अध्ययन किया गया है, जिनका शहरीकरण पर प्रभाव पड़ता है। इसमें तीन विस्तृत क्षेत्रों पर विमर्श किया गया है, जिनका शहरी विकास से सीधा संबंध है।

(क) सार्वजनिक निवेश, कराधान एवं वित्त स्थानांतरण से संबद्ध राष्ट्रीय राजकोषीय नीति;

(ख) वैश्वीकरण के परिणाम

(ग) उद्योग नियंत्रण एवं स्थान निर्धारण नीतियां

(घ) शिक्षा एवं स्वास्थ्य से संबद्ध सामाजिक क्षेत्र नीति

राष्ट्रीय राजकोषीय नीति

किसी भी देश की नीति संरचना के एक महत्वपूर्ण संघटक मुख्य आधारभूत संरचना में सार्वजनिक निवेश का शहरी आधारभूत संरचना विकास से प्रत्यक्ष संबंध होता है। सार्वजनिक निवेश नीति बड़े स्तर का एक महत्वपूर्ण मुद्दा होती है जो आधारभूत संरचना में शहरी और क्षेत्रीय दोनों स्तरों पर सार्वजनिक एवं निजी दोनों निवेशों की शर्तों का निर्धारण करती है। बीसवीं शताब्दी में ज्यादातर देशों की तरह भारत में भी यह दृष्टिकोण अधिकांश आधारभूत संरचना में पूंजी लगाने हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के लिए था। किंतु, भारत में नगर स्तर पर अन्य नीतिगत सख्तियों के साथ–साथ राजकोषीय बाधाओं के फलस्वरूप भारत में शहरीकरण के बीते 20 से 30 वर्षों के दौरान शहरी

आधारभूत संरचना में निवेश संतोषजनक नहीं रहा है (ईजीसीआईपी, 1996 / EGCIP, 1996)। ऐसे में शहरी आधारभूत संरचना, खास तौर पर जलापूर्ति और साफ–सफाई तथा ठोस कूड़ा प्रबंधन बुरी तरह से प्रभावित हुआ है। 1990 के दशक के मध्य में निजी भागीदारी की संभावनाओं को लेकर देश में व्यापक स्तर पर आशा थी। आज स्थिति बदल गई है और इस आशावादिता या कल्पना का स्थान आधारभूत संरचना में निजी क्षेत्र के निवेश के लिए आवश्यक संरचना के प्रति गहरी यथार्थवादी सोच ने ले लिया है। इसके लिए आधारभूत संरचना में निवेश के अपेक्षाकृत अधिक हितकर संरचना मुहैया कराने हेतु सरकार से सतत प्रयास की आवश्यकता है। आधारभूत संरचना में व्यापक स्तर पर बृहत्तर निवेश का सृजन करने के लिए स्वयं को फिर से तैयार कर रही है। किंतु, संभव है कि शहरी आधारभूत संरचना ध्यान से वंचित रह जाए, जबकि इस पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

इसलिए भारत में अगले 30 वर्षों के दौरान शहरी आधारभूत संरचना में निवेश की भारी आवश्यकताओं पर सार्वजनिक व निजी निधीयन, जिसका संग्रह किया जाएगा, के प्रति नए सिरे से विचार करने की जरूरत है। सार्वजनिक निवेश के लिए सार्वजनिक संसाधनों की जरूरत होगी। सार्वजनिक निवेश के लिए सार्वजनिक संसाधनों का संग्रह कराधान अथवा सरकारी ऋणादान से किया जाएगा। अलग–अलग देशों के अलग–अलग संघीय राजकोषीय संरचनाएं होती हैं। सामान्य स्थिति में, यदि परियोजना का विस्तार किसी क्षेत्र की सीमा से बाहर न हो, तो आधारभूत संरचना के निवेशों में स्थानीय संसाधनों से धन लगाना उचित होगा। मुख्य बिंदु यह है कि सार्वजनिक निवेश में धन अंततः उचित कराधान – वह चाहे संघीय हो या राज्य का अथवा स्थानीय – से किया जाना चाहिए, जबकि उपयोगकर्ता शुल्कों के कर के अधीन आने वाली परियोजनाओं में धन निधीयन के निजी स्रोतों से लगाया जा सकता है। किसी भी स्थिति में, पूंजीगत लागतों के लिए धन की सहायता लेनी होगी। लोगों को यह मानने के लिए समझाना होगा कि आधारभूत संरचना किसी भी स्थिति में निःशुल्क नहीं होती और उसके लिए दाम चुकाने पड़ते हैं। यदि का सृजन उपयोगकर्ता शुल्कों के संग्रह से न हो, तो कराधान से किया जाएगा। समूचे भारत में, उन नगरों को छोड़कर, जहां जलापूर्ति की सेवाओं की गुणवत्ता अत्यंत खराब है, शहरों में जल पर प्रति किलो लीटर शुल्क औसतन लगभग 1.5 रुपये (0.03 अमेरिकी डॉलर) लिया जाता है, जबकि लागत प्रति किलो लीटर औसतन लगभग 15 रुपये (0.33 अमेरिकी डॉलर) आती है।

कराधान नीति, जो एक बृहत स्तर का मुद्दा है, का शहरी क्षेत्रों पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ता है। आधारभूत संरचना में सार्वजनिक निवेशों में धन लगाने हेतु राजस्व के एक मजबूत आधार की जरूरत होती है। यह जरूरी नहीं है कि कर की उच्च दरों की जरूरत हो, किंतु शहरी आधारभूत संरचना में निवेश के लिए संसाधनों में वृद्धि हेतु उन्नत कर प्रशासन और बेहतर अनुपालन की प्रक्रिया लंबे समय तक जारी रखनी होगी। भारत में कुल राजस्व में उपयोगकर्ता शुल्क का अंश बहुत कम है। इसमें यथेष्ठ वृद्धि की आवश्यकता है और राजनीतिक विमर्श में सीधे तौर पर स्थान दिया जाना चाहिए। भविष्य में हमें उपयोगकर्ता शुल्कों की अवधारणा का प्रचार करने की जरूरत होगी, जिससे न केवल भारी मात्रा में संसाधनों की प्राप्ति होगी बल्कि सेवाओं का उपयोग करने वालों और सेवाएं मुहैया कराने वालों के बीच जवाबदेही भी बढ़ेगी।

राजकोषीय अंतरण और शक्तियों तथा वित्त के विकेंद्रीकरण में वृद्धि का शहरीकरण पर एक दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता है। विकेंद्रीकरण शहरी विकास का एक आधार है, जिसमें शासन की स्थानीय इकाइयों को उनके अपने विकास में सक्रिय भागीदारी की छूट होती है। बीते कुछ वर्षों के दौरान एशिया में नगरों को उनके अपने निवेशों के निर्धारण व उनके वित्त के नियंत्रण–संचालन के लिए प्रेरित करने के कई प्रयास किये गए हैं। चीन में तटवर्ती नगरों और उनके क्षेत्रों के विकेंद्रीकरण में वृद्धि के लिए जो तंत्र अपनाया गया उसे उन क्षेत्रों में निवेशों वृद्धि करने में एक लंबा समय लगा। किंतु भारत में स्थानीय स्तर पर पर विकेंद्रीकरण के प्रयास का दृढ़ निश्चय के साथ क्रियान्वयन अभी तक नहीं हो पाया है, हालांकि संविधान में मूलभूत संशोधन वर्ष 1994 में किया जा चुका था।

अपनी प्रगति जांचिए

1. छोटे व मझोले आकार की नगरपालिकाओं में लगभग कितने प्रतिशत कूड़ा जमा होता है?

   (क) 65 से 70 (ख) 75 से 80

   (ग) 60 से 65 (घ) 70 से 75

2. राजकोषीय अंतरण और शक्तियों तथा वित्त के विकेंद्रीकरण में वृद्धि का किस पर एक दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता है?

   (क) उदारीकरण (ख) शहरीकरण

   (ग) विकेंद्रीकरण (घ) समाजीकरण

5.3 महानगर प्रबंधन एवं नगर–प्रेरित क्षेत्र योजना

महानगर प्रबंधन एक नया उभरता क्षेत्र है जिस पर निर्णय नियामकों को यथासंभव ध्यान देना चाहिए। नगर आज पहले की अपेक्षा बड़े और अधिक जटिल हो चले हैं। उनके बजट संदर्भ के अनुरूप अक्सर बहुत विशाल होते हैं, ये बजट कभी–कभी कई देशों और कई प्रांतीय अथवा राज्य सरकारों के बजटों से बड़े होते हैं। उदाहरण के लिए, न्यू यॉर्क नगर का बजट विश्व के कई देशों के बजटों से बड़ा होता है। इसी प्रकार बृहन्मुंबई नगर निगम का बजट 9 राज्य सरकारों के बजटों और दिल्ली नगर निगम का बजट 4 राज्य सरकारों के बजट से बड़ा होता है। इसके अतिरिक्त, जैसी कि पूर्व में चर्चा की गई है, वर्तमान में नगर सेवाओं का वितरण अनेकानेक संस्थाएं टुकड़ों में करती हैं। महानगरों के प्रबंधक 'दैनंदिन' और 'प्रत्यक्ष' सेवाएं मुहैया कराने के लिए संयोजन का जो कार्य करते हैं, वह वस्तुतः एक भगीरथ प्रयास है और उसे समेकित नीतिगत कार्यवाही के जरिए अविलंब सरल बनाने की आवश्यकता है।

शहरी विकास के लिए केंद्र स्तरीय तंत्र से अधिक राज्य स्तरीय तंत्र को सुदृढ़ करना जरूरी है। संप्रति शहरी विकास से संबद्ध दायित्व अलग–अलग विभागों में बंटे हुए हैं। यही नहीं, अलग–अलग राज्यों में यह विभाजन अलग–अलग है। नीचे वर्णित केंद्र स्तर की प्रणालियों के समेकन की तरह राज्य स्तर की प्रणालियों के समेकन की जरूरत है।

राष्ट्र स्तर पर, शहरी विकास मंत्रालय को सुदृढ़ और सुगठित किया जाना चाहिए, ताकि यह शहरी योजना और विकास का प्रबंधन प्रभावकारी ढंग से कर सके। शहरी विकास योजना में अधिकांश कार्यों की परिकल्पना राज्य स्तर पर की जाती है, इसलिए केंद्रीय मंत्रालय की भूमिका मुख्यतः समन्वयन कार्य के एक केंद्रीय संस्था की होती है – तकनीकी परामर्श प्रदान करने वाली और विस्तृत शहरी निवेश के निहितार्थों की युक्ति निकालने वाली। तकनीकी सहायता की इस भुजा का मजबूत होना आवश्यक है ताकि यह शहरी नीति निर्माण का मार्गदर्शन कर सके। वहीं शहरी शोध में भी इसे अग्रिम पंक्ति में स्थान दिया जाना चाहिए। संस्था को आंकड़ों की आवश्यकताओं को प्रामाणिक बनाते हुए, उन्हें स्थान से जोड़ने की तकनीकियों आदि के साथ इन नगरों से संबद्ध सूचना में सुधार और इन नगरों के निवेश कार्यक्रमों की निगरानी के लिए प्रणालियों का विकास करने की जरूरत होगी। शहरी विकास प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करने तथा उन्हें देश की आर्थिक योजना के संवर्धन का एक सुलभ साधन बनाने में इसे एक लंबा रास्ता तय करना होगा।

हालांकि नेशनल इंस्टिट्यूट ऑव अर्बन अफेयर्स, आवास एवं शहरी विकास निगम (हाउसिंग एंड अर्बन डिवेलपमेंट कॉर्पोरेशन/हडको) का मानव बस्ती प्रबंधन संस्थान (ह्यूमन सेट्लमेंट मैनेजमेंट इंस्टिट्यूट) और अभी हाल के एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज ऑव इंडिया (भारतीय प्रशासनिक कर्मचारी कॉलेज/एएससीआई) एक समान दिशा में कुछ कार्य करते रहे हैं, और मंत्रालय के तकनीकी विभाग शहर एवं ग्राम योजना संगठन (टीसीपीओ) ने भूमि उपयोग की मुख्य योजनाएं (मास्टर प्लैन्स) तैयार करने में राज्य सरकारों की सहायता की है, किंतु बीते वर्षों के दौरान ये संस्थाएं अपनी चमक और प्रतिष्ठा खो चुकी हैं, जिससे इनके प्रति प्रतिष्ठित व्यवसायियों का आकर्षण कम हुआ है।

महानगर प्रबंधन की योजनाएं

महानगर प्रबंधन (शहरी नियोजन) एक प्रक्रिया है जिसके तहत स्थानीय स्तर पर नियोजन सीधे हस्तक्षेप द्वारा शहर के विकास से संबंधित विभिन्न पहलुओं को नियंत्रित किया जाता है। इसकी सहायता से निवासियों की मोबिलिटी, गुणवत्तापूर्ण जीवन एवं धारणीयता जैसे उद्देश्यों को पूरा किया जाता है। शहरी नियोजन आज के इस बढ़ते शहरीकरण का एक महत्त्वपूर्ण पहलू हो गया है। हम जानते हैं कि इस समय भारत भी तीव्र नगरीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है। यू.एन. अर्बनाइज़ेशन प्रोस्पेक्टस, 2018 रिपोर्ट के अनुसार भारत की जनसंख्या का करीब 34 फीसदी हिस्सा शहरी क्षेत्रों में निवास करता है। इसमें 2011 की जनगणना की तुलना में 3 फीसदी की वृद्धि दर्ज की गई है।

मेगासाइज़ अर्बन क्लस्टर की संख्या कई वर्षों से स्थिर बनी हुई है जबकि स्मॉलर अर्बन क्लस्टर की संख्या तेजी से बढ़ रही है। मेगासाइज अर्बन क्लस्टर उन्हें कहा जाता है जिनकी जनसंख्या 50 लाख से ऊपर होती है। नगरीकरण में हो रही इस वृद्धि के कारण शहरों की मांग–आपूर्ति अंतर में भी बढ़ोतरी हो रही है। यह अंतर आवास के अलावा जल, स्वच्छता एवं सफाई, परिवहन और संचार सेवाओं में भी दिखायी देता है।

गांवों और शहरों के बीच सुविधाओं को लेकर जो अंतर देखने में आता है उसके कारण गांवों से शहरों की ओर प्रवसन होता है। ऐसे में जहां एक तरफ सवाल है कि

क्या ये शहरी क्षेत्र नए निवासियों को आत्मसात करने के लिये पूरी तरह से तैयार हैं? तो वहीं दूसरी तरफ हम यह भी देखते हैं कि भारत प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित क्षेत्रों वाला देश है।

टिप्पणी

भारत के ग्रामीण तथा शहरी दोनों ही इलाके इन आपदाओं के प्रति सुभेद्यता रखते हैं। लेकिन भारतीय शहर ज्यादा जनसंख्या घनत्व के कारण इन आपदाओं के प्रति अधिक सुभेद्यता रखते हैं। हर आपदा तेजी से हो रहे शहरीकरण की प्रक्रिया में हुई गलतियों को उजागर कर देती है। इन समस्याओं को देखते हुए देश के शहरों के लिये एक ठोस शहरी नियोजन (प्रबंधन) की आवश्यकता है जिसमें वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टिकोण पर आधारित मास्टर प्लान की व्यवस्था की गई हो।

शहरी नियोजन के बेहतर प्रबंधन हेतु कुछ महत्वपूर्ण सरकारी योजनाएं

भारत के पहले नेशनल कमीशन ऑन अर्बनाइजेशन ने 1988 में शहरी नीति पर रिपोर्ट सौंपी थी। उसके बाद 1992 में 73वां एवं 74वां संवैधानिक संशोधन लाया गया जिसे पंचायती राज एक्ट एवं नगरपालिका एक्ट के नाम से जाना जाता है। इसका उद्देश्य आर्थिक एवं स्थानीय नियोजन द्वारा गांव एवं शहरों का विकास करना था। चूंकि भूमि राज्य का विषय है इसलिए सिर्फ कुछ राज्यों ने ही इसे अपनाया। इससे इसके क्रियान्वयन में धीमापन आ गया।

इसके बाद भारत सरकार ने जवाहर लाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीनीकरण मिशन, 2005 अपनाया जो अपनी तरह का पहला कदम था।

2015 में भारत सरकार ने स्मार्ट सिटी मिशन शुरू किया जिसका उद्देश्य 5 वर्षों के अंदर 100 शहरों की स्थिति में सुधार लाना था। 2015 में ही, आधुनिक सुविधाओं के साथ अधिक से अधिक शहरों के विकास के लिए AMRUT योजना यानी Atal Mission For Rejuvenation And Urban Transformation लायी गई।

चूंकि शहरी विकास राज्य का विषय है इसलिए अभी तक ऐसी कोई व्यापक राष्ट्रीय नीति नहीं बन पाई है जो शहरीकरण से संबंधित योजनाओं को बताए। बहरहाल, देश की यह प्रथम नेशनल अर्बन पॉलिसी 10 मुख्य क्षेत्रों पर केन्द्रित है, जिनमें से प्रमुख हैं – सहकारी संघवाद, समावेशी वृद्धि, धारणीयता, स्थानीय संस्थाओं का सशक्तिकरण, शहरी अवसंरचना वित्त प्रणाली, सशक्त शहरी सूचना प्रणाली आदि।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी 'यू.एन. हैबिटेट' संयुक्त राष्ट्र का एक कार्यक्रम चल रहा है जो वैश्विक स्तर पर एक बेहतर शहरी भविष्य की दिशा में काम कर रहा है। इसका लक्ष्य सामाजिक और पर्यावरणीय रूप से टिकाऊ मानव बस्तियों का विकास और सभी के लिये समुचित आश्रय प्राप्त करवाना है।

गौरतलब है कि 2016 में हैबिटेट 3 का आयोजन किया गया था, जो आवास और टिकाऊ शहरी विकास पर हरेक दो दशकों पर होने वाला संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन है। हैबिटेट 3 में जारी न्यू अर्बन एजेंडे में बताया गया है कि 2016 से 2030 के बीच धारणीय शहरी विकास को प्राप्त करने के लिये देशों को क्या किये जाने की आवश्यकता है। भारत भी इसी एजेंडे को आधार बना कर अपने शहरी नियोजन को आकार दे रहा है। वहीं हम पाते हैं कि यू.एन. के सतत् विकास लक्ष्य–11 के अनुसार,शहरों एवं मानव बसावटों को समावेशी, सुरक्षित, लोचपूर्ण एवं धारणीय भी होना चाहिए।

शहरी नियोजन के बेहतर प्रबंधन के लिये और क्या किये जाने की जरूरत है?

शहरी नियोजन के बेहतर प्रबंधन के लिये सबसे पहले प्रभावी शहरी नियोजन में नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित किये जाने की आवश्यकता है तभी विश्व स्तरीय शहरी भारत का निर्माण हो सकेगा। संविधान की 12वीं अनुसूची के तहत सूचीबद्ध कार्यों में शहरी नियोजन, भूमि उपयोग का विनियमन और आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिये योजना का निर्माण करना शामिल है। इसलिए राज्यों से उम्मीद की जाती है कि वे इन कार्यों को नगर–निगम को सौंप दें।

74वें संविधान संशोधन के अनुसार मेट्रोपोलिटन सिटी में मेट्रोपोलिटन प्लानिंग कमिटी के गठन की व्यवस्था की गयी है। जो स्थानीय निकायों द्वारा तैयार योजनाओं को मेट्रोपोलिटन क्षेत्र में एकीकृत करेंगे। मेट्रोपोलिटन सिटी उन शहरों को कहा जाता है जिनकी जनसंख्या दस लाख से ऊपर होती है।

3 लाख से ऊपर वाले प्रत्येक शहर के लिये वार्ड कमिटी के गठन की बात भी की गयी है जो नगरपालिका संबंधी कार्यों को देखेगा। इन सभी संस्थानों को नियोजन प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बनाना आवश्यक है। वहीं हम दूसरी तरफ देखते हैं कि शहरी स्थानीय निकायों के ऊपर विकेन्द्रीकरण के नाम पर बहुत अधिक जिम्मेदारियां सौंपी गई हैं।

स्थानीय निकायों के पास निरीक्षण कार्यों के लिये श्रम शक्ति की भी कमी रहती है। इसलिए पेपर वर्क में कमी लाते हुए सिस्टम को ऑनलाइन बनाने पर ध्यान देने की जरूरत है। वर्तमान की अप्रूवल संबंधी प्रक्रियाओं का आधुनिकीकरण भी जरूरी है।

शहरीकरण को देश के आर्थिक विकास का अभिन्न अंग मानते हुए भारत सरकार के थिंक टैंक 'नीति आयोग' ने कुशल एवं टिकाऊ सार्वजनिक परिवहन को नीति में शामिल करने की बात कही है। नीति आयोग ने 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों के लिये एक एकीकृत महानगर परिवहन प्राधिकरण के गठन का सुझाव भी दिया है। ये समन्वित सार्वजनिक परिवहन योजना को तैयार करेंगे।

हाल की एक रिपोर्ट में यह बात सामने आयी है कि ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन एवं ऊर्जा उपभोग के मामले में मेट्रोपोलिटन सिटीज ने मेगासिटीज के बनिस्पत बेहतर प्रदर्शन किये हैं। इसका कारण यहां जनसंख्या, यात्रा अनुपात एवं वाहनों की संख्या का निम्न होना बताया गया है। कोलकाता एवं मुंबई दोनों ने भूमि उपयोग के साथ सार्वजनिक परिवहन प्रणाली को अच्छे तरीके से एकीकृत किया है। 2004 में नॉन–मोटराइज्ड ट्रांसपोर्ट अपनाने वाला मुंबई पहला शहर बन चुका है। इसका उद्देश्य साइकिल ट्रैक और ग्रीन–वे का नेटवर्क तैयार कर वॉकिंग एवं साइक्लिंग करने वालों की संख्या में वृद्धि करना था।

शहरी ताप द्वीप संबंधी चुनौतियों से निपटने के लिये दक्षिणी भारत में सड़कों को उत्तर–दक्षिण दिशा में बनाने पर जोर दिया जा रहा है ताकि सीधी पड़ने वाली सूर्य की रोशनी को टाला जा सके। शहरी नियोजन में सड़कों के विभिन्न हिस्सों, छतों के ऊपरी हिस्से को सफेद पेंट करने जैसे कार्यों को शामिल किया गया है जिससे सूर्य विकिरण को अधिक से अधिक परावर्तित किया जा सके।

अगर सड़कें संकरी हैं तो भवनों की ऊंचाई को सड़कों की चौड़ाई के बराबर करना भी बताया गया है, इससे ताप नियंत्रण में मदद मिलती है। निर्माणकारी गतिविधियों के समय हर 7 वर्ग किमी. पर जल निकाय और खुले स्थान के लिये 1 वर्ग किमी का क्षेत्र छोड़ना भी इसमें शामिल है। फुटपाथों का निर्माण कुछ इस तरह से करने की बात हुई है कि बारिश के मौसम में ये जल अवशोषण में भी सहायक भूमिका निभाएं।

प्लानिंग के समय आर्थिक असमानता के मुद्दे को भी ध्यान में रखना आवश्यक है ताकि समाज का कोई भी वर्ग हाशिये पर न चला जाए। क्योंकि, आपदा के समय इन वर्गों के प्रभावित होने की सबसे ज्यादा संभावना होती है। आवासीय सुविधाओं में गरीबों के रहने के लिये ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जहां आधारभूत सुविधाओं की कमी न हो। इंडोनेशिया में इसी प्रकार का एक सोशल हाउसिंग प्रोजेक्ट लाया गया है जो बेहतर वायु संचार और गुणवत्तापूर्ण जीवन का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

भारत की जियो–टेक्टॉनिक्स स्थिति में भी बदलाव आ रहा है। ऐसी स्थिति में दिल्ली में अगर एक मध्यम तीव्रता का भूकंप भी आता है तो आपदा की भयंकरता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। राजधानी की नयी निर्मित इमारतों में शायद ही नेशनल बिल्डिंग्स कोड, भारत का सुभेद्यता एटलस 2006 और भवन उप–नियमों का पालन किया गया है।

जहां एक तरफ शहरी बुनियादी ढांचे के निर्माण के समय भवन मानकों को भूकंप प्रतिरोध संबंधित सुरक्षा मानकों का पालन करना चाहिये वहीं दूसरी तरफ बाढ़ आपदा प्रबंधन के समय हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि भवनों और सड़कों के निर्माण के लिये शहरों में स्थित परंपरागत जल निकासी तंत्रों तथा विभिन्न जल निकायों मसलन झील, तालाब और आर्द्रभूमियों का अतिक्रमण न हो। नदी तल और बाढ़ मैदानों के अतिक्रमण को रोकने के लिये River Regulation Zone नोटिफिकेशन को प्रभावी बनाये जाने की आवश्यकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. क्या आज पहले की अपेक्षा बड़े व अधिक जटिल हो चले हैं?

   (क) नगर (ख) अनाज

   (ग) फल (घ) डाकघर

4. शहरी विकास योजना में अधिकांश कार्यों की परिकल्पना किस स्तर पर की जाती है?

   (क) देश (ख) समाज

   (ग) कसबा (घ) राज्य

5.4 सामाजिक क्षेत्र नीति एवं शहरी विकास

प्रत्येक देश की सामाजिक क्षेत्र नीति और उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में निवेश का भी उन उद्योगों की अवस्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जो इन देशों के आर्थिक विकास में सहायता करते हैं। उच्चतर शिक्षा संस्थाओं और शोध एवं विकास (रिसर्च एंड

डिवेलपमेंट/आर एंड डी) केंद्रों की स्थापना से मानव पूंजी का विकास सक्षम कुशल कामगारों की आपूर्ति और नगर की प्रतिस्पर्धात्मकता की कुंजी है।

केंद्र सरकार को बृहत नीतियों और शहरी विकास के बीच संबंध के प्रति अधिक से अधिक सजग होना चाहिए क्योंकि आर्थिक विकास से उनका सीधा संबंध होता है। उन्हें इसलिए ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मौजूदा स्थिति में नगरों व नगर क्षेत्रों का कभी–कभी उनके निकटतम क्षेत्रों की अपेक्षा दूरस्थ क्षेत्रों के बाजारों और भौगोलिक क्षेत्रों से घनिष्ठ संबंध होता है। उदाहरणस्वरूप, बेंगलुरु की अर्थव्यवस्था का उसके निकटवर्ती शहरों से अधिक अमेरिका और यूरोप के अन्य देशों से गहरा संबंध है। यही स्थिति सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) और आईटीईएस के मामले में हैदराबाद, पुणे और गुरुग्राम तथा उद्योग के मामले में तिरुपुर, लुधियाना आदि के साथ भी है।

इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि राष्ट्रीय बृहत नीतियों को अधिक से अधिक उदार बनाया जाए, ताकि इन अवसरों का लाभ लिया जा सके और प्रशिक्षण, उच्चतर शिक्षा तथा शोध एवं विकास सुविधाओं में सामाजिक क्षेत्र के निवेशों की ठोस योजना बनाते हुए उनके विकास की सहायता में निवेश के साथ–साथ उन्हें युक्तिपूर्वक स्थापित किया जा सके।

भारत सरकार के नवीन शहरी सुधार कार्यक्रमों का विस्तृत विवरण

वर्ष 2002–03 के बजट भाषण में, वित्त मंत्री ने नगर सुधार में सहायता के लिए कई कार्यक्रमों के सृजन की घोषणा की थी। इस दिशा में निम्नलिखित कोषों का प्रस्ताव किया गया, जो मौजूदा राष्ट्रीय सरकार की कार्यप्रणालियों में एक महत्वपूर्ण बदलाव है।

1. राज्य स्तरीय पुनर्संरचना (नवीनीकरण) : शहरी सुधार प्रोत्साहन कोष। राज्य सरकारों को यह कोष नीचे सूचीबद्ध सुधार कार्य आरंभ करने हेतु प्रोत्साहन देने के ध्येय से अनुदान के आधार पर मुहैया कराया जाएगा। पहले पांच शहरी सुधार कार्यों की सहायता से जायदाद बाजार के कार्यकलापों में विकृतियों को दूर किया जाएगा; अंतिम दो सुधार शहरी स्थानीय निकायों (ULB) के कार्यकलाप में आने वाली समस्याओं को दूर करने के लिए किये जाएंगे।

1. प्रस्ताव लाकर शहरी भूमि सीमा एवं विनियमन अधिनियम को समाप्त करना;
2. मुद्रांक शुल्क (Stamp duty) को कम कर अधिक से अधिक 5 प्रतिशत तक लाने हेतु उसे चरणबद्ध ढंग से युक्तियुक्त बनाना;
3. किराया नियंत्रण को दूर करने के लिए किराया नियंत्रण कानूनों में सुधार लाना ताकि किराये के आवास में निजी निवेश को आकर्षित किया जा सके;
4. पंजीकरण की प्रक्रियाओं के कम्प्यूटरीकरण की व्यवस्था करना; कम्प्यूटरीकृत प्रक्रियाओं का समावेश करना;
5. संपत्ति कर में सुधार लाना ताकि यह शहरी स्थानीय निकायों के राजस्व का एक मुख्य स्रोत बन सके, और इसके प्रभावकारी क्रियान्वयन की व्यवस्था करना ताकि 10वीं योजना की अवधि के अंत तक संग्रह क्षमता कम से कम 85 प्रतिशत हो;
6. शहरी स्थानीय निकायों द्वारा वाजिब उपयोगकर्ता शुल्कों की उगाही – इस उद्देश्य के साथ कि दसवीं योजना की अवधि के अंत तक परिचालन व रखरखाव (O&M) के समस्त व्यय का संग्रह हो;

टिप्पणी

7. शहरी स्थानीय निकायों (ULB) में दोहरी प्रवृष्टि पद्धति (Double Entry System) का समावेश करना।

एक विशेषज्ञ समिति ने सुधार के विषयों के दिशा निर्देश दिए हैं। कुछ सुधार विचाराधीन हैं। सुधारों की एक अतिरिक्त सूची तैयार की गई है, जो संभवतः अगले अंश को जारी करने की शर्तें हों।

2. नगर पुनर्संरचना : नगर समस्या निवारण कोष (सिटी चैलेंज फंड/The City Challeng Fund/CCF) नगर आपत्ति निवारण कोष में नगर स्तर पर अतिरिक्त प्रयासों का प्रस्ताव किया जा रहा है। यह आपत्ति निवारण कोष एक प्रोत्साहन–आधारित अनुदान सुविधा होगा जो नगर वितरण की स्थायी सांस्थानिक प्रणालियों को कार्य रूप देने में संक्रमण लागतों (Transition costs) को आर्थिक सहायता देते हुए नगरों की सहायता करेगा – खास कर जल एवं साफ–सफाई के क्षेत्र में। एक सुधार कार्यक्रम के गठन और क्रियान्वयन के व्यय में आंशिक वित्तीय सहायता देते हुए यह कोष नगरों की सहायता करेगा। ये कोष प्रतिस्पर्धी आधार पर, मांग तथा योग्यता एवं पारितोषिक मानक, विस्तृत स्थल मूल्यांकन, संवितरण की शर्तों और जारी निगरान के अनुरूप दिये जाएंगे। इस कार्यक्रम का एक मुख्य उद्देश्य नगरों के लिए आवश्यक सुधारों और पुनर्संरचना को बढ़ावा देना है, ताकि वे ऋण प्राप्त करने योग्य हों और इस प्रकार अपने निवेशों के लिए निजी निवेशकों को आकर्षित कर सकें। वित्त की दृष्टि से सुदृढ़ हो जाने पर नगर दीर्घकालिक योजनाओं का गठन और गरीबी उन्मूलन कायक्रमों का क्रियान्वयन कर सकेंगे।

किंतु संक्रमण अवधि के दौरान नगरव्यापी सुधारों और पुनर्संरचना व्ययसाध्य होंगे। इन व्ययों को नगर पर छोड़ देने से इन सुधारों में विलंब हो सकता है और उन्हें उनकी सफलता की संभावनाओं से समझौता करना पड़ सकता है। सुधार के मार्ग में आने वाली इस बाधा को कम करने के लिए, सुधार कार्यक्रमों का गठन करने हेतु शहरी विकास एवं गरीबी उन्मूलन मंत्रालय एक कार्य आधारित नगर आपत्ति निवारण कोष का सृजन करने की दिशा में अग्रसर है। कोष संसाधन अनुदान के रूप में दिये जाएंगे किंतु नगरों अथवा संबद्ध राज्य सरकारों द्वारा आवंटित की जाने वाली राशि के समान होंगे।

3. लघु नगरपालिकाओं की सहायता : नगर आधारभूत संरचना हेतु संयोजित वित्तीयन (PFMI) परंपरागत रूप से, शहरी सेवाएं मुहैया कराने, समुचित उपयोगर्ता शुल्कों तथा फलोत्पादी कार्य प्रणाली और रखरखाव हेतु प्रोत्साहन राशि में पर्याप्त कटौती करने के लिए नगर निगम व शहरी स्थानीय निकाय छूट प्राप्त निधियों पर निर्भर करते रहे हैं। संसाधन में विशाल अंतर और लघु नगरपालिकाओं में हो रहे तीव्र विकास को देखते हुए, पूंजी बाजारों तक प्रत्यक्ष अभिगम को अब स्थानीय सरकारों को संसाधन मुहैया कराने के एक आवश्यक, हालांकि सीमित, माध्यम के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। ऋण प्राप्त करने हेतु पूंजी बाजार की सुविधा के लिए वित्तीय अनुशासन आवश्यक होता है। यह एक सिद्ध तथ्य है कि पूंजी बाजारों में उपलब्ध संसाधनों का लाभ केवल बड़े नगर निगमों को मिलता है।

मझोली और छोटी नगरपालिकाओं को, अन्य समस्याओं के अतिरिक्त उनकी कमजोर वित्तीय स्थिति और व्यवहार्य परियोजना की रूपरेखा तैयार करने की क्षमता के अभाव के चलते पूंजी बाजारों का लाभ नहीं मिल पाता। छोटी और मझोली

नगरपालिकाओं के लिए वित्तीय सहायता के एक राज्य स्तरीय संयोजित तंत्र के गठन पर विचार चल रहा है। वित्तीय सहायता के एक राज्य स्तरीय संयोजित तंत्र का उद्देश्य छोटे और मझोले आकार के शहरी स्थानीय निकायों को एक किफायती और प्रभावकारी दृष्टिकोण प्रदान करना है ताकि वे शहरी आधारभूत संरचना के लिए घरेलू पूंजी बाजारों का लाभ ले सकें।

अपनी प्रगति जांचिए

5. किस वर्ष के बजट भाषण में वित्तमंत्री ने नगर सुधार में सहायता के लिए कई कार्यक्रमों के सृजन की घोषणा की थी?

   (क) 2000 – 2001 (ख) 2001 – 2002

   (ग) 2002 – 2003 (घ) 2003 – 2004

6. पूंजी बाजारों में उपलब्ध संसाधनों का लाभ किन्हें मिलता है?

   (क) बड़े नगर निगमों को (ख) छोटे नगर निगमों को

   (ग) अदालतों को (घ) अस्पतालों को

5.5 क्षेत्रीय एवं स्थानिक योजना

हाल के दशकों में, नगर–क्षेत्र यूरोपीय देशों और समस्त विश्व में स्थानिक योजना के एक मुख्य मापदंड के रूप में उभर कर सामने आया है। इसका महत्व इसलिए बढ़ चला है, क्योंकि राजनीतिक–आर्थिक सिद्धांत एवं नीति के कार्यान्वयन ने इसे आर्थिक प्रतिस्पर्धा को जारी रखने और नगरों व क्षेत्रों के समक्ष उभरती चुनौतियों का समाधान करने का एक बेहतर मापदंड बनने को प्रेरित किया है। तथापि, योजना के मंचों के रूप में नगर–क्षेत्रों के उद्भव से प्रशासनिक सीमाओं की तुलना में योजना या स्थानिक समायोजन की मौजूदा वैधानिक प्रणाली में नियमों में कभी कभार ही औपचारिक फेर–बदल हुई है (उदाहरणस्वरूप, गुआलिनी एवं ग्रॉस, 2019; हैरिसन एवं ग्रोवे, 2014; हर्शेल एवं डीयरवेख्तर, 2018; सालेत, थॉर्नली एवं क्रियुकेल्स, 2013)।

इसके विपरीत, नगर–क्षेत्रीय नीतियों और शासन की व्यवस्थाओं में क्षेत्रीय और स्थानीय आर्थिक शासन तथा स्थानिक योजना की मौजूदा संस्थाओं को छिपाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है (वेट एवं ब्रिस्टो, 2019)। इसलिए, नगर–क्षेत्र अक्सर योजना के 'लचीले' क्षेत्र होते हैं, जो योजना के बाहर, साथ अथवा प्रशासनिक भूभागों और वैधानिक मापदंडों के बीच होते हैं (उदाहरणस्वरूप, ऑलमेंडिंगर एवं हाउटन, 2009)। जहां क्षेत्रीय दृष्टि से परिबद्ध 'परंपरागत' वैधानिक योजना में, मुख्य उद्देश्य परिबद्ध 'सख्त' प्रशासनिक क्षेत्रों के भीतर भूमि उपयोग के दिशा निर्देश हेतु कानूनी तौर पर अनिवार्य योजनाओं और विनियमों का गठन करना रहा है, वहां नगर–क्षेत्रीय योजना क्षेत्र 'लचीली' युक्तियुक्त स्थानिक योजना के एक वैकल्पिक सांस्थानिक तर्क का सुझाव देते हैं। इस तर्क के आधार पर प्रयोगात्मक, लचीली, समेकित, कार्य–उन्मुखी और अनुबंध–आधारित योजना का सृजन होता है जो प्रशासनिक सीमाओं को समाप्त और शहरी उद्यमिता को अधिक सुस्पष्ट करने पर बल देती है (अलब्रेख्ट्स, 2017;

टिप्पणी

अलब्रेख्ट्स एवं बाल्दुच्ची, 2013; डेंब्स्की एवं सालेत, 2010)। वस्तुतः, नगर–क्षेत्रों की युक्तियुक्त स्थानिक योजना का लक्ष्य धीमी समझी जाने वाली, दफ्तरशाही और चुनौतियों व अवसरों के 'यथार्थ' भूगोलों के प्रति अगंभीर वैधानिक योजना से दूर होना है (ऑलमेंडिंगर एव हाउटन, 2009, पृ. 619)। तथापित, व्यवहार में, प्रशासनिक स्तर पर विभाजित नगर–क्षेत्रों में युक्तियुक्त स्थानिक योजना प्रयोजनमूलक (प्रकार्यात्मक) शहरी प्रणालियों (दवूदी, 2008) की व्याख्या करने में तकनीकी चुनौतियों से संगठन की परिवर्तनीयता (बाल्दुच्ची, 2018) और निवेशों व करदाताओं पर अंतर–नगरीय प्रतिस्पर्धा (कैंटर, 2008) तक तनावों से भरी रही है (जोनास एवं वार्ड, 2007; सालेत एवं अन्य, 2003)।

नगर–क्षेत्रों की तनावग्रस्त स्थानिक योजना के अध्ययन के लिए, हम एक सांस्थानिक पद्धति की सहायता लेते हैं। इसका नगर–क्षेत्रों की उस प्रगतिशील साहित्य सामग्री में योगदान होता है, जिसमें नगर–क्षेत्र को राजनीतिक रूप से निर्मित माना जाता है (उदाहरणस्वरूप, हैरिसन, 2007; जोनास एवं वार्ड, 2007) और प्रतिस्पर्धात्मक नगर–क्षेत्रीयता के मुख्यधारा के शैक्षणिक और राजनीतिक शब्दाडंबर पर प्रश्न पूछे जाते हैं, जिसमें नगर–क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्थाओं के लिए एक सरल–सहज परिवर्तन (अवस्थांतर) की कल्पना की जाती है (गुआलिनी एवं ग्रॉस, 2019; वेटे एवं ब्रिस्टो, 2019, पृ. 4)। वस्तुतः, पूर्व के अध्ययनों से पता चला है कि किसी सहज परिवर्तन के बावजूद, सांस्थानिक टकराव नगर–क्षेत्रीय नीतियों पर दबाव डालते हैं। टकराव तब उत्पन्न होते हैं, जब असंबद्ध ढंग से गठित नगर–क्षेत्रीय नीतियां और कार्यक्रम पूर्ववर्ती और गहरे तक जमे मानकों के अर्थ को चुनौती देते हैं (उदाहरण, ब्रेनर, 2009; डेंब्स्की, 2015; डेंब्स्की एवं सालेत, 2010; फ्रिक एवं गुआलिनी, 2018; हैरिसन एवं ग्रो, 2014; ओ'ब्रायन, 2019; ओलेसेन एवं रिचर्ड्सन, 2012; सालेत, 2018)। नगर–क्षेत्रीय योजना के संदर्भ तनावग्रस्त मंच होते हैं, जहां स्थानीय और क्षेत्रीय भूभाग तथा असंबद्ध ढंग से गठित नगर–क्षेत्रीय कार्यक्रमों का एक साथ समावेश होता है। उनके द्वंद्वात्मक संबंध को समझने के लिए, हम एक ढांचे का सुझाव देते हैं, जिसमें हाल के सैद्धांतिक कार्य से काम लिया जाता है, जिसमें क्रमिक (मेहनी एवं थिलीन, 2010) और असंबद्ध सांस्थानिक परिवर्तन (श्मिड्ट, 2008, 2011, 2016) की व्याख्या होती है और इसका संबंध नगर–क्षेत्रीय युक्तियुक्त योजना के किसी विषय से होता है।

प्रस्तुत शोधपत्र फिनिश नगर–क्षेत्र कोटा–हमीना की नगर–क्षेत्रीय युक्तिपूर्ण योजना अनुशीलन करता है। अन्य कई देशों के समान, फिनलैंड में भी वैधानिक योजना प्रणाली में नगर–क्षेत्र के मापक का उपयोग नहीं किया जाता। किंतु, भूमि उपयोग की समस्याओं और मुद्दों, आवास और परिवहन पर कानूनी मानकों और वित्त पोषण दोनों के माध्यम से सहयोग करने के लिए फिनलैंड की केंद्र सरकार ने बड़े और मझोले आकार के नगर–क्षेत्रों की नगरपालिकाओं को बढ़ावा दिया है। इसलिए, इसने स्थानीय शासन द्वारा संचालित और विनियामक भूमि उपयोग योजना की औपचारिक वैधानिक प्रणाली के साथ सहकारी और समेकित नगर–क्षेत्रीय योजना का गठन किया है। (बैकलुंड, हाईकियो, लीनो एवं केनिनेन, 2018; हाइटोनेन एवं अन्य, 2016)। इसलिए, फिनलैंड की नगर–क्षेत्रीय योजना कार्यप्रणाली में वैधानिक एवं 'लचीली' योजना के तर्क साथ–साथ चलते हैं। नगर–क्षेत्र की पांच नगरपालिकाओं द्वारा संयुक्त रूप से समन्वित एक रणनीतिक, किंतु कानूनी रूप से बाध्यकारी, नगर–क्षेत्र की मुख्य योजना

तैयार करने की प्रक्रिया में कोटा–हमीना मामला इन तर्कों को मिलाने और उनमें सामंजस्य स्थापित करने के एक अभिनव प्रयास का प्रतीक है। एक अपेक्षाकृत गौण और लघु नगर–क्षेत्र होने के कारण, कोटा–हमीना को नगर–क्षेत्र के साहित्य में एक असंगति माना जा सकता है, जिसने विशेष रूप से बड़ और महानगरीय नगर–क्षेत्रों पर ध्यान दिया है (उदाहरण, रोड्रिकेज–पोज, 2008; स्कॉट, 2001, 2019)। जहां बड़े ओर लघु (गौण) (बेल एवं जेन, 2009; कार्डोसो एवं मीजर्स, 2016; फर्टनर, ग्रॉथ, हर्सलुंड एवं कार्स्टेन्सेन, 2015; हमर, 2018) नगर–क्षेत्रों के बीच दुविधाओं की सीमा और गुरुत्व में अंतर होता है, वहां वैधानिक व 'लचीली'योजना के विरोधाभासी तर्कों के सामने आने पर एक सांस्थानिक दृष्टिकोण उनके बीच साझा चुनौतियों की पहचान करता है (उदाहरण, कैंटर, 2008)। इस प्रकार, यह मामला एक उदाहरण प्रदान करता है, जिसमें प्रशासनिक स्तर पर विभाजित एक संयुक्त नगर–क्षेत्र योजना में वैधानिक विनियामक योजना प्रणाली के भीतर संयुक्त नगर–क्षेत्रीय योजना का संचालन किया जाता है। किंतु, वैधानिक मुख्य योजना को चुनौती देने ओर उसके अर्थ का पुनर्गठन करने के अपने प्रयास में यह किंचित ही सफल रहा।

हमारे स्थिति विश्लेषण के व्यापक आशयों में 'लचीली' नगर–क्षेत्रीय और नगर–क्षेत्रों तथा उनके द्वंद्वात्मक पद्धतियों में शामिल 'सख्त' वैधानिक योजना के अनेकानेक सांस्थानिक नियमों को स्थान दिया गया है, जब स्थानीय सहभागी या पक्षकार स्थापित नीतियों के नियमों की (पुनः) व्याख्या कर रहे हैं (तुलनीय, बिटेलार, लाजेनदिजक एवं जैकब्स, 2007; डेंब्स्की, 2015; न्यूमैन, 2012; ओ'ब्रायन, 2019; वेट एवं ब्रिस्टो, 2019)। द्वण संस्तरित नियमों के प्रति नीति की प्रतिक्रियाओं के अध्ययन के लिए, हम संस्थानीयता के तर्कमूलक सिद्धांतों और क्रमिक सांस्थानिक परिवर्तन के आधार पर एक विश्लेषणात्मक ढांचा तैयार करना चाहते हैं। हम अपनी पद्धति को तर्कमूलक संस्थानीयता की संज्ञा देते हैं (तुलनीय, हे, 1999)। यह नीति, कार्यक्रम एवं सिद्धांत के अस्तरों पर विचार करता है, जिसमें नगर–क्षेत्र के स्थानिक भाव की उत्पत्ति से संबद्ध अलग–अलग तीव्रताओं और गतिक्रम को शामिल किया जाता है और इस पर प्रकाश डाला जाता है कि उनके विकास की विशेषताएं किस प्रकार सांस्थानिक नियमों के समावेशन में सहयोग करती हैं। इसके अतिरिक्त, इस ढांचे का उपयोग हम इस बात की व्याख्या करने में करते हैं कि जब स्थापित नगर–क्षेत्रीय नीतियों में संस्तरित नियमों की पुनर्व्याख्या की जाती है, तब उनका संबंध किस प्रकार द्वंद्वात्मक हो जाता है। संस्तरित नियम नगर–क्षेत्रीय नीतियों के लिए न केवल तनाव बल्कि नीति के उस स्तर पर नए मार्ग के लिए अनुकूल स्थितियां भी पैदा करते हैं, जहां नियमों को मान्यता दी जाती है (तुलनीय, रोद्रिकेज–पोज, 2008, पृ. 1036; सालेत, 2018, पृ. 2)।

इस शोधपत्र का विन्यास इस प्रकार किया गया है। यह तर्कमूलक स्थानीयता और क्रमिक सांस्थानि परिवर्तन के वर्तमान सिद्धांतों के परिचय से शुरू होता है, जो इस बात की व्याख्या करने का एक ढांचा तैयार करते हैं कि नगर–क्षेत्र तर्कमूलकता के साथ किस प्रकार तैयार किए जाते हैं और योजना एवं शासन के एक केंद्रबिंदु के रूप में नगर–क्षेत्र की उत्पत्ति से स्थानिक योजना के सांस्थानिक विन्यास में किस प्रकार एक परिवर्तन आया है। फिनलैंड में स्थानिक योजना के सांस्थानिक संदर्भ की प्रस्तुति के बाद, पत्र में कोतका–हमीना में उसकी नगर–क्षेत्र योजना की कार्यप्रणाली की स्थिति की स्थापित व्याख्या के रूप में इसकी व्याख्या की गई है। फिर इसमें इस बात

टिप्पणी

का विश्लेषण किया गया है कि अस्तरित सांस्थानिक नियम किस प्रकार नगर–क्षेत्र की मुख्य योजना प्रक्रिया को किस प्रकार चालू करते और रोकते हैं। पत्र सिद्धांत के गठन की सांस्थानिक पद्धति में स्थिति विश्लेषण से प्राप्त अपेक्षाकृत अधिक व्यापक निहितार्थों पर बल देते हुए अपने योगदान के उल्लेख के साथ समाप्त होता है।

उत्पादकता में वृद्धि करते, नए मार्गों और विचारों को पनपने का अवसर देते हुए विश्व स्तर पर नगरों में सृजित 80 प्रतिशत से अधिक सकल घरेलू उत्पाद के साथ यदि शहरीकरण का प्रबंधन समुचित ढंग से हो, तो यह स्थायी विकास में सहायक हो सकता है।

किंतु, शहरीकरण की गति और सीमा अनेकानेक चुनौतियां प्रस्तुत करती हैं, जिनमें किफायती आवास, सुव्यवस्थित परिवहन प्रणालियों और अन्य आधारभूत संरचना, मूलभूत सेवाओं तथा रोजगार – खास कर अवसरों की चाह में अनियमित बस्तियों में रह रहे लगभग 1 बिलियन शहरी गरीबों के लिए रोजगार – की बढ़ती मांग को पूरा करना शामिल है। द्वंद्व और संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं, फलतः शहरी क्षेत्रों में रह रहे 60 प्रतिशत लोगों को बलपूर्वक विस्थापित किया जाता है।

किसी नगर का निर्माण हो जाने पर, उसका भौतिक स्वरूप और भूमि उपयोग के ढांचे पीढ़ियों तक अवरुद्ध रह सकते हैं, जिससे आबादी का अकल्पनीय फैलाव हो सकता है। शहरी भूमि के उपयोग के विस्तार से आबादी को 50 प्रतिशत तक बढ़ने का अवसर मिल जाता है, जिसका अर्थ है कि तीन दशकों में विश्व के नव निर्मित शहरी क्षेत्र में 1.2 मिलियन वर्ग किलोमीटर की वृद्धि की संभावना है। भूमि और प्राकृतिक संसाधनों पर इस फैलाव का दबाव पड़ेगा, जिसके परिणाम प्रतिकूल होंगे; विश्व की ऊर्जा की खपत में नगरों का अंश दो तिहाई है और इन नगरों से 70 प्रतिशत से अधिक ग्रीनहाउस गैस का उत्सर्जन होता है।

जलवायु परिवर्तन की रोकथाम में नगर अहम भूमिका निभाते हैं, क्योंकि जैसे–जैसे उनमें वृद्धि होती जाती है वैसे–वैसे उनके समक्ष जलवायु एवं आपदा का संकट बढ़ता जाता है। लगभग आधा बिलियन शहरी बाशिंदे तटवर्ती क्षेत्रों में रहते हैं, जिनके समक्ष आंधी–तूफान और समुद्र तल के ऊपर उठने का संकट हमेशा बना रहता है। तटवर्ती क्षेत्र के 136 बड़े नगरों में आबादी का 20 प्रतिशत अंश अथवा 100 मिलियन लोग रहते हैं और 4.7 ट्रिलियन संपत्ति को तटीय बाढ़ का खतरा रहता है। विकासशील देशों में लगभग 90 प्रतिशत शहरी विस्तार संकट–प्रवण क्षेत्रों और अनियमित तथा अनियोजित बस्तियों के निकट है।

नगरों को संक्रामक रोगों का खतरा भी सबसे अधिक रहता है। समस्त विश्व के नगर संप्रति कोविड–19 महामारी से ग्रस्त हैं। इसका प्रभाव न केवल लोक स्वास्थ्य पर बल्कि आर्थिक व सामाजिक तानेबाने पर भी पड़ता है। स्वास्थ्य संकट, सामाजिक संकट और आर्थिक संकट के साथ–साथ कोविड–19 यह दर्शाता है कि नगर कितने योजनाबद्ध और सुव्यवस्थित हैं और इसका प्रभाव खास कर संकट के समय के दौरान उस सीमा पर कितना पड़ता है, जहां तक प्रत्येक नगर कार्य कर सकता है – या नहीं पड़ता।

कोविड–19 अग्रणी नगरों के लिए, वे चाहे समृद्ध हों अथवा कमजोर, एक बड़ी चुनौती है। इस विषाणु को फैलने से रोकने के उपायों का नगरों पर उनकी आर्थिक संरचना, ऐसे संकट से लड़ने की उनकी तैयारी – खास कर उनके लोक स्वास्थ्य की

टिप्पणी

अवस्था और सेवा वितरण प्रणालियों – और उस सीमा के चलते गहरा प्रभाव पड़ रहा है, जहां तक उनके लोगों के स्वास्थ्य और आजीविका संकटग्रस्त हैं, जिनमें से सभी उनकी शहरी शासन प्रणालियों का एक कार्य हैं।

सामान्य स्थितियों में, जीने की क्षमता, प्रतिस्पर्धात्मकता, और संधारणीयता समेत ऐसे कई गुण हो सकते हैं, जिनसे वैश्विक स्तर पर नगर प्रतिस्पर्धा करने और आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं, किंतु किसी निर्धारित दिन, और खास कर संकट के किसी समय में, किसी नगर को अपने नागरिकों के लिए कसौटी पर खड़ा उतरना ही चाहिए।

ऐसे नगरों का निर्माण करने के लिए नीति के गहन संयोजन और निवेश के विकल्पों की आवश्यकता होती है, जो समावेशी, स्वस्थ, लचीले और संधारणीय ''काम'' करें। राष्ट्रीय और स्थानीय सरकारों को अपने भविष्य के विकास को आकार देने, सभी के लिए अवसरों का सृजन करने का तत्काल प्रयास करना चाहिए, क्योंकि यह उनका महत्वपूर्ण दायित्व है।

कथानक के मुख्य बिंदु

1. शहरीकरण समृद्धि और जीने की क्षमता दोनों मामलों में अमीर राष्ट्रों के समकक्ष खड़ा होने के लिए दक्षिण एशियाई देशों को उनकी अर्थव्यवस्थाओं में सुधार लाने की क्षमता प्रदान करता है।
2. विश्व बैंक की एक नई रिपोर्ट से पता चलता है कि विकास के मार्ग पर बढ़ते रहने के साथ–साथ इस क्षेत्र को अवसर का लाभ उठाने के लिए संघर्ष करना पड़ा है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि इसकी शहरीकरण की प्रक्रिया अस्तव्यस्त और छिपी रही है।
3. दक्षिण एशिया के समक्ष एक विकल्प है : एक ही मार्ग पर चलते रहो या फिर क्षेत्र के विकास के मार्ग में सुधार लाने के लिए कठिन व समुचित सुधार आरंभ करो। यह आसान नहीं है, किंतु क्षेत्र के नगरों को समृद्ध व खुशहाल बनाने के लिए ये प्रयास आवश्यक हैं।
4. दक्षिण एशिया की शहरीकरण की प्रक्रिया पर विश्व बैंक की रिपोर्ट।

सार–संक्षेप

शहरीकरण समृद्धि और जीने की क्षमता दोनों मामलों में अमीर राष्ट्रों के समकक्ष खड़ा होने के लिए दक्षिण एशियाई देशों को उनकी अर्थव्यवस्थाओं में सुधार लाने की क्षमता प्रदान करता है, किंतु विश्व बैंक की एक नई रिपोर्ट में से पता चलता है कि विकास के मार्ग पर बढ़ते रहने के साथ–साथ इस क्षेत्र को अवसर का लाभ उठाने के लिए संघर्ष करना पड़ा है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि इसकी शहरीकरण की प्रक्रिया अस्तव्यस्त और छिपी रही है।

'लिवरेजिंग अर्बनाइजेशन इन साउथ एशिया : मैनेजिंग स्पैशियल ट्रैंस्फॉर्मेशन फॉर प्रॉस्पैरिटी एंड लिवेविलिटी' शीर्षक रिपोर्ट (प्रतिवेदन) के अनुसार, इसका एक बड़ा कारण यह है कि इसकी शहरीकरण की प्रक्रिया अस्तव्यस्त और प्रच्छन्न रही है। अस्तव्यस्त शहरीकरण व्यापक स्तर पर फैली मलिन बस्तियों (झुग्गियों) और फैलाव में दिखाई देता है। वहीं, फैलाव छिपे शहरीकरण के पनपने में सहायता करता है, खास

टिप्पणी

कर बड़े नगरों के किनारे, जिसका सरकारी आंकड़ों में स्थान नहीं होता। अस्तव्यस्त और गुप्त शहरीकरण आधारभूत संरचना, मूलभूत सेवाओं, भूमि, आवास और पर्यावरण पर दबाव के कारण पनपने वाली संकुलन समस्याओं का समुचित ढंग से समाधान रने में असफलता का प्रतीक है।

विश्व बैंक की रिपोर्ट के अनुसार दक्षिण एशिया के नीति निर्माताओं के समक्ष एक विकल्प है : एक ही मार्ग पर चलते रहो या फिर क्षेत्र के विकास के मार्ग में सुधार लाने के लिए कठिन व समुचित सुधार आरंभ करो। यह आसान नहीं है, किंतु क्षेत्र के नगरों को समृद्ध व खुशहाल बनाने के लिए ये प्रयास आवश्यक हैं।

मुख्य परिणाम

1. वर्ष 2001 से 2011 के बीच दक्षिण एशिया की शहरी आबादी में 130 मिलियन की वृद्धि हुई – जापान की समस्त आबादी से ज्यादा – और वर्ष 2030 तक इसक लगभग 250 मिलियन हो जाने की संभावना है।
2. इस क्षेत्र के शहरों और नगरों में रह रहे लोगों की बढ़ती संख्या से जुड़ी उत्पादकता में भी वृद्धि हुई, किंतु वैश्विक अर्थव्यवस्था में दक्षिण एशिया अंश विश्व की आबादी में उसके अंश की तुलना में आश्चर्यजनक रूप से कम है।
3. शहरीकरण की एक मुख्य विशेषता यह है कि तथाकथित स्थानिक अर्थव्यवस्थाएं उत्पादन में, खास कर विनिर्माण एवं सेवाओं के क्षेत्र में सुधार करती और रोजगार सृजन को बढ़ावा देती हैं और वस्तुतः दखिण एशिया के इस क्षेत्र के सकल घरेलू उत्पाद में इन दोनों क्षेत्रों का अंश 80 प्रतिशत से अधिक है।
4. आवास, आधारभूत संरचना और मूलभूत शहरी सेवाओं की अपर्याप्त सुविधा तथा प्रदूषण से निपटने में असफलता कारण इस क्षेत्र के नगर स्थानिक लाभों का पूरा फायदा नहीं उठा पाते। संकुलन की इन समस्याओं से निपटने में संघर्ष बाजार और नीति दोनों की एक असफलता है।
5. आधिकारिक स्तर पर शहरी बस्तियों की वासी के रूप में वर्गीकृत इस क्षेत्र की आबादी वर्ष 2000 में 27.4 प्रतिशत थी जो 1.1 प्रतिशत की मामूली वार्षिक वृद्धि के साथ वर्ष 2011 में 30.9 प्रतिशत हो गई। इसके विपरीत, आज के दक्षिण एशिया के समान जब चीन शहरीकरण के स्तर पर था, तब उसकी शहरी आबादी का अंश 3.1 प्रतिशत वार्षिक था जो वर्ष 1990 में 26.4 प्रतिशत से बढ़कर 2000 में 35.9 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार, ब्राजील की शहरी आबादी में वर्ष 1950 से 1960 के बीच 2.5 प्रतिशत वार्षिक की वृद्धि हुई, और यह 36.2 प्रतिशत से बढ़कर 46.1 प्रतिशत हो गई। इससे भी पीछे जाएं, अमेरिका में वर्ष 1880 से 1900 से के बीच शहरी आबादी में 1.8 प्रतिशत वार्षिक की वृद्धि हुई और यह 25 प्रतिशत से बढ़कर 35.9 प्रतिशत हो गई।
6. दक्षिण एशिया का शहरीकरण जटिल रहा है जैसा कि व्यापक स्तर पर फैली मलिन बस्तियों (झुग्गियों) में देखा जा सकता है। कम से कम 130 दक्षिण एशियाई – मेक्सिको की समस्त आबादी से अधिक – अनियमित शहरी बस्तियों में रहते हैं, जहां घरों की स्थिति दयनीय, स्वामित्व अवैध और भूखंड सुविधाओं–सेवाओं से वंचित होते हैं।

7. आधिकारिक राष्ट्रीय आंकड़ों के अनुसार, दक्षिण एशिया का कुछ शहरीकरण प्रच्छन्न रहा है, किंतु इन आंकड़ों में शहरी विशेषताओं से युक्त क्षेत्रों में रह रही इस क्षेत्र की आबादी के अंश को कम करके बताया गया है।

अनुशंसाएं

टिप्पणी

1. संकुलन की मुख्य बाध्यताओं को कम करने के लिए, नीति निर्माताओं को स्थानीय सरकार की सशक्तीकरण, संसाधनों और दायित्व की तीन मूलभूत त्रुटियों को दूर करना चाहिए।
2. शक्ति प्रदान करने के लिए सरकारों के वित्तीय संबंधों में सुधार किया जाना चाहिए।
3. स्थानीय सरकारों को उपलब्ध संसाधनों में वृद्धि हेतु व्यावहारिक उपायों की पहचान की जानी चाहिए ताकि वे उन्हें सौंपे गए कार्यों को पूरा कर सकें।
4. तंत्र को मजबूत किया जाना चाहिए, ताकि स्थानी सरकारें अपने कार्यों के प्रति जवाबदेह हों।
5. इस क्षेत्र की समृद्धि और जीवन–क्षमता में सुधार लाने हेतु नीति की कार्यवाही के लिए तीन अन्य परस्पर संबद्ध क्षेत्र भी संकुलन की बाध्यताओं को दूर करने और शहरीकरण का लाभ लेने में सहायता कर सकते हैं – संयोजकता और योजना; भूमि और आवासन; और प्राकृतिक आपदाओं तथा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने की क्षमता।
6. योजनाकारों और सरकार के नीति निर्माताओं को दक्षिण एशियाई नगरों की आंतरिक और अंतर–शहरी संपर्क मार्ग को मजबूत करना, नगरों के किनारे विस्तार जहां अत्यधिक तेजी से हो रहा हो, वहां दिर्शा निर्देश के लिए योजना की दूरंदेशी पद्धतियों को अपनाना, पैदल आवागमन और जीवन–क्षमता के संर्धन हेतु बेहतर गुणवत्ता वाले सार्वजनिक शहरी क्षेत्रों में निवेश करना और भूमि उपयोग की प्रक्रियाओं में व्यापक परिवर्तन करने के लिए स्थानिक योजना की छोटी–छोटी पद्धतियों का उपयोग करना चाहिए।
7. झुग्गियों (मलिन बस्तियों) को बढ़ने से रोकने के लिए, दक्षिण एशियाई नगरों को भूमि एवं आवास की नीतियों सुधार शुरू करने के साथ–साथ आवास वित्त के नए रूपों को बढ़ावा देना चाहिए।
8. प्राकृतिक आपदाओं और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों की रोकथाम हेतु एक लचीली कार्यनीति के विकास का पहला चरण राष्ट्र, उपराष्ट्र और नगर स्तर पर संकटों की सही पहचान तथा मूल्यांकन करना है। अगला चरण एक राष्ट्रीय स्थान–संबद्ध संकट अरक्षितता आंकड़ा कोश (National geo-referenced hazard exposure database) तैयार करना है, जिसमें निजी व सार्वजनिक परिसंपत्तयां आती हैं। इसके अतिरिक्त, संकट–प्रवण क्षेत्रों में और निर्माण करने से बचने के लिए नगरों को निर्माण नियमों और भूमि उपयोग योजनाओं की रूपरेखा व प्रवर्तन का पुनर्मूल्यांकन करना चाहिए।

भारत में शहरीकरण की गति और विकास शहरी शासन के समक्ष नानारूप चुनौतियां खड़ी करते हैं। इस आलेख में उस संघीय ढांचे की सांस्थानिक विशेषताओं

और अवक्रमण तंत्र का अनुशीलन किया गया है, जिसमें नगरों को अपने लोगों के लिए जीवन की बेहतर गुणवत्ता प्रदान करने के साथ–साथ एक ऐसे निवेश वातावरण का सृजन करना चाहिए जो तीव्र विकास को बनाए रखने में सक्षम हो। इसमें तर्क दिया गया है कि हालांकि उद्योग और सेवा क्षेत्रों के लिए, और कायाकल्प के लिए भी, शहरीकरण आवश्यक है किंतु शक्ति के अभाव के कारण नगर शहरी विकास के कार्यक्रम का संचालन नहीं कर पाते। आलेख शहरी आधारभूत संरचना के घाटे को दूर करने के महत्व पर बल के साथ–साथ तर्क देता है कि वित्तीय बोझ को साझा और सेवा वितरण में सुधार सुनिश्चित करने के लिए निजी क्षेत्रों से संपर्क हेतु सांस्थानिक सुधार आवश्यक हैं। स्थानीय स्तर पर योजना एवं प्रबंधन के लिए सुधारों तथा क्षमता को मजबूत करने के महत्व पर विशेष ध्यान देने हेतु शहरी नवीकरण के लिए एक प्रमुख राष्ट्रीय अभियान के अनुभव और नए राष्ट्रीय अभियानों की रूपरेखा की समीक्षा की जाती है। हालांकि भारत सरकार को शहरी योजना एवं प्रबंधन के लिए क्षमता निर्माण में कार्यनीतिक नेतृत्व, कुछ निधि और सहायता प्रदान करनी होगी, किंतु एक परिवेश तैयार करने में राज्य सरकारों की भूमिका अहम होगी, जिसमें नगर शासन संविधान प्रदत्त दायित्वों का निर्वहन कर सकते हैं।

भारत लगभग 2 दशकों तक तेजी से बढ़ रही अर्थव्यवस्थाओं में रहा है। शहरीकरण की गति और स्वरूप पर तीव्र विकास का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। एक तरफ पनपती महत्वाकांक्षाओं और बढ़ते मध्यम वर्ग और दूसरी तरफ शहरीकरण में अवश्यंभावी वृद्धि के लिए अधूरी योजना एक ऐसी स्थिति को जन्म दे रही है जो सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय दृष्टि से असंधारणीय है (गोरे एवं गोपाकुमार, 2015)। भारत के नीतिकारों को जिस चुनौती का सामना करना पड़ रहा है, वह यह है कि नगरों के जीवन की गुणवत्ता में तात्विक सुधार किस प्रकार किया जाए, ताकि वे भविष्य में आबादी में होने वाली वृद्धि का समावेश करने के साथ–साथ अपने लोगों के लिए जीवन की बेहतर स्थितियां तथा ग्रामीण क्षेत्र का समन्वित विकास सुनिश्चित कर सकें। प्रस्तुत आलेख तर्क देता है कि इस चुनौती से निपटने के लिए शहरी शासन की संस्थाओं में सुधार जरूरी है।

भारत में शहरी शासन को बेहत बनाने के मार्ग में तीन बड़ी बाधाएं हैं : एक संघीय संरचना जिसने वर्ष 1992 में संविधान में हुए संशोधन के बावजूद अपने तृतीय स्तर को मजबूत नहीं किया है – महानगर योजना एवं शासन की सांस्थानिक संरचना की एक गायब कड़ी, और एक राजनीतिक तंत्र जिसमें ग्रामीण क्षेत्र के प्रति अथाह पूर्वाग्रह है (देखें, उदाहरण, काजमिन, (2016) और आगे प्रस्तुत खंड 'राजनीतिक पद्धति में शहर–विरोधी पूर्वाग्रह')। इन चुनौतियों से प्रभावकारी ढंग से निपटने के लिए जब तक सांस्थानिक सुधारों की व्यवस्था नहीं कर ली जाती, तब तक भारत की तेजी से बढ़ती शहरी आबादी के जीवन की गुणवत्ता में सुधार तथा भारत के विकास के मौजूदा चरण में विकास के वाहक के रूप में नगरों के कायांतरण के दो उद्देश्यों को बढ़ावा देने के लिए शहरीकरण की प्रक्रिया लागू नहीं की जा सकती (कॉरब्रिज, हैरिस एवं जेफ्री, 2012)।

इस खंड में महानगर शासन की गायब संस्थाओं और राजनीतिक तंत्र के शहर–विरोधी पूर्वाग्रह समेत संघीय संरचना, जिसके भीतर नगर आते हैं, द्वारा खड़ी चुनौतियों पर प्रकाश डालते हुए भारत में शहरी शासन की मूलभूत संरचना प्रस्तुत की

गई है। नीचे प्रस्तुत खंड में भारत के वर्ष 2003 से 2016 तक के अनुभव की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किया गया है – कुछ दोश प्रणालियों पर प्रकाश डालते तथा नगरों की भूमिका के प्रति उनकी विवक्षाओं और सुनियोजित शहरीकरण की आवश्यकता की व्याख्या करते हुए। अगले खंड में शहरी परिदृश्य और उसके सेवा वितरण की अत्यंत त्रुटिपूर्ण अवस्था का वर्णन किया गया है। इसमें शहरीकरण की चुनौतियों के निराकरण में राष्ट्रीय शहरी अभियानों की भूमिका का विश्लेषण भी किया गया है। अंतिम खंड में विश्लेषण के मुख्य परिणामों का सार प्रस्तुत किया गया है।

शक्तिरहित नगर

भारत के नगरों को भारत की संघीय संरचना के भीतर ऐसी कोई शक्ति प्राप्त नहीं है, जिससे वे तेजी से हो रहे शहरीकरण की चुनौतियों का मुकाबला कर सकें। भारत के संविधान में शहरी विकास का दायित्व आरंभ में राज्यों को दिया गया। वर्ष 1992 में हुए संविधान के 74वें संशोधन के तहत सरकार के तृतीय स्तर के रूप में शहरी स्थानीय निकायों का विधिवत् पुनर्गठन किया गया और उन्हें शहर योजना; भूमि उपयोग और भवनों, सड़कों तथा सेतुओं के निर्माण के विनियमन, जल प्रबंधन; लोक स्वास्थ्य और साफ–सफाई तथा ठोस कूड़ा प्रबंधन समेत नगर योजना जैसे कार्यों का दायित्व देते हुए आदेश दिया गया कि राज्य सरकारें 12वीं अनुसूची के तहत विशिष्ट कार्य स्थानीय निकायों को हस्तांतरित कर दें। इस प्रकार, सारा दायित्व शहरी स्थानीय निकायों में निहित है, किंतु इन्हें न तो पर्याप्त और वांछित धन मुहैया कराया जाता है, न ही योजना और प्रबंधन की शक्ति दी जाती है (एक सुपरिचित समस्या; उदाहरण, देखें, मेलोशे एवं वैलनकोर्ट, 2015)। राज्य सरकारों की न केवल कार्यों, निधियों और अधिकारियों–कर्मचारियों का हस्तांतरण करने में बल्कि वैधानिक और सांस्थानिक सुधार करते हुए एक स्वस्थ परिवेश प्रदान करने में भी एक महती भूमिका है, किंतु जहां तक भारत सरकार की बात है, वह केवल कार्यनीतिक मार्गदश मुहैया करा सकती है।

बीते 2 दशकों के दौरान 12वीं अनुसूची के तहत कई राज्य सरकारों ने कई कार्य सौंप दिए हैं। किंतु, शहर योजना जैसे कई अति महत्वपूर्ण कार्य अभी भी अधिकांश राज्य सरकारों के पास हैं (पनगरिया, 2014)। शहर योजना इसलिए महत्वपूर्ण है कि शहरी आधारभूत संरचना की निवेश की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता के लिए एक पारदर्शी तरीके से वित्त का संघटन करने हेतु यह एक शक्तिशाली उपकरण हो सकता है। इसके अतिरिक्त, कुछ राज्यों ने अपने नगर विधान में एक खास नियम शामिल कर लिया है – इस अपेक्षा से कि राज्य सरकारें समय–समय पर विशिष्ट कार्य स्थानीय सरकारों को दे सकती हैं। स्थानीय सरकारों को कार्य सौंपने पर भी किंचित कार्रवाई की गई है। ज्यादातर मामलों में नगरों के कर्मचारी राज्य सरकारों के कर्मचारी हैं और उन्हें राज्य सरकारों ने अलग–अलग नगरों में तैनात किया है।

निधीयन पर, 74वें संविधान संशोधन में आवश्यक माना गया कि राज्य सरकारों के राजस्व का एक अंश स्थानीय सरकारों को प्रदान या हस्तांतरित करने पर विचार करने हेतु राज्य सरकारें राज्य वित्त आयोगों का गठन करें (माथुर, 2006)। आशा थी कि केंद्रीय वित्त आयोग को तकनीकी सहायता मुहैया कराते और उसकी अनुशंसाएं स्वीकार करते हुए राज्य सरकारें आयोग में अति प्रतिष्ठित सदस्यों और अध्यक्षों की

टिप्पणी

नियुक्ति में भारत सरकार द्वारा निर्धारित उदाहरण का अनुसरण करेंगी (रंगराजन, 2005)। किंतु, राज्य वित्त आयोगों ने केंद्रीय वित्त आयोग द्वारा निर्धारित मापदंडों को पूरा नहीं किया। कार्य हस्तांतरित करने में राज्य स्तर पर आने वाले राजनीतिक अवरोध का विरोध नहीं किया है और धन के अभाव में कार्यों को पूरा करने में शहरी स्थानीय सरकारें असमर्थ रही हैं, हालांकि वे धन के बिना ही कार्य कर रही हैं।

नवीनतम उपलब्ध आंकड़ों से पता चलता है कि भारत में शहरी स्थानीय सरकारों की अधिकारिता के लगभग सभी प्रमुख वित्तीय संकेतक अपने पहले से ही अति निम्न स्तरों से नीचे आए हैं (मोहंती, 2016)। वर्ष 2007–2008 में नगरपालिका के राजस्व में और गिरावट आई और वर्ष 2012–2013 के सकल घरेलू उत्पाद में इसका अंश केवल 1.08 प्रतिशत रह गया। तुलना की दृष्टि से, यह अनुपात पोलैंड में 4.5 प्रतिशत, दक्षिण अफ्रीका में 6 प्रतिशत और ब्राजील में 7.4 प्रतिशत रहा (मोहंती, 2016)। वर्ष 2007–2008 में नगरपालिका के कुल राजस्व में नगरपालिका का अपना राजस्व 53 प्रतिशत था जो वर्ष 2012–2013 में घट कर 51 प्रतिशत रह गया। यही स्थिति वर्ष 2007–2008 तथा 2012–2013 के बीच नगरपालिका करों और संपत्ति कर से प्राप्त राजस्व का भी है। राज्य सरकारों से शहरी स्थानीय निकायों को किये जाने वाले हस्तांतरों के प्रति पूर्वानुमेयता सुनिश्चित करने में भी भारत का प्रयास अच्छा नहीं है। शक्ति इतनी सीमित हो कर रह गई है कि कई राज्यों में शहरी स्थानीय सरकारों के कर्मचारियों के वेतन का भुगतान राज्य सरकारों को करना पड़ता है।

वित्तीय हस्तांतरण के अभाव के अतिरिक्त, व्यय की पूर्ति हेतु राजस्व के संघटन और उपयोगकर्ता शुल्कों के निर्धारण की स्वायत्तता का अभाव भी है (पनगड़िया, 2014)। संपत्ति कर की दरों और छूटों का निर्धारण विशेष रूप से राज्य सरकार करती है; यह स्थानीय सरकार के राजस्व का एक मुख्य स्रोत है और शहरी स्थानीय निकाय राज्य सरकारों की कृपा पर निर्भर करते हैं। राज्य चुनावों से पहले छूट की सीमाओं को बढ़ाने और/या कर की दरों को कम करने के कई दृश्टांत सामने आते रहे हैं; उदाहरणस्वरूप, पंजाब, हरयाणा और राजस्थान में। भौगोलिक सूचना प्रणालियों और सूचना तकनीकी (आईटी) के अन्य उपकरणों की सहायता से एक संपत्ति कर बोर्ड की स्थापना और कर–निर्धारण, निरूपण तथा संपत्ति कर की उगाही की बेहतर विधियों का निर्धारण कर संपत्ति कर तंत्र में सुधार की आवश्यकता के अतिरिक्त संविधान में नगरपालिका वित्त की एक सूची को शामिल करने की एक महती आवश्यकता है, जिसमें उन करों का विस्तृत विवरण हो, जो नितांत रूप से स्थानीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र में आते हों। हालांकि सार्वजनिक सेवा वितरण के व्यय का भुगतान उपयोगकर्ता शुल्क से किया जाता है, किंतु इस शुल्क में किसी भी प्रकार की वृद्धि के लिए राज्य सरकार का अनुमोदन आवश्यक होता है। स्थानीय सरकारों को उपयोगकर्ता शुल्कों के निर्धारण का अधिकार नहीं है।

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, शहर योजना का कार्य नगरपालिका सरकारों को सौंपना एक महत्वपूर्ण उपकरण हो सकता है, जिससे शहरी स्थानीय सरकारें भूमि मूल्य को सार्वजनिक कर सकती हैं, ताकि वे आंतरिक वित्तीयन के एक ढांचे के अंतर्गत भूमि के क्षेत्रीकरण व आधारभूत संरचना के विकास का कार्य शुरू कर सकें।

5.5.1 महानगर योजना एवं शासन का अभाव

भारत के संरचनात्मक रूपांतरण में एक महत्वपूर्ण विकास यह हुआ है कि महानगर क्षेत्रों का सृजन जैसे–तैसे नहीं बल्कि योजनाबद्ध ढंग से अभिकल्प के अनुरूप हो रहा है। संविधान में महानगर क्षेत्रों की प्रशासनिक सीमाओं के निर्धारण के निमित्त राज्य सरकारों को पर्याप्त विवेकाधिकार दिये गए हैं, और इनका निर्धारण मुख्य नगर व इस क्षेत्र के इर्द–गिर्द के इलाकों के बीच सुदृढ़ आर्थिक संबंधों का विकास करने हेतु एक एकीकृत बाजार के सृजन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए नहीं किया गया है। उनके क्षेत्रों के विकास की योजनाओं का गठन करने हेतु संविधान में महानगर योजना समितियों (एमपीसी) और जिला योजना समितियों (डीपीसी) के गठन की आवश्यकता भी बताई गई है, हालांकि यह स्पष्ट नहीं है कि ये योजनाएं किसी बड़े चित्र के लिए किस प्रकार लाभदायी होंगी या फिर इनके लिए वित्त की व्यवस्था किसी प्रकार होगी। हालांकि कुछ राज्यों में महानगर योजना समितियों एवं जिला योजना समितियों का गठन किया गया है, किंतु उन्हें नगर योजना प्राधिकरणों से जोड़ा नहीं जा सका है। वे क्षेत्रीय योजना संस्थाओं की तरह प्रभावशाली भी सिद्ध नहीं हुई हैं (शिवरामकृश्णन, 2015)।

राजनीतिक तंत्र में शहर–विरोधी पूर्वाग्रह

भारत की राजनीतिक प्रणाली में शक्ति के मौजूदा वितरण की स्थिति ऐसी है कि शहरी आबादी को राष्ट्र और राज्य दोनों की विधायिकाओं में वांछित स्थान नहीं मिल पाया है (बर्डेट, रोड, शंकर एवं वाहिदी, 2014; मोहंती, 2016; राव एवं बर्ड, 2014)। आबादी में हुए परिवर्तनों पर विचार करने हेतु वर्ष 2008 में अंतिम बार संसद एवं राज्य के विधान सभा क्षेत्रों की पुनर्व्याख्या हुई थी। यह पुनर्व्याख्या भारत के परिसीमन आयोग (भारत का चुनाव आयोग, 2016) के आदेश से की गई थी, जिसने वर्ष 2001 की आबादी के आधार पर विधान सभा क्षेत्रों के परिसीमन का निर्धारण किया था। इसलिए वर्ष 2014 के आम चुनाव वर्ष 2001 की जनगणना के अनुरूप शहरी और ग्रामीण विधान सभा क्षेत्रों में कराये गए। इस जनगणना के अनुसार उस समय भारत की आबादी में शहरी आबादी का अंश 28 प्रतिशत था। एक राजनीतिक समझौता भी हुआ जिसके अनुसार यह अनुपात वर्ष 2031 तक यों ही रहेगा, इसलिए शहरी क्षेत्रों की स्थिति जैसी है लगभग वैसी ही रहेगी (अहलूवालिया, 2014)।

भारत में विकास की राजनीतिक अर्थव्यवस्था का संबंध मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों के विकास से रहा है, जिसमें मान्यता निश्चित रूप से यह रही है कि शहरी क्षेत्र अपनी देखभाल स्वयं कर सकते हैं। इस तथ्य से बिलकुल अलग कि अर्थव्यवस्था के विकास की कोई कार्यनीति तैयार करने में शहरी क्षेत्रों की आम तौर पर उपेक्षा होती रही है, उभरते शहरी क्षेत्रों को भी बुनियादी वैधानिक संरचना से वंचित रखा गया है। उदाहरण के लिए, भारत की जनगणना की इस घोषणा के बावजूद कि वर्ष 2001 से 2011 के बीच शहरों की संख्या में 2,750 की वृद्धि हुई, उसी अवधि के दौरान वैधानिक स्थानीय सरकारों वाले शहरों (जो संबद्ध राज्यों में अधिसूचित हैं) की संख्या में केवल 242 की वृद्धि हुई। शेष 2,500 क्षेत्र अभी भी जनगणना की इस घोषणा के बावजूद उपेक्षित हैं कि वे गांव के शहर बनने के लिए आवश्यक सभी मानकों को पूरा करते हैं। इन शहरों के लिए राज्य सरकार के स्तर पर एक वैधानिक शहरी स्थानीय सरकार, जो शहरी

टिप्पणी

आधारभूत संरचना एवं सेवाओं की उनकी मांग पूरी कर सके, की व्यवस्था कर शक्ति प्रदान करने के मार्ग में न केवल राजनीतिक प्रतिरोध व्यवधान डालता है, बल्कि अक्सर ग्रामीण स्थानीय सरकारें स्वयं 'शहरी होने' के प्रति अनिच्छा जताती हैं, क्योंकि स्थानीय राजनेताओं को इस बात का भय रहता है कि ग्राम विकास योजनाओं के निमित्त मिलने वाली निधि उनके हाथ से निकल जाएगी, वहीं उन्हें शहरीकरण के नियमों का भय भी रहता है।

भारत का तीव्र विकास एवं नगरों की भूमिका

वर्ष 2003–2004 से 2015–2016 की अवधि के दौरान विकासशील देशों में भारत के विकास प्रदर्शन सबसे अच्छा रहा। वर्ष 2003–2004 से 2015–2016 की इस अवधि के दौरान विकास की वार्षिक 7.6 प्रतिशत की एक अभूतपूर्व औसत दर में बाद के 2 वर्षों में किंचित कमी आई और यह 7.4 प्रतिशत रही (चित्र 1, केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय, 2016)। वर्ष 1991 में, एक अति संरक्षित एवं अति नियंत्रित नीति तंत्र से उलट, भारत सरकार ने बाजार को एक बृहत्तर स्थान देने और अर्थव्यवस्था को विदेशी व्यापार एवं निवेश के लिए खोलने के ध्येय से आर्थिक सुधारों की एक व्यापक प्रक्रिया शुरू की। सुधार की चरणबद्ध पद्धति और विनियमन/नियंत्रण की एक लंबी विरासत तथा विदेशी प्रतिद्वंद्विता से सुरक्षा का तात्पर्य यह था कि नए तंत्र को बने रहने के लिए निजी निवेशकों के साथ विश्वसनीयता कायम करने में समय लगा। तात्पर्य यह कि इस दौरान सुधारों के प्रति निजी निवेश की प्रतिक्रिया धीमी रही। वर्ष 2001 के बाद निजी निवेश की गति में तेजी आई।

बढ़ता शहरीकरण

तीव्र विकास का शहरी सकल घरेलू उत्पाद में एक वृद्धि से गहरा संबंध है। भारत के तीव्र विकास के चरण के लिए वर्ष 1999–2000 और 2009–2010 के ऐसे आकलन उपब्ध हैं। उनसे संकेत मिलता है कि वर्ष 1999–2000 के कुल सकल घरेलू उत्पाद में शहरी सकल घरेलू उत्पाद का अंश 52 प्रतिशत था जो वर्ष 2009–2010 में बढ़कर 63 प्रतिशत हो गया (योजना आयोग, 2011)। किंतु, भारत का शहरीकरण उसके समकक्ष अधिकांश देशों की तुलना में बहुत कम है। वर्ष 2015 में इंडोनीशिया के 54 प्रतिशत, चीन के 56 प्रतिशत, मेक्सिको के 79 प्रतिशत, कोरिया के 83 प्रतिशत और ब्राजील के 87 प्रतिशत की तुलना में भारात में केवल 33 प्रतिशत आबादी शहरी थील (संयुक्त राष्ट्र, 2014)। यह एक तथ्य है कि भारत में शहरी आबादी के अंश को कम कर आंका जाता है (एचपीईसी, 2011)। शहरी आबादी की दृष्टि से भारत विश्व में दूसरे स्थान पर है। वर्ष 2001 में 286 मिलियन की शहरी आबादी वर्ष 2011 377 मिलियन हो गई; वर्ष 2015 में इसके 420 मिलियन हो जाने का अनुमान था और आगामी वर्ष 2031 तक इसके 600 मिलियन हो जाने का अनुमान है।

योजनाबद्ध शहरीकरण उद्योग और सेवा क्षेत्रों के लिए भी उतना ही जरूरी है, जितना कि ग्रामीण पुनरुद्धार के लिए, क्योंकि यह ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों के बीच सहक्रिया को बढ़ावा देता है। उदाहरण के लिए, खेती के लिए उपलब्ध पानी की मात्रा और गुणवत्ता पर शहरी क्षेत्रों में पानी के उपयोग का पर्याप्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश समेत शहरी क्षेत्रों में खुदरा क्षेत्र का आधुनिकीकरण उच्च–मूल्य की खेती के अवसर प्रदान करते हुए संयोजन और प्रबंधन तथा पश्चवर्ती

आधारभूत संरचना (Back-end infracture) में निवेशों को बढ़ावा देता है। पंजाब विकास के वाहकों के रूप में अपने नगरों के विकास हेतु शहरी आधारभूत संरचना में निवेश नहीं कर पाया, और इससे भी खेती के आधुनिकीकरण को प्रेरणा मिली होगी। परिणाम यह हुआ कि उद्योग का विकास धीमा रहा और खेती का विकास भी रुक गया (अहलूवालिया, चौधुरी एवं सिद्धू, 2008)। वर्ष 1980 के दशक के उत्तरार्ध तक पंजाब की प्रति व्यक्ति आय उच्चतम थी और वह भारत के राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों में 15वें स्थान पर था (केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय, 2015)।

रोजगार एवं कौशलों का सृजन

शहरी क्षेत्रों में उच्च–उत्पादकता वाले कार्यों की गुंजाइश पैदा करने हेतु उद्योग एवं सेवा क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों का विस्तार करना भारत के नीति निर्माताओं के लिए एक गंभीर चुनौती बना हुआ है। सकल घरेलू उत्पाद में खेती का अंश घटर 14 प्रतिशत रह गया है, किंतु अर्थव्यवस्था में सृजित 50 प्रतिशत रोजगार अभी भी खेती में ही है। रोजगार का विकास खेती से इतर क्षेत्रों में उत्पादन की संवृद्धि की बराबरी नहीं कर सका।

कौशलों का अभाव एक गंभीर चुनौती के रूप में उभरा – जब सकल घरेलू उत्पाद की तीव्र संवृद्धि से यह तथ्य सामने आया कि कुशल श्रमशक्ति की मांग के प्रति भारत तैयार नहीं था और अभी नहीं है। भारत की कुल आबादी के एक अनुपात के रूप में श्रमिक आबादी चीन और ब्राजील के विपरीत वर्ष 2040 तक बढ़ती रहेगी – चीन में वर्ष 2010 में श्रमिक आबादी में उतार शुरू हुआ और ब्राजील में 2020 में शुरू होगा। भारत के लिए जनसांख्यिकी के इस अवसर को जनसांख्यिकी के एक लाभ के रूप में परिणत किया जा सकता है यदि युवाओं को आवश्यक कौशलों के प्रशिक्षण साथ–साथ उच्चतर शिक्षा दी जाए। यह इसलिए आवश्यक है कि 50 प्रतिशत आबादी 25 वर्ष से कम आयु की है, और कमाई से अधिक महत्वाकांक्षाएं बढ़ रही हैं।

वर्ष 2007 में भारत सरकार ने एक राष्ट्रीय कौशल विकास उपक्रम (National Skill Development Initiative) शुरू किया और वर्ष 2008 में राष्ट्रीय कौशल विकास निगम के गठन तक इसे जारी रखा। यह निगम सार्वजनिक–निजी भागीदारी के ढांचे के भीतर कार्य करता है, जिसमें निजी क्षेत्र की सक्रिय भागीदारी है ताकि कौशलों की मांग और आपूर्ति के बीच असंतुलन को कम किया जा सके। हाल में, प्रधानमंत्री कौशल विकास कार्यक्रम समेत कुछ कार्यक्रम आरंभ करने के ध्येय से भारत सरकार ने एक कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय का गठन किया है।

शहरी क्षेत्रों में रोजगार सृजन की चुनौतियों से निपटने हेतु कौशल विकास के अतिरिक्त, उद्यमिता के लिए एक सुग्राही परिवेश का सृजन आवश्यक है। इस परिवेश के सृजन हेतु स्टार्ट अप इंडिया और मेक इन इंडिया कार्यक्रमों का गठन किया गया है। श्रमिक वर्ग के लिए बेहतर सामाजिक सुरक्षा, नगरों में बेहतर रहन–सहन के साथ–साथ श्रम बाजार में बेहतर सुलभता समेत स्थानिक अर्थव्यवस्थाओं, बेहतर आधारभूत संरचना और स्थायी बृहत अर्थव्यवस्था के सृजन हेतु निवेश के एक बेहतर वातावरण के लिए व्यवसाय की सहजता आवश्यक होगी। ऐसी किसी पारिस्थितिकी से नए उपक्रमों के रूप में नई पद्धति और उद्यम को बढ़ावा मिलेगा, जिससे रोजगार का सृजन होगा।

5.5.2 आधारभूत संरचना विकास : नई चुनौतियां

भौतिक आधारभूत संरचना – जैसे, सड़क, परिवहन एवं यातायात, बिजली और दूरसंचार – की अपर्याप्तता और त्रुटिपूर्ण गुणवत्ता एक चिरकालिक मुख्य कारक रहा है जो भारतीय उद्योग को आगे बढ़ने से रोकता है। हालांकि मोबाइल उद्योग भारत की अर्थव्यवस्था के दूरसंचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी सिद्ध हुआ है, किंतु अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास ने योजनाबद्ध शहरीकरण के लिए आवश्यक विकास समेत औद्योगिक विकास की बुनियादी भौतिक आधारभूत संरचना की कुछ खुली त्रुटियों को उजागर किया है।

हाल के वर्षों में, आधारभूत संरचना को निजी निवेशकों के लिए मुक्त करने के कारण, नगरों की आधारभूत संरचना के विकास के साथ–साथ औद्योगिक विकास में सार्वजनिक निधियों में निजी वित्तीयन की सहायता की संभावना बढ़ी है। किंतु कई कारणों से ऐसा एक सीमित सीमा तक ही हो पाया है। शहरी आधारभूत संरचना के मामले में, इसका मुख्य कारण शहरी स्थानीय सरकारों में राजस्व के एक ऐसे तंत्र का अभाव है, जो ऋणों का ब्याज के साथ भुगतान अथवा सार्वजनिक–निजी भागीदारी में निजी निवेश पर कोई वाजिब प्रतिलाभ सुनिश्चित कर सके। सार्वजनिक–निजी भागीदारी शुरू करने के लिए शहरी स्थानीय सरकार के स्तर पर योजना एवं वार्ता की जिस क्षमता की आवश्यकता होती है उसकी कमी और एक सक्षम परिवेश के सृजन हेतु आवश्यक राज्य सरकारों की सहायता का अभाव निजी वित्तीयन के प्रति उदासीनता के अन्य कारण हैं।

आधारभूत संरचना के विकास के मार्ग में प्रमुख बाधाओं के रूप में दो नवीन गंभीर चुनौतियां उभर कर सामने आई हैं – भूमि अधिग्रहण की समस्याएं और पयार्वरण व वन से संबद्ध अनुमति; उदाहरणस्वरूप, राजमार्ग, बंदरगाह, हवाई अड्डे व आधारभूत संरचना।

भूमि अधिग्रहण

अभी हाल तक, आधारभूत संरचना विकास के लिए भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया का संचालन वर्ष 1984 के भूमि अधिग्रहण अधिनियम के तहत किया जाता था, जिसमें उद्योग, आधारभूत संरचना विकास (उच्च स्तरीय समिति, 2014) या शहरीकरण के प्रयोजन से निजी भूमि के अधिग्रहण की अनुमति थी, किंतु इसके लिए भूस्वामी को क्षतिपूर्ति का प्रावधान किया गया था (अहलुवालिया एवं अन्य, 2014)। इसकी अनुमति उन निजी परियोजनाओं को भी थी, जो सार्वजनिक प्रयोजन से सेवा देना चाहती हों।

आम मान्यता है कि औपनिवेशिक शासन काल के अधिनियम के तहत देय मुआवजा बहुत कम होता था और यह कि प्रभावित लोगों के पुनर्वास व पुनर्व्यवस्थापन के लिए यह कतई पर्याप्त नहीं होता था। हालांकि भूमि अधिग्रहण तब भी विवादास्पद होता था जब यह सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं के लिए किया जाता था, किंतु सार्वजनिक–निजी भागीदारी उपक्रमों के माध्यम से खनन एवं आधारभूत संरचना में निजी क्षेत्रों के प्रवेश के कारण अधिग्रहण के विरुद्ध भूस्वामियों का रोश चरम पर होता था। इस बढ़ते विरोध के मद्देनजर भारत सरकार ने वर्ष 2013 में मतांतरों को सही करने के सख्त प्रावधानों के साथ भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम (Riught to Fair Compensation and Transparency in Land Acquisition, Rehabilitation and Resettlement Act, 2013)

पारित किया। इस मुद्दे पर वर्ष 2014 में गठित नई सरकार ने कुछ पुनर्विचार किया, और भूमि अधिग्रहण के प्रावधानों को कुछ सरल करना आवश्यक समझा। इस अधिनियम में एक संशोधन की आशा से वर्ष 2014 में भारत सरकार ने एक अध्यादेश जारी किया और इसकी दोबारा घोषणा की गई, किंतु अध्यादेश को विपक्ष के कड़े विरोध का सामना करना पड़ा। तदनंतर सरकार ने एक नया विधेयक पेश किया जो भूमि अधिग्रहण को सरल कर सके। इसे संसद के निचले सदन ने पारित कर दिया, किंतु ऊपरी सदन में यह पारित नहीं हो सका (रघुराम एवं सनी, 2015)।

भूमि अर्जन में आने वाली कठिनाइयां आसपास की खेती की भूमि का अधिग्रहण कर नगरों के विस्तार को अत्यंत कठिन बना देती हैं। भूमि के विवाद समस्त विश्व में शहर के निर्माण की राजनीति का मुख्य बिंदु रहे हैं (रॉय, 2014)। भारत में, भूस्वामी (जमींदार) की भूमि अथवा राज्य द्वारा अधिग्रहित भूमि को, जिसका सार्वजनिक अथवा निजी निधि शहरी उपयोग के लिए विकास किया जाए, जायदाद का विकास करने वालों (Developers) के लिए विकास की प्रक्रिया में सृजित मूल्य को हथिया लेने के एक अवसर के रूप में देखा जाता है। राजकोष के लिए सृजित मूल्य के एक अंश को हथिया लेने की अपेक्षाकृत एक अधिक सचेत नीति इस रोश को कम कर सकती थी, किंतु ऐसा आम तौर पर हुआ नहीं है। भूमि एवं संपत्ति के पुनर्विकास के नियमों व विनियमों के अत्यंत अपारदर्शी होने और संपति के अधिकारों की ठोस व्याख्या की कमी तथा अनुबंधों के प्रवर्तन की त्रुटिपूर्ण प्रक्रिया के कारण समस्या और बढ़ जाती है।

पर्यावरण विनियमन प्रक्रिया

हाल के वर्षों में विकास के मार्ग में पर्यावरण अनुमोदन प्रणाली से एक और चुनौती सामने आई, जिसमें असीम भ्रष्टाचार और कार्य–प्रक्रिया में विलंब की प्रबल संभावना थी। कुछ ही समय पूर्व, नवगठित सरकार ने टी. एस. आर. सुब्रमणियन की अध्यक्षता में अधिकारियों की एक उच्च स्तरीय समिति (उच्च स्तरीय समिति, 2014) का गठन किया, जिसे पता चला कि पर्यावरण विनियमन के कई अलग–अलग कानून हैं और अलग–अलग विभागों के अधिकारी अपारदर्शी तरीके से निर्णयों के किसी ठोस वैज्ञानिक आधार के बिना इसकी अनुमति देते हैं। इस समिति ने इन कानूनों के एक एकल विधान में एकीकरण के साथ–साथ एक वैधानिक प्राधिकरण, राष्ट्रीय पर्यावरण प्रबंधन अभिकरण (National Environmental Management Agency) के गठन की अनुशंसा की है, जो अनुमोदन के वैज्ञानिक मानदंडों का गठन करेगा और उसके कर्मचारी अपने–अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होंगे जो अनुमोदन के लिए समुचित अनुशंसाएं कर सकें। इससे प्रक्रिया में एक सीमा तक पारदर्शिता और वैधता आएगी तथा पर्यावरण विनियमन के प्रति सरकार की विश्वसनीयता कायम होगी, और भ्रष्टाचार व विलंब की संभावना भी कम होगी।

5.5.3 भारत में शहरी परिदृश्य

जैसा कि पूर्व के खंडों में हुई चर्चा से स्पष्ट है, भारत को अपने शहरी भूदृश्य में आए घोर बदलाव का सामना करना पड़ा है। शहरीकरण केवल तीव्र संवृद्धि और विकास का परिणाम नहीं है, बल्कि उन स्थानिक अर्थव्यवस्थाओं के माध्यम से विकास को बढ़ावा देने का एक उपकरण भी है, जो नगरों का चरित्रांकन करती हैं, अनियंत्रित शहरीकरण के व्यय का वहन न केवल नगर को बल्कि समस्त अर्थव्यवस्था को करना पड़ता है।

टिप्पणी

सेवा वितरण और आश्रय स्थल की स्थिति

भारत के नगरों और शहरों में सार्वजनिक सेवा वितरण की स्थिति अच्छी नहीं है, असुरक्षित पानी, साफ–सफाई की घटिया स्थिति और अति प्रदूशित हवा सब मिलकर स्वास्थ्य के प्रति एक अति संकटप्रद शहरी परिवेश का सृजन करते हैं (एचपीईसी, 2011)। प्रवासन और आश्रय की चुनौतियां शहरों के दुःखों को और बढ़ा देती हैं। इसका प्रतिकूल प्रभाव नगरों में रहने वालों के जीवन की गुणवत्ता और अर्थव्यवस्था के तीव्र, स्थायी व समावेशी विकास के निवेश के वातावरण दोनों पर पड़ता है।

नगर में रह रहे केवल 62 प्रतिशत लोगों को प्रशोधित नल जल की सुविधा प्राप्त है और केवल 53 प्रतिशत लोगों के घरों में नल की सुविधा है (शहरी विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 2011)। भारत के नगरों और शहरों में जल की आपूर्ति प्रति दिन लगभग 2 घंटे के लिए होती है। केवल 33 प्रतिशत शहरी आबादी को मलजल निकास प्रणाली की सुविधा प्राप्त है; लगभग 40 प्रतिशत लोग सेप्टिक टैंक का उपयोग कर पाते हैं और लगभग 13 प्रतिशत लोग आज भी खुले में शौच करते हैं। मलजल के शोधन की कुल क्षमता के केवल 37 प्रतिशत का विकास हो पाया है और शोधन की वास्तविक क्षमता इससे भी कम यानी 30 प्रतिशत है। इसके अतिरिक्त, उद्योगों से होने वाला पानी का अनियंत्रित बहिःस्राव तालाबों–नदियों के पानी को प्रदूशित करता है, जिससे सार्वजनिक स्वास्थ्य को खतरा और बढ़ जाता है।

आवागमन की समस्या शहर की एक और बड़ी समस्या है। नगर की सड़कों पर रास्ते के लिए होड़ करते परिवहन के नानाविध प्रकारों के मुकाबले शहरों में सड़कों और परिवहन की आधारभूत संरचना की कमी और उनकी घटिया गुणवत्ता के कारण सड़कों पर जाम लगता है और प्रदूषण पैदा होता है। इन सबका उत्पादकता पर गहरा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

बीते कुछ समय से भारत के नगरों में समृद्ध और मध्यम वर्ग के लोगों ने सार्वजनिक सेवाओं के सरकारी स्तर पर वितरण नहीं होने पाने की स्थिति में निजी समाधानों से काम लेना शुरू किया है। वे नगर के भीतर आने–जाने के लिए अनावश्यक रूप से अपनी कारों का उपयोग करते हैं क्योंकि सार्वजनिक परिवहन सेवा या तो है नहीं या फिर त्रुटिपूर्ण है। वे आठों पहर पानी की आपूर्ति हेतु जल भंडारण टैंक लगवाते और बूस्टर पंप का उपयोग करते हैं। कुछ हद तक ये निजी समाधान उनके आसपास के भौतिक पर्यावरण के क्षणन के प्रति उनकी उदासीनता का कारण रहे हैं।

किसी सेवा के वितरण पर आने वाली लागत में वृद्धि होने के बावजूद सार्वजनिक सेवाओं के प्रशुल्क में वृद्धि का अकसर राजनेतागण प्रतिरोध करते हैं। यह आवश्यक है कि वित्तीयन के समुचित मार्गों का पता लगाया जाए ताकि वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित हो। शहरी सेवा वितरण सुनिश्चित करने के मार्ग में एक मूलभूत समस्या यह है कि सेवा उपयोगकर्ता शुल्कों और बजट अनुदान की सीमा में नहीं है। भारत में मौजूदा स्थिति यह है कि उपयोगकर्ता शुल्क अपर्याप्त हैं और बढ़ती लागतों के साथ उनका समायोजन नहीं होता। वहीं अनुदान भी अपर्याप्त और अनिश्चित है। संभव है कि राज्य सरकारें और नगरपालिका शासन अनुदान प्रदान करने की स्थिति में न हों, किंतु फिर इसके लिए आवश्यक है कि गरीबों के संरक्षण के लिए समुचित प्रति अनुदान (किसी गतिविधि से होने वाले लाभ का उपयोग किसी दूसरी गतिविधि के घाटे को पूरा करने के लिए किया जाए) के साथ उपयोगकर्ता शुल्कों में वृद्धि की जाए।

शहरों के नवीकरण के राष्ट्रीय अभियान

पिछले दशक के दौरान भारत सरकार ने शहरों के पुनरुद्धार के प्रति कई कदम उठाए हैं। वर्ष 2005 में जेएनएनयूआरएम के रूप में पहला कदम उठाया गया, जिसका गठन भारत सरकार की आंशिक निवेश सहायता से शहरी नवीकरण के लिए किया गया था (जेएनएनयूआरएम, 2005)। इस अभियान ने अप्रैल, 2014 में अपना कार्यकाल पूरा किया। इसके बाद, भारत सरकार ने वर्ष 2014 और 2015 में कई और अभियानों की घोषणा की; जैसे स्वच्छ भारत अभियान, अटल पुनरुद्धार एवं शहर सुधार अभियान (Atal Mission for Rejuvenation and Urban Transformation@एएमआरयूटी), स्मार्ट सिटी अभियान एवं सब के लिए घर, जो वर्तमान में योजना एवं क्रियान्वयन के अलग–अलग चरणों में हैं।

जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण अभियान (जेएनएनयूआरएम)

जेएनएनआरयूएम का गठन भारत सरकार ने वर्ष 2005 में राज्य सरकारों और शहरी स्थानीय सरकारों की भागीदारी के साथ किया। भारत सरकार ने निर्धारित 1 ट्रिलियन रुपये में अपने अंश के रूप में 660 बिलियन रुपये देने का वचन दिया। शहरी स्थानीय निकायों से 65 अभियान नगरों के लिए एक नगर विकास योजना (सीडीपी) का गठन और निधीयन हेतु एक विशिष्ट आधारभूत संरचना परियोजना की पहचान करने को कहा गया। राज्य सरकारें नगर विकास योजना (सीडीपी) और परियोजना मंजूरी दी और परियोजना को अनुमोदन व आंशिक वित्तीयन के लिए भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया गया। राज्य सरकारों और शहरी स्थानीय सरकारों ने भी वित्तीय योगदान दिया। भारत सरकार ने आर्थिक सहायता इस शर्त के साथ दी कि राज्य सरकारें और शहरी स्थानीय सरकारें वांछित सुधार करेंगी।

शहरी नवीकरण के नए अभियान

अप्रैल, 2014 में जेएनएनयूआरएम के समाप्त हो जाने के 6 माह बाद, भारत सरकार ने शहरी सुधार पर केंद्रित कई नए अभियानों की घोषणा की। इनमें पहला वैविध्यपूर्ण स्वच्छ भारत अभियान है, जिसका गठन अक्तूबर, 2014 में किया गया। इसके बाद जून, 2015 में तीन बड़े अभियानों की घोषणा की गई : एएमआरयूटी (अमृत), वर्ष 2022 तक सबके लिए घर और स्मार्ट सिटी अभियान।

स्वच्छ भारत अभियान का उद्देश्य जन जागरूकता का संचार और शौचालयों का निर्माण कर नगरपालिका ठोस कूड़े के 100 प्रतिशत संग्रह और वैज्ञानिक ढंग से प्रशोधन व निपटान के लक्ष्य की प्राप्ति के साथ खुले में शौच और सिर पर मैला ढुलाई की प्रथा को बंद करना है (शहरी विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 2011)। सभी वैधानिक शहरों के समावेशन के लिए लगभग 620 बिलियन रुपये की लागत अएगी, जिसमें भारत सरकार 150 बिलियन रुपये का योगदान करेगी, और शेष का योगदान राज्य सरकारें, शहरी स्थानीय निकाय और निजी क्षेत्र की कंपनियां करेंगी।

एएमआरयूटी वास्तव में जेएनएनयूआरएम का अगला संस्करण है। इसमें 500 नगरों में जल, मलजल निकास प्रणाली, जल निकास प्रणाली, परिवहन एवं यातायात और हरित क्षेत्रों की आधारभूत संरचना आती है, जिस पर 5 वर्ष की अवधि के दौरान 500 बिलियन रुपये का परिव्यय आएगा (एएमआरयूटी, 2015)। दुर्भाग्य से, नगरपालिका

ठोस कूड़ा प्रबंधन एएमआरयूटी के क्षेत्र में नहीं है (किंतु यह स्वच्छ भारत का अंग है), हालांकि इसी कार्यक्रम – अर्थात् एएमआरयूटी – के भीतर साफ–सफाई की चुनौतियों को दूर करने के लिए ठोस कूड़ा प्रबंधन का एक समेकित व समन्वित प्रयास कहीं ज्यादा बेहतर होता। एएमआरयूटी की एक अन्य कमजोरी यह है कि अभियान के शहरी सुधार के प्रयासों का संबंध किसी भी नगर विकास योजना (सीडीपी) से नहीं है। हालांकि एक सेवा–स्तरीय सुधार योजना तैयार करने हेतु एक शहरी स्थानीय निकाय की आवश्यकता है, किंतु किसी नगर विकास योजना (सीडीपी) के ढांचे के भीतर कार्य करने के लिए इसकी कमी कार्यक्रम को एक कदम पीछे ले जाती है – यह जानते हुए भी कि जेएनएनयूआरएम के अंतर्गत नगर विकास योजना (सीडीपी) की इस अवधारणा का बहुत दुरुपयोग हुआ था। जेएनएनयूआरएम की तरह, एएमआरयूटी के तहत संवितरणों का संबंध सुधारों के एक विन्यास से है, हालांकि यह अभी तक स्पष्ट नहीं हुआ है कि कौन से सुधार इसकी सीमा और नियंत्रण में आएंगे। एएमआरयूटी की समस्याएं सुधारों की शर्तों को लागू करने में होंगी, विशेष रूप से जहां जेएनएनयूआरएम असफल रहा।

सबके लिए घर अभियान का लक्ष्य वर्ष 2022 तक शहरी क्षेत्र में 20 मिलियन घरों का निर्माण करना है (मंत्रिमंडल, भारत सरकार, 2015)। आवास की समस्त आवश्यकता का आकलन लगभग 110 मिलियन घरों के मद्देनजर किया गया है (केपीएमजी, 2104)। सबके लिए घर अभियान केवल आर्थिक रूप से कमजोर तबकों की आवश्यकता को पूरा करेगा। प्रत्येक घर पर बैंक ऋण के ब्याज के अनुदान के साथ अनुमानतः 150,000 रुपये के अनुदान की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त, योजना की सफलता मुख्यतः इस बात पर निर्भर करेगी कि राज्य सरकारें कम मूल्य पर भूमि मुहैया करा पाती हैं या नहीं और ऋण के सरकारी अनुदान के अभाव में बैंक ऋण देने को तैयार हैं या नहीं। किराये के मकान के विकल्प का पता नहीं लगाया गया है, जो अति निम्न आय वर्गों की आवश्यकता पूरी कर सकता है।

स्मार्ट सिटी अभियान एक महत्वाकांक्षीय अभियान है, जो शहरी जीवन की गुणवत्ता के संवर्धन और 100 चयनित नगरों को एक स्वच्छ व संधारणीय परिवेश मुहैया कराने के तकनीकी आधारित बेहतर समाधानों पर निर्भर करता है (शहरी विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 2015)। भारत सरकार ने 100 चयनित नगरों के लिए 5 वर्षों की अवधि के दौरान 480 बिलियन रुपये देने का वचन दिया है। राज्य सरकारों से इतनी ही राशि के योगदान की अपेक्षा की जाती है, ताकि 1,000 का लक्ष्य पूरा हो सके।

इन सभी अभियानों के लिए भारत सरकार द्वारा मुहैया कराया जाने वाला धन जितनी आवश्यकता है उसका एक छोटा हिस्सा है। शेष का भुगतान राज्य सरकारों तथा सार्वजनिक–निजी भागीदारी परियोजनाओं के अंतर्गत निजी क्षेत्रों से अपेक्षित है। भारत सरकार का तर्क यह है कि राज्य सरकारों को 14वें वित्त आयोग की अनुशंसा पर पर्याप्त धन का हस्तांतरण किया जा चुका है (जगन्नाथन, 2015)।

राज्यों के बजट पर भी बोझ पड़ने की संभावना है, क्योंकि सातवें वेतन आयोग ने नवंबर, 2015 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और हालांकि वेतन में वृद्धि की इसकी अनुशंसाएं केवल केंद्र सरकार के कर्मचारियों पर लागू होती हैं, किंतु राज्यों में वेतन में एक तुलनात्मक सीमा तक वृद्धि का राज्य सरकारों पर दबाव होगा (भारत सरकार, 2015)। इन सभी कारणों से, उन नई शहरी योजनाओं/अभियानों के क्रियान्वयन में

अल्प निधीयन के चलते कठिनाइयां आ सकती हैं, जिनकी घोषणा की गई है। राज्यों की वित्तीय क्षमता और शहरी क्षेत्र को दी गई प्राथमिकता के अनुरूप एक राज्य की स्थिति दूसरे राज्य की स्थिति भिन्न हो सकती है।

टिप्पणी

भारत सरकार के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण चुनौती राज्य सरकारों को संघीय संरचना के तीसरे स्तर के साथ शक्ति विभाजन का महत्व समझाने हेतु सहकारी संघवाद का उपयोग करना है, जिसे वर्ष 1992 में भारत के संविधान में मान्यता दी गई। यदि नगर सरकारों को शक्ति के प्रभावकारी हस्तांतरण के साथ क्षमता निर्माण की शक्ति दी जाए और राज्य सरकारें एक सहयोगशील परिवेश मुहैया कराएं, तो नगर शहरी विकास योजना के कार्यक्रम को कार्यरूप देने में सफल होंगे।

अपनी प्रगति जांचिए

7. किन क्षेत्रों की तनावग्रस्त स्थानिक योजना के अध्ययन के लिए हम एक सांस्थानिक पद्धति की सहायता लेते हैं?

   (क) गांव (ख) नगर

   (ग) मुहल्ला (घ) राष्ट्र

8. वर्ष 2001 से 2011 के बीच दक्षिण एशिया की शहरी आबादी में कितने मिलियन की वृद्धि हुई?

   (क) 100 (ख) 110

   (ग) 120 (घ) 130

5.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ख)
3. (क)
4. (घ)
5. (ग)
6. (क)
7. (ख)
8. (घ)

5.7 सारांश

किसी नगर के अभिकल्प और विकास में सुधार लाने में बेहतर नगर योजना हमेशा ही एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। योजना के संवर्धन हेतु उन्नत तकनीकी और राजनीतिक निर्णयों की आवश्यकता होती है। इसलिए, हमारी नगर योजना के कार्य के विकास के लिए, हमें न केवल बेहतर उपकरण बल्कि कौशलप्राप्त एवं सुशिक्षित भवन

टिप्पणी

निर्माताओं, अभियंताओं और नगर प्रशासन की जरूरत है। तभी हम स्थितियों में बदलाव की आशा कर सकते हैं।

नगर योजना एक प्रक्रिया है। इसमें निर्मित पर्यावरण के लिए सृजनात्मक ढंग से उपयोग की जाने वाली भूमि का अभिकल्प और विकास आते हैं। इसमें वायु, जल और आधारभूत संरचना से जुड़े तकनीकी और राजनीतिक निर्णय आते हैं। विभिन्न समुदायों के लिए समाधान तैयार करने हेतु भवन निर्माण कला, संरचनात्मक अभिकल्प और असैनिक अभियंत्रण की विस्तृत योजना की जरूरत होती है। हमें इस पर विचार करना चाहिए।

महानगर प्रबंधन एक नया उभरता क्षेत्र है जिस पर निर्णय नियामकों को यथासंभव ध्यान देना चाहिए। नगर आज पहले की अपेक्षा बड़े और अधिक जटिल हो चले हैं। उनके बजट संदर्भ के अनुरूप अक्सर बहुत विशाल होते हैं, ये बजट कभी–कभी कई देशों और कई प्रांतीय अथवा राज्य सरकारों के बजटों से बड़े होते हैं। उदाहरण के लिए, न्यू यॉर्क नगर का बजट विश्व के कई देशों के बजटों से बड़ा होता है। इसी प्रकार बृहन्मुंबई नगर निगम का बजट 9 राज्य सरकारों के बजटों और दिल्ली नगर निगम का बजट 4 राज्य सरकारों के बजट से बड़ा होता है। इसके अतिरिक्त, जैसी कि पूर्व में चर्चा की गई है, वर्तमान में नगर सेवाओं का वितरण अनेकानेक संस्थाएं टुकड़ों में करती हैं। महानगरों के प्रबंधक 'दैनंदिन' और 'प्रत्यक्ष' सेवाएं मुहैया कराने के लिए संयोजन का जो कार्य करते हैं, वह वस्तुतः एक भगीरथ प्रयास है और उसे समेकित नीतिगत कार्यवाही के जरिए अविलंब सरल बनाने की आवश्यकता है।

राष्ट्र स्तर पर, शहरी विकास मंत्रालय को सुदृढ़ और सुगठित किया जाना चाहिए, ताकि यह शहरी योजना और विकास का प्रबंधन प्रभावकारी ढंग से कर सके। शहरी विकास योजना में अधिकांश कार्यों की परिकल्पना राज्य स्तर पर की जाती है, इसलिए केंद्रीय मंत्रालय की भूमिका मुख्यतः समन्वयन कार्य के एक केंद्रीय संस्था की होती है – तकनीकी परामर्श प्रदान करने वाली और विस्तृत शहरी निवेश के निहितार्थों की युक्ति निकालने वाली। तकनीकी सहायता की इस भुजा का मजबूत होना आवश्यक है ताकि यह शहरी नीति निर्माण का मार्गदर्शन कर सके। वहीं शहरी शोध में भी इसे अग्रिम पंक्ति में स्थान दिया जाना चाहिए। संस्था को आंकड़ों की आवश्यकताओं को प्रामाणिक बनाते हुए, उन्हें स्थान से जोड़ने की तकनीकियों आदि के साथ इन नगरों से संबद्ध सूचना में सुधार और इन नगरों के निवेश कार्यक्रमों की निगरानी के लिए प्रणालियों का विकास करने की जरूरत होगी। शहरी विकास प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करने तथा उन्हें देश की आर्थिक योजना के संवर्धन का एक सुलभ साधन बनाने में इसे एक लंबा रास्ता तय करना होगा।

प्रत्येक देश की सामाजिक क्षेत्र नीति और उच्चतर शिक्षा संस्थाओं में निवेश का भी उन उद्योगों की अवस्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जो इन देशों के आर्थिक विकास में सहायता करते हैं। उच्चतर शिक्षा संस्थाओं और शोध एवं विकास (रिसर्च एंड डिवेलपमेंट/आर एंड डी) केंद्रों की स्थापना से मानव पूंजी का विकास सक्षम कुशल कामगारों की आपूर्ति और नगर की प्रतिस्पर्धात्मकता की कुंजी है।

केंद्र सरकार को बृहत नीतियों और शहरी विकास के बीच संबंध के प्रति अधिक से अधिक सजग होना चाहिए क्योंकि आर्थिक विकास से उनका सीधा संबंध होता है।

उन्हें इसलिए ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मौजूदा स्थिति में नगरों व नगर क्षेत्रों का कभी–कभी उनके निकटतम क्षेत्रों की अपेक्षा दूरस्थ क्षेत्रों के बाजारों और भौगोलिक क्षेत्रों से घनिष्ठ संबंध होता है। उदाहरणस्वरूप, बेंगलुरु की अर्थव्यवस्था का उसके निकटवर्ती शहरों से अधिक अमेरिका और यूरोप के अन्य देशों से गहरा संबंध है। यही स्थिति सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी) और आईटीईएस के मामले में हैदराबाद, पुणे और गुरुग्राम तथा उद्योग के मामले में तिरुपुर, लुधियाना आदि के साथ भी है।

इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि राष्ट्रीय बृहत नीतियों को अधिक से अधिक उदार बनाया जाए, ताकि इन अवसरों का लाभ लिया जा सके और प्रशिक्षण, उच्चतर शिक्षा तथा शोध एवं विकास सुविधाओं में सामाजिक क्षेत्र के निवेशों की ठोस योजना बनाते हुए उनके विकास की सहायता में निवेश के साथ–साथ उन्हें युक्तिपूर्वक स्थापित किया जा सके।

हाल के दशकों में, नगर–क्षेत्र यूरोपीय देशों और समस्त विश्व में स्थानिक योजना के एक मुख्य मापदंड के रूप में उभर कर सामने आया है। इसका महत्व इसलिए बढ़ चला है, क्योंकि राजनीतिक–आर्थिक सिद्धांत एवं नीति के कार्यान्वयन ने इसे आर्थिक प्रतिस्पर्धा को जारी रखने और नगरों व क्षेत्रों के समक्ष उभरती चुनौतियों का समाधान करने का एक बेहतर मापदंड बनने को प्रेरित किया है। तथापि, योजना के मंचों के रूप में नगर–क्षेत्रों के उद्‌भव से प्रशासनिक सीमाओं की तुलना में योजना या स्थानिक समायोजन की मौजूदा वैधानिक प्रणाली में नियमों में कभी कभार ही औपचारिक फेर–बदल हुई है (उदाहरणस्वरूप, गुआलिनी एवं ग्रॉस, 2019; हैरिसन एवं ग्रोवे, 2014; हर्शेल एवं डीयरवेख्तर, 2018; सालेत, थॉर्नली एवं क्रियुकेल्स, 2013)।

5.8 मुख्य शब्दावली

- **भवन** : इमारत, मकान।
- **सुव्यवस्थित** : सुचारु, भलीभांति।
- **सुलभ** : उपलब्ध।
- **टकराव** : संघर्ष, टक्कर।
- **समतल** : एकसार।
- **यातायात** : आवागमन।
- **किफायती** : कम खर्च वाला, सस्ता।

5.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. नगरीय योजना से आप क्या समझते हैं?
2. वृहत अर्थशास्त्र की नीतियों का शहरीकरण पर क्या प्रभाव पड़ता है?
3. सामाजिक क्षेत्र नीति क्या है?
4. भारत के तीव्र विकास में नगरों की क्या भूमिका है?

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में नगर योजना के परिप्रेक्ष्य में नगर प्रबंधन की समस्याओं की विवेचना कीजिए।
2. नगर प्रेरित क्षेत्र योजना की समीक्षा कीजिए।
3. भारत सरकार के नवीन शहरी सुधार कार्यक्रमों की व्याख्या कीजिए।
4. स्थानिक योजना का विस्तारपूर्वक विश्लेषण कीजिए।

5.10 सहायक पाठ्य सामग्री

DeFilipps, James, *Unmarking Goliath: Community Control in the Face of Global Capital.* New York, NY: Routledge, 2003.

King, Anthony D., *Global Cities: Post-imperialism and the Internationalization of London.* New York, NY: Routledge, 1991.

Gans, Herbert J., *Urban Villagers: Group and Class in the Life of Italian-Americans.* New York, NY: The Free Press, 1982.

Gans, Herbert, *The Levittowners.* New York, NY: Columbia University Press, 1982.

Levitt, Peggy, *The Transnational Villagers.* Berkeley, CA: University of California Press, 2001.

Mollenkopf, John Hull, *The Contested City.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 1983.

Burgess, Ernest W., and Robert E. Park, *The City.* Chicago, IL: University of Chicago Press, 1984.

Sassen, Saskia, *The Global City: New York, London, Tokyo.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 2001.

Sugrue, Thomas J., *The Origins of the Urban Crisis: Race and Inequality in Postwar Detroit.* Princeton, NJ: Princeton University Press, 2005.

Castells, Manuel, *The Castells Reader on Cities and Social Theory.* Edited by Ida Susser. Malden, MA: Blackwell Publishing Limited, 2002.

Wellman, Barry, *Networks in the Global Village: Life in Contemporary Communities.* Boulder, CO: Westview Press, 1999.

Whyte, William Foote, *Street Corner Society: The Social Sructure of an Italian Slum.* Chicago, IL: University of Chicago Press, 1993.